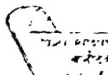


प्रकाशक—

नाथूराम प्रेमी, मंत्री
मणिकुचन्द्र-जैन ग्रन्थमाला,
हीमबाग, बम्बई ।



भूमिका ।



ग्रन्थ-परिचय ।

धीमन्तोमंदेवगुरुविद्या यह 'नीतिशास्त्रग्रन्थ' संस्कृत साहित्य-शास्त्रका एक अमूल्य और अनुरूप ग्रन्थ है । इसका प्रधान विषय राजनीति है । राजा और उसके राज्यसंगानके सम्बन्ध स्थापित करने के लिये सभी आवश्यक बातोंका इसमें विवेचन किया गया है । यह शासक-ग्रन्थ ग्रन्थ है और सुव्यवस्थित सिद्धांतों पर आधारित है । इसकी प्रतिपादनशैली बहुत ही सुन्दर, प्रभावशालिनी और गंभीरतापूर्ण है । बहुत बड़ी बातोंको एक छोटेसे वाक्यमें कह देनेकी कलामें इसके कर्ता विद्वत् हैं । जैसा कि ग्रन्थके नामसे ही प्रकट होता है, इसमें विद्वत् नीतिशुद्धका मन्यव करके सारभूत अमूल्य बोध दिया गया है और इसका प्रत्येक वाक्य इस बातकी गारंटी देता है । नीतिशास्त्रके विद्यार्थी इस अमूल्यका पान करके अवश्य ही सन्तुष्ट होंगे ।

यह ग्रन्थ ११ समुहोंमें • विभक्त है और प्रत्येक समुहमें उसके नामके अनुसार विषय प्रतिपादित है ।

प्राचीन राजनीतिक साहित्य ।

राजनीति, बार पुरुषार्थोंमेंसे हमारे अर्धपुरुषार्थके अन्तर्गत है । जो लोग यह समझते हैं कि प्राचीन भारतवासियोंने 'धर्म' और 'मोक्ष' को छोड़कर अन्य पुरुषार्थोंका भार भरोषे ध्यान नहीं दिया, वे इस देशके प्राचीन साहित्यसे अपरिचित हैं । यह सच है कि पिछले समयमें इन विषयोंकी भारीसे लोप उदात्त होत गयी, इनका पठन पाठन बन्द होना गया और इस कारण इनके सम्बन्धका आ साहित्य या वह धार धार नष्ट होना लगा । फिर भी इस बातका प्रमाण मिलता है कि राजनीति आज भी प्राचीन या यही मूल उन्नति हुई या और इनका अनेकानेक ग्रन्थ रचने गये थे ।

अर्यशास्त्रको संक्षिप्त करके लिखा है। अर्यशास्त्र प्रायः गणमें है; परन्तु यह श्लोक-बद्ध है। यह भी अपने ढंगका अपूर्व और प्रामाणिक ग्रन्थ है और अर्यशास्त्रको समझनेमें इससे बहुत सहायता मिलती है। इसमें भी विशालाक्ष, पुण्डरीक, वसु आदि प्राचीन नीतिग्रन्थकर्त्ताओंके मतोंका उल्लेख है।

कामन्दकके नीतिमारके बाद जहाँ तक हम जानते हैं, यह नीतिशास्त्रामृत ग्रन्थ ही ऐसा बना है, जो उक्त दोनों ग्रन्थोंकी श्रेणीमें रफ़्मा जा सकता है और जिसमें शुद्ध राजनीतिकी चर्चा की गई है। इसका अध्ययन भी कौटिलीय अर्यशास्त्रके समझनेमें बड़ी भारी सहायता देता है।

नीतिवाक्यामृतके कर्त्ताने भी अपने द्वितीय ग्रन्थमें गुरु, शुक, विशालाक्ष, भारद्वाजके नीतिशास्त्रोंका उल्लेख किया है *। मनुके भी बीसों श्लोकोंको उद्धृत किया है +। नीतिवाक्यामृतमें विष्णुगुप्त या चाणक्यका और उनके अर्यशास्त्रका उल्लेख है x। बृहस्पति, शुक, भारद्वाज, आदिके अभिप्रायोंको भी उन्होंने नीतिवाक्यामृतमें संग्रह किया है जिसका स्पष्टीकरण नीतिवाक्यामृतकी इस संस्कृत

÷ देखो गुजराती प्रेम बम्बईके 'कामन्दकीय नीतिगार' की भूमिका।

* “न्यायादवसरमलभमानस्य चिरसेवकसमाजस्य विशतय इव नर्मयचिबो-
क्षयः प्रतिपन्नकामचारव्यवहारेषु स्वैरविहारेषु मम गुरुशुकविशालाक्षपरीक्षित-
पराशरभीमभीष्मभारद्वाजादिप्रणीतनीतिशास्त्रध्वणसनाय ध्रुतपथमभजन्त ।” —

यशस्तिलकचम्पू आदवाम २, पृ० २३६

+ “दृषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः।

समं सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥

इति कथमिदमाह वेदस्ततो मनु ।” — यशस्तिलक आ० ५, पृ० १००।
यह श्लोक मनुस्मृति अ० ६ का ६६ वाँ श्लोक है। इसके विवाय यशस्-
तिलक आदवास ४, पृ० ९०—९१—११६ (प्रोक्षितं भक्षयेत्), १
(प्रीत्या स्थयं), १२७ (सभी श्लोक), १४९ (सभी श्लोक
२८७ (अधीन्य) के पद्य भी मनुस्मृतिमें ज्योंके त्यों मिलते हैं। यह
वहाँ यह नहीं लिखा है कि ये मनुके हैं। ‘उक्त च’ रूपमें ही दिये हैं।

x नीतिवाक्यामृत पृष्ठ० ३६ मूत्र ९, पृ० १०७ मूत्र ४, पृ० १७१ १
१८ आदि।

टीकासे होता है। स्मृतिधारोंसे भी वे अच्छी तरह परिचित मादूम होते हैं।[†] इससे हम यह कह सकते हैं कि नीतिवाक्यामृतके कर्ता पूर्वोक्त राजनीतिक साहित्यके यथेष्ट परिचित थे। बहुत संभव है कि उनके समयमें उक्त राजका सब साहित्य नहीं तो उतका अधिकांश उपलब्ध होगा। कमसे कम पूर्वोक्त आचार्योंके ग्रन्थोंके गार या संग्रह यदि अवश्य मिलते होंगे।

इन सब बातोंसे और नीतिवाक्यामृतको अच्छी तरह पढ़नेसे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि नीतिवाक्यामृत प्राचीन नीतिसाहित्यका गारभूत ग्रन्थ है। दूसरे शब्दोंमें यह उन सबके आधारसे और कविकी मिलसुग प्रतिभासे प्रसृत हुआ संग्रह ग्रन्थ है। जिस तरह कामन्दकने चाणक्यके अर्थशास्त्रके आधारसे संक्षेपमें अपने नीतिसारका निर्माण किया है, उसी प्रकार सोमदेवसूरिने उनके समयमें जितना नीतिसाहित्य प्राप्त था उसके आधारसे यह नीतिवाक्यामृत निर्माण किया है।—दोनोंमें अन्तर यह है कि नीतिगार श्लोकबद्ध है और केवल अर्थशास्त्रके आधारसे लिखा गया है, परन्तु नीतिवाक्यामृत ग्रन्थमें है और अनेकानेक ग्रन्थोंके आधारसे निर्माण हुआ है, यद्यपि अर्थशास्त्रकी भी इसमें यथेष्ट सहायता थी गई है।

बौटिलीय अर्थशास्त्रकी भूमिकामें धीयुत रामशास्त्रीने लिखा है कि “यद्यप्यशोधरमहाराजगमवालेन सोमदेवसूरिणा नीतिवाक्यामृतं नाम नीतिशास्त्रं विरचितं तदपि कामन्दकीयमिव बौटिलीयार्थशास्त्रादेव संक्षिप्य संशुद्धोन्मिति तदग्रन्थपद-वाच्यदर्शनीपरीक्षार्थं निरुत्पन्नं ज्ञायते।” अर्थात् यशोधर महाराजके समकालिक सोमदेवसूरिने जो ‘नीतिवाक्यामृत’ नामका ग्रन्थ लिखा है उसके पद और वाच्यार्थोंकी दर्शनीय परीक्षासे यह निष्पन्नदेह कहा सकता है कि वह भी कामन्दकके नीति-

† “विप्रकीर्तावृष्टाणि पुनर्विवाहदीशमर्हताणि स्मृतिधाराः”—नी० पृ० ३७७ सू० २७, “ध्रुते स्मृतेषां गृह्यपत्रे, यदास्तिलक आ० ४, पृ० १०५—“ध्रुति-स्मृतीभ्यामर्ताव वाप्ये”—यदास्तिलक आ० ४, पृ० १११, “तथा च स्मृतिः” पृ० ११६ और “इति स्मृतिधारकीर्तितमप्रमाणीकृत्यं” पृ० २८७।

— यदास्तिलक आ० ४ पृ० १०० में नीतिगार आचार्याजके पादुप्य ग्रन्थोंके दो श्लोक और विद्यालालाक्षके कुछ वाक्य दिये हैं। वे विद्यालाल संभवतः वे ही नीतिगार हैं जिनका उल्लेख अर्थशास्त्र और नीतिगारमें किया गया है।



३—पुरोहितमुदितोरितकुलशीलं पङ्कजे घेदे देवे निमित्ते दण्डनी-
त्पां च अभिविनीतमापदां दैवमानुषाणां अर्घ्यभिरुपायैश्च प्रतिक-
र्त्तारं कुर्वीत । —अर्थ० पृ० १५-१६ ।

पुरोहितमुदितकुलशीलं पङ्कजेदे देवे निमित्ते दण्डनीत्यामभिविनीत-
मापदां दैवीनां मानुषाणां च प्रतिकर्त्तारं कुर्वीत । —नीति० पृ० १५९ ।

४—परमर्मज्ञः प्रगल्भः छात्रः कापटिकः । —अर्थ० पृ० १८ ।

परमर्मज्ञः प्रगल्भः छात्रः कापटिकः । — नी० पृ० १७३ ।

५—भूयते हि शुक्रसारिकाभिः मन्त्रो भिन्नः द्युभिरन्यैश्च तिर्यग्यो-
निभिः । तस्मान्मन्त्रो द्वेदशमनायुक्तो नोपगच्छेत् ।

—अर्थ० पृ० २६ ।

अनायुक्तो न मन्त्रघाटे तिष्ठेत् । भूयते हि शुक्रसारिकाभ्यामन्यैश्च तिर्य-
ग्भिर्मन्त्रेभ्यः कृतः । —नीति० पृ० ११८ ।

६—द्वादशवर्षा श्री प्राप्तन्यवदारा भवति । षोडशवर्षः पुमान् ।

—अर्थ० १५४ ।

द्वादशवर्षा श्री षोडशवर्षः पुमान् प्राप्तन्यवदारी भवतः ॥

—नीति० १७३ ।

इस तरहके और भी अनेक अवतरण दिये जा सकते हैं ।

यहाँपर पाठकोंको यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि चाणक्यने भी तो अपने
पूर्ववर्ती विशालाक्ष, भारद्वाज, बृहस्पति आदिके ग्रन्थोंका समग्र करके अपना
ग्रन्थ लिखा है* । ऐसी दशमें यदि सोमदेवकी रचना अर्पशास्त्रमें मिलती जुल-
ती हो, तो क्या आश्चर्य है । क्योंकि उन्होंने भी उन्हीं ग्रन्थोंका मन्थन करके
अपना नीतिशास्त्रामृत लिखा है । यह दूरी बात है कि नीतिशास्त्रामृतकी
रचनाके समय ग्रन्थकर्त्ताके सामने अर्पशास्त्र भी उपस्थित था ।

परन्तु पाठक इसमें नीतिशास्त्रामृतके महत्त्वको कम न समझ लें । ऐसे
विषयोंके ग्रन्थोंका अधिकतम माग समग्ररूप ही होता है । क्योंकि उसमें उन
सब तत्त्वोंका समावेश तो निरान्त आवश्यक ही होता है जो ग्रन्थकर्त्ताके पूर्व
लेखकों द्वारा उस शास्त्रके सम्बन्धमें निर्धारित हो चुकते हैं । उनके सिवाय जो
नये अनुभव और नये तत्त्व उपलब्ध होते हैं उन्हें ही वह विशेषरूपसे अपने

ग्रन्थमें लिपिवद्ध करता है। और हमारी समझमें नीतिवाक्यामृत ऐसी बातोंसे खाली नहीं है। ग्रन्थकर्ताकी स्वतंत्र प्रतिभा और मौलिकता उसमें जगह जगह प्रस्फुटित हो रही है।

ग्रन्थकर्ताका परिचय।

गुरुपरम्परा।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है नीतिवाक्यामृतके कर्ता श्रीसोमदेवसूरि हैं। ये देवसंघके आचार्य थे। दिगम्बरसम्प्रदायके सुप्रसिद्ध चार संघोंमेंसे यह एक है। मगराज कविके कथनानुसार यह संघ सुप्रसिद्ध तार्किक भट्टाकलंकदेवके बाद स्थापित हुआ था। अकलंकदेवका समय विक्रमकी ९वीं शताब्दिका प्रथम पाद है। *

सोमदेवके गुरुका नाम नेमिदेव और दादागुरुका नाम यशोदेव था। यथा:—

धीमानस्ति स देवसंघतिलको देवो यशःपूर्वकः,
शिष्यस्तस्य बभूव सहुणनिधिः श्रीनेमिदेवाख्यः।
तस्याध्वर्यतपः स्थितेस्त्रिनयतेजैर्तुर्महायादिनां,
शिष्योऽभूदिह सोमदेव इति यस्तस्यैव काव्यक्रमः ॥

—यशस्ति वक्रचम्पू।

नीतिवाक्यामृतकी गद्यप्रशस्तिसे भी यह मालूम होता है कि ये नेमिदेवके शिष्य थे। साथ ही उगमें यह भी लिखा है कि ये महेन्द्रदेव भाररुके अनुज-थे। इन तीनों महात्माओं—यशोदेव, नेमिदेव और महेन्द्रदेवके सम्बन्धमें हमें और कोई भी बात मालूम नहीं है। न तो इनकी कोई रचना ही उपलब्ध है और न अन्य किसी ग्रन्थदिमें इनका कोई उल्लेख ही मिलता है। इनके पूर्वक नामाशक्त ग्रन्थमें भी कुछ ज्ञान नहीं है। सोमदेवसूरिकी शिष्यपरम्परा भी अज्ञान है। यथास्तवक्रक टीकाकार आशुनगागरसूरिने एक जगह लिखा है कि वादराज और वादाभांगह, दानी ही सोमदेवके शिष्य थे x, परन्तु इनके

* इति देवीनेवा भाग १। अंक ७—८।

x “उप न वादराजेन मदासीयता— न वादिगजोऽपि
ग्रामामदावाचक्षेय शिष्य—‘वादिभिर्मिहोऽपि मदीयशिष्यः धीया-
दिगजाऽपि मदीयशिष्यः’ इत्युक्तम्।”

—यशस्तिवक्रटीका भा० २, पृ० १९५।

लिए उन्होंने जो प्रमाण दिया है वह किम प्रत्यक्ष है, इसके जाननेका कोई साधन नहीं है। यशस्तिलकजी रचना शकसंवत् ८८१ (विक्रम १०१६) में समाप्त हुई है और बादिराजने अपना पारवंनायचरित शकसंवत् ९४७ (वि० १०८२) में पूर्ण किया है, अर्थात् दोनोंके बीचमें ६६ वर्षका अन्तर है। ऐसी दशामें उनका गुरु शिष्यता नाता होना दुर्घट है। इसके सिवाय बादिराजके गुरुका नाम मणिगगर था और वे इण्डि संघके आचार्य थे। अब रहे बादीमण्डि, सो उनके गुरुका नाम पुण्यवेग था और पुण्यवेग अकम्बदेवके गुरुभाई थे, इसलिए उनके समय सोमदेवसे बहुत पहले जापना है। ऐसी अवस्थामें बादिराज और बादीमण्डिजी सोमदेवका शिष्य नहीं माना जा सकता। प्रत्यक्षता के गुरु बड़े भारी तार्किक थे। उन्होंने २३ बादियोंकी पराजित करके विजयकीर्ति प्राप्त की थी +। इसी तरह महेन्द्रदेव भट्टारक भी दिग्विजयी विद्वान् थे। उनका ' बादीन्द्र-कालानल ' उपपद ही इस बातकी घोषणा करता है।

तार्किक सोमदेव ।

श्रीमोमदेवगूरि भी अपने गुरु और अनुजके समान बड़े भारी तार्किक विद्वान् थे। वे इस प्रत्यक्षी प्रशस्तिमें बहते हैं—

अल्पेऽनुग्रहधीः समे गुञ्जनता मान्ये मदानादरः,
सिद्धान्तोऽयमुदात्तविप्रचरिते श्रीमोमदेवे मयि ।
यः स्पष्टत तप्यापि दर्पदृढताप्रीतिप्रगटाप्रद-
स्तस्यापरितगर्पवर्ततपविर्मद्वाकृत्तान्तायते ॥

सातवा यह कि मैं छोटोंके साथ अनुग्रह, बराबरीवालोंके साथ गुञ्जनता और बड़ोंके साथ महान आदरका वर्ताव करता हूँ। इन विषयमें मेरा चरित्र बहुत ही उदात्त है। परन्तु जो मुझे तेढ़ दिग्गता है, उसके लिए, गर्वभीषी परवर्तकी विध्वंस करनेवाले मेरे वज्र-वचन कालम्बवन् हो जायेंगे।

दर्पान्धयेऽध्वुधमिन्धुरमित्ताने,
धादिद्विषां हस्तनदुधेय्यादिवादे ।

+ यशस्तिलकके ऊपर उद्धृत हुए वाक्यमें उन महाबाहूयोंकी मर्यादा—गुञ्जनता—विशेषकर पराजित किया था—विशेषकर बतलाइ है परन्तु नातिशायनात्मक है। इसका क्या कारण है।



समुद्रमें निकले हुए असहाय, अनाश्रु और सबनोंके हृदयकी शोभा बढ़ाने-
वाले रत्नकी तरह मुझसे भी यह अगहाय (मौलिक), अनाश्रु (बेजोश)
और हृदयमण्डन काव्यरत्न उत्पन्न हुआ ।

कर्णाग्रालिपुटैः पातुं चेतः सूक्तमृते यदि ।

मूपतां सोमदेवस्य नम्याः काव्योक्तियुक्तयः ॥ २४६ ॥

—द्वितीय आ० ।

यदि आनका चित्त कानोंकी अँजुलीसे सूक्तमृतका पान करना चाहना है, तो
सोमदेवकी नई नई काव्योक्तियाँ मुनिग ।

लोकचित्ते कवित्वे वा यदि घातुर्यचञ्चलः ।

सोमदेवकथेः सूक्तिं समम्यस्पन्तु साधयः ॥ ५१३ ॥

—तृतीय आ० ।

यदि समनोंकी यह इच्छा हो कि वे लोकव्यवहार और कवित्वमें घातुर्य प्राप्त
करें तो उन्हें सोमदेव कवि की सूक्तियोंका अभ्यास करना चाहिए ।

मया घागर्थसंभारे भुक्ते सारस्वते रसे ।

कवयोऽग्रे भविष्यन्ति नूनमुच्छिष्टभोजनाः ॥

—चतुर्थ आ०, पृ० १६५ ।

मैं शब्द और अर्थपूर्ण सारे सारस्वत रस (साहित्य रस) का स्वाद ले चुका
हूँ, अतएव अब जितने दूसरे कवि होंगे, वे निश्चयसे उच्छिष्टभोजी या जूरा
खानेवाले होंगे—वे कोई नई बात न कह सकेंगे ।

अरालकालव्यालेन ये स्तीढा साम्प्रतं तु ते ।

शब्दाः धीसोमदेवेन प्रोत्थाप्यन्ते किमद्भुतम् ॥

—पंचम आ०, पृ० २६६ ।

समयरूपी विकट मर्नेने जिन शब्दोंका निगल दिया था, अतएव जो मृत ।
गये थे, यदि उन्हें धीसोमदेवने उठा दिया—जिला दिया, तो इसमें कोई आश्चर्य
नहीं होना चाहिए । (इसमें 'सोमदेव' शब्द भ्रष्ट है । सोम चन्द्रवाची है और
चन्द्रका अमृत-निर्गमसे विषमूर्च्छित जाव मर्नेन ही जानें हे ।)

उद्धृत्य शास्त्रजलधेर्निगले निमर्गेन

पर्यागर्तस्य चिरादाभिधानरत्नम् ।

या सोमदेवविदुषा विहिता विभूषा वाग्देवता सहतु सम्प्रति तामनर्घाम् ॥

—प० आ०, पृ० २६६।

विरकालसे शास्त्रसमुद्रके बिल्कुल नीचे हूये हुए शब्द-रत्नोंका उद्धार करके सोमदेव पण्डितने जो यह बहुमूल्य आभूषण (काव्य) बनाया है, उसे धीसर-स्वती देवी धारण करें।

इन उक्तियोंसे इस बातका आभास मिलता है कि आचार्य सोमदेव किस धेणीके कपि थे और उनका उक्त महाकाव्य कितना महत्त्वपूर्ण है। पूर्वोक्त उक्तियोंमें अभिमानकी मात्रा रहने पर भी वे अनेक अंशोंमें सत्य जान पड़ती हैं। सचमुच ही यशस्तिलक शब्दरत्नोंका बड़ा भारी खजाना है और यदि मापकाव्यके समान कहा जाय कि इस काव्यको पढ़ लेने पर फिर कोई नया शब्द नहीं रह जाता, तो कुछ अत्युक्ति न होगी। इसी तरह इनके द्वारा सभी विषयोंकी व्युत्पत्ति हो सकती है। व्यवहारदक्षता बढ़ानेकी तो इसमें डेर सामग्री है।

महाकवि सोमदेवके वाक्छन्दोग्योपनिषि, कविराजकुंजर और गद्यपद्यविषाध-रचकवर्ती विशेषण, उनके छेष्टकवित्वके ही परिचामक हैं।

धर्माचार्य सोमदेव ।

यद्यपि अभीतक सोमदेवसूरिका कोई स्वतंत्र धार्मिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है; परन्तु यशस्तिलकके अन्तिम दो आश्वास—जिनमें उपामकाव्ययन या भावकोंके आचारका निरूपण किया गया है—इस बातके साक्षी हैं कि वे धर्मके कैसे समर्पित विद्वान् थे। स्वामी समन्तभद्रके रत्नकरण्डके बाद भावकोंका आचारशास्त्र ऐसी उत्तमता, स्वाधीनता और मार्मिकताके साथ इनने विस्तृतरूपमें आजतक किसी भी विद्वान्की कलमसे नहीं लिखा गया है। जो लोग यह समझते हैं कि धर्मग्रन्थ तो परम्परामें चले आये हुए ग्रन्थोंके अनुवादमात्र होते हैं—उनमें ग्रन्थकर्ता विशेष क्या कहेगा, उन्हें यह उपामकाव्ययन अवश्य पढ़ना चाहिए और देगना चाहिए कि धर्मशास्त्रोंमें भी मौलिकता और प्रतिभाके लिए कितना विस्तृत क्षेत्र है। खेद है कि जैनग्रन्थमें इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थके पठन पाठनका प्रसार बहुत ही कम है और अब तक इसका कोई हिन्दी अनुवाद भी नहीं हुआ है।

नागेश्वरशर्मनकी प्रशस्तिमें लिखा है—

न कण्ठसमयतके नाकछंकोभसि पारी
न भयसि सप्तयोजनी दंसतिद्वान्तदेवः ।

न च पञ्चतन्त्रिणां पूज्यपादोऽति तत्परं
पद्मिनां चामिदानीं गोमदेष्टेन स्तार्धम् ॥

अर्थात् हे बारी, न तो तु गमनार्थन हाथों पर तर्क करनेके लिए अज्ञान-
बदेष्टेके तुम्हारे, न जैनसिद्धान्तके बहनेके लिए ईश्वरसिद्धान्तके और न
व्याकरणके पूज्यपाद हैं, फिर इन सब गोमदेष्टके साथ मिला बिरते पर बात
करने क्या है !

इस उपनिषे स्पष्ट है कि गोमदेष्टादि तर्क और जैनसिद्धान्तके समान व्याक-
रणशास्त्रके भी वर्णित है ।

राजनीतिक गोमदेष्ट ।

गोमदेष्टके राजनीतिज्ञ होनेका प्रमाण यह नीतिवाक्यामूल तो है ही, इसके
शिवाय उनके दशमिलकमें भी दशोपर महाराजका चरित्रचित्रण करते समय
राजनीतिही बहुत ही विराट और विमृष्ट कथा की गई है । पाठकोको चाहिए
कि ये इसके लिए दशमिलकका मूल्य आश्चर्य अवरय करें ।

यह आश्चर्य राजनीतिक तर्कोंसे भरा हुआ है । इस विषयमें यह अद्वितीय
है । वर्णन करनेकी शैली बड़ी ही सुन्दर है । कविताकी कमनीयता और सर-
लभाषे राजनीतिही नीरसता माध्यम नहीं कहाँ बतौ गई है । नीतिवाक्यामूलके
अनेक अर्थोंका अभिप्राय लगभग किसी न किसी रूपमें अन्तर्निहित जान
पड़ता है + ।

* अक्षरार्थकेन्द्र—अष्टगहसी, राजवार्तिक आदि ग्रन्थोंके रचियता । हंस-
सिद्धान्तकेन्द्र—ये कोई ऐश्वर्यमय आचार्य जान पड़ते हैं । इनका भव तर्क
और बड़ी कोई उल्लेख देखनेमें नहीं आया । पूज्यपाद—देवनाम्नि, जेनेन्द्र-
व्याकरणके कर्ता ।

+ नीतिवाक्यामूल और दशमिलकके कुछ समानार्थक कथनोंका मिलान
कीजिए —

१—मुमुक्षुशाला नात्रनशाल — ना० बा० पृ० ५३ ।

प्यारापणां निर्दिष्टा निर्दिष्ट पुनस्तनकाशे,

मध्यं दिनस्य धियजध्वजः प्रभाते ।

भुक्तिं जगत् नृपते मम चयं सर्वं

स्तन्याः न पयं समयः क्षुधितो यद्वय ॥ ३२८ ॥

—यशोभलक ना० ३ ।

जहाँ तक हम जानते हैं जैनविद्वानों और आचार्योंमें—दिगम्बर और श्वेता-
म्बर दोनोंमें—एक सोमदेवने ही 'राजनीतिशास्त्र' पर कलम उठाई है। अत-
एव जैनसाहित्यमें उनका नीतिवाक्यामृत अद्वितीय है। कमसे कम अब तक
तो इस विषयका कोई दूसरा जैनग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है।

ग्रन्थ-रचना।

इस समय सोमदेवसूरिके केवल दो ही ग्रन्थ उपलब्ध हैं—नीतिवाक्यामृत
और यशस्तिलकचम्पू। इनके सिवाय—जैसा कि नीतिवाक्यामृतकी प्रश-
स्तिसे मालूम होता है—तीन ग्रन्थ और भी हैं—१ युक्तिचिन्तामणि, २ त्रिवर्ग-
महेन्द्रमातलिसंजल्प और ३ घण्टाघटिप्रकरण। परन्तु अभी तक ये
कहीं प्राप्त नहीं हुए हैं। उक्त ग्रन्थोंमेंसे युक्तिचिन्तामणि तो अपने नामसे
ही तर्कग्रन्थ मालूम होता है और दूसरा शायद नीतिविषयक होगा। महेन्द्र
और उसके सारथी मानलिके संवादरूपमें उसमें त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और
कामकी चर्चा की गई होगी। तीसरेके नामसे सिवाय इसके कि उसमें ९६ प्रकरण
या अध्याय हैं, विषयका कुछ भी अनुमान नहीं हो सकता है।

इन सब ग्रन्थोंमें नीतिवाक्यामृत ही सबसे पिछला ग्रन्थ है। यशोधरमहाराज-
चरित या यशस्तिलक इसके पहलेका है। क्योंकि नीतिवाक्यामृतमें उसका उल्लेख
है। बहुत संभव है कि नीतिवाक्यामृतके बाद भी उन्होंने ग्रन्थरचना की हो
और उक्त तीन ग्रन्थोंके समान वे भी किसी जगह दीमक या चूड़ोंके खाद्य बन
रहे हों, या सर्वथा नष्ट ही हो चुके हों।

विशाल अध्ययन।

यशस्तिलक और नीतिवाक्यामृतके पढ़नेसे मालूम होता है कि सोमदेवसूरिका
अध्ययन बहुत ही विशाल था। ऐसा जान पड़ता है कि उनके समयमें जितना
(पूर्वोक्त पद्यमें बारायण, निमि, विषय और चरक इन चार आचार्योंके
ग्रन्थोंका उद्देश्य दिया गया है।)

२—कोकयद्विकामः निमि भुषीत। यशोधरमहाराजः दिवागवम् ॥ नी०
रा० पू० २०३।

अन्ये विद्वद्मातुः --

यः कोकयद्विकामः स नक्तं भोक्तुमर्हति।

स भोक्ता यामरे यद्य रात्रौ रक्ता यशोधरम् ॥ ३३० ॥

—यशस्तिलक भा० १।

विश्वोंके आचार्योंका भी उन्होंने कई प्रसंगोंमें जिक्र किया है। प्रजापतिप्रोक्त चित्रकर्म, यराहमेहिरकृत प्रतिष्ठाकाण्ड, आदित्यमेत, निमित्तोप्याय, महाभारत, रत्नपरीक्षा, पतंजलिका योगशास्त्र और धररुचि, ड्याम, हरप्रबोध, कुमारीलक्ष्मी उक्तिओंके उद्धरण दिये हैं। सैदान्तवैशेषिक, तार्किक वैशेषिक, पाशुपत, कुलाचार्य, सांख्य, दशबलशासन, जैमिनीय, बाईस्पत्य, वेदान्तपादि, कणाद, तायान्त, कापिल, मन्नाद्वैतवादि, अवधूत आदि दर्शनोंके सिद्धान्तोंपर विचार किया है। इनके सिवाय मत'ङ्ग, भृगु, भर्ग, भरत, गौतम, गर्ग, विमल, पुलह, पुलोम, पुलस्ति, पराशर, मरीचि, धिरोचन, धूमध्यज, नीलपट, ग्रहिल, आदि अनेक प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध आचार्योंका नामोल्लेख किया है। बहुतसे ऐतिहासिक दृशान्तोंका भी उल्लेख किया गया है। जैसे यवनदेश (यूनान ?)में मणिकुण्डला रानीने अपने पुत्रके राज्यके लिए विषदूषित शराबके कुरलेमें अजराराजाको, सूरसेन (मथुरा) में यस्मन्तमतिने धिमे आलसेसे रंगे हुए अधरांसे सुरतविलास नामक राजाको, दशार्ण (भिलगा)में घृकोदरीने विषग्नि करपनीसे मन्मार्णव राजाको, मगध देशमें मदिराक्षीने तीमे दर्पणसे मन्मघविनोदको, पाण्ड्य देशमें चण्डरसा रानीने कवरीमें लुपी हुई लुरीसे मुण्डीर नामक राजाको मार

१,२,३,४,५—उक्त पाँचों ग्रन्थोंके उद्धरण यश० के चौथे आस्वागके पृ० ११२-१३ और ११९में उद्धृत हैं। महाभारतका नाम नहीं है, परन्तु—'पुराण मानवो धर्मः साङ्गो घेद्विचकिर्मितम्' आदि श्लोक महाभारतसे ही उद्धृत किया गया है।

६—तदुक्तं रत्नपरीक्षायाम्—'न केवलं' आदि, आस्वाग ५, पृ० २५६।

७—यशस्विन्द आ० ६, पृ० २७६-७७।

८,९—आ० ४ पृ० १९।

१०,११—आ० ५, पृ० २५१-५४।

१२—इन सब दर्शनोंका विचार पाँचवें आस्वागके पृ० २६९ से १७० तक किया गया है।

१३—देवी आस्वाग ५, पृ० २५२-५५ और २९९।

कल्प ० । इत्यादि । पौर्णमिष अष्टमिना भी बहुमते शब्दे है । जैसे प्रजापति ब्रह्मा-
का कल्प अष्टमि लक्ष्मी का कल्पमान हो गया, बरहस्पति का कल्पमानने एक
दशमिना बीसवरा उगरे बरहस्पति अष्टमि पक्षा उठवा, आदि x । इन सब बातोंसे
साफ ज्ञान लगेगे कि आचार्य गोमटेका इन विज्ञान सिंगुल और आधारक था ।

उद्धार विचारनीयता ।

महाविष्णु के प्रारम्भ १० हैं आठमें गोमटेकादि कहते हैं —

गोमो मुनिः कालादुन्मोऽलेवायः समयागमाः ।

सर्वेसाधारणाः सर्वज्ञाधिपतारो ह्येकवचनाः ॥

अर्थात् राजवादा कहते हैं कि स्वकरण, प्रमाणशास्त्र (व्याख), वाक्यवे,
ग्रन्थशास्त्र, अलेखशास्त्र और (आदेश, प्रमाण, कविता, वाचांक, कला, बौद्धा-
दि) सर्वशास्त्र साधर्मिके समान सर्वसाधारण है, अर्थात् जिन तरह वेदविके
मार्ग पर ब्रह्मण भी चल सकते हैं और वास्तव भी, उगी तरह इनपर भी
राजवा अधिकार है । +

इन उक्तिसे साफ ज्ञान लगेगा है कि उनके विचार इनके सम्बन्धमें मिलने
उत्पन्न थे । उक्त धर्मसाधारणता की चीज समझने से और यही कारण है जो
उन्होंने धर्माचार्य होकर भी अपने धर्मसे दूर धर्मके माननेवालोंके साक्षि-
का भी अपनी तरफसे अभ्यवन किया था, यही कारण है जो वे पूज्यपाद
और महि अक्षयकन्देयक गुरु पाणिनि आदिका भी आदरके साथ उल्लेख
करते हैं और यही कारण है जो उन्होंने अपना यह राजनीतिशास्त्र लोगों अज्ञे-
ता आचार्योंके विचारोंका मार मारकर बनाया है । यह सब है कि उनका जैन
मिथ्यान्तों पर अक्षय विरुद्ध है और इसीलिए सरस्वतिजनकने उन्होंने अन्य मिथ्या-

० दशमिना ० भा० ४, पृ० १५३ । इन्ही अष्टमिनाका उल्लेख नातिहासि-
मूल (पृ० १५३) में भी किया गया है । आध्याय ३, पृ० ४३९ और ५५०
में भी जैन का कोई पवित्रागम स्थान दिखे मग है ।

x दश० भा० ४ पृ० १३८—३९ ।

+ ' लाया स्वकरणशास्त्रम्, मुक्त आगमशास्त्रम्, समयागमा विज्ञाने
ज्ञानवर्धनसमस्तवाक्यशास्त्रावना । महु-ना । सर्वेसाधारणा सांख्य कथिता
प्रतिपादना । ४ एवं नाम्नाम ह्य । यथा ताज्जनाम प्राश्नाधर्मा-न,
तर्हि मनुष्याः । उक्तं हि जैनः । मनुष्याः ।

ये । अमोघवर्षके पुत्र अकालवर्ष (द्वितीय कृष्ण) और अकालवर्षके जगन्तुंग हुए । इन जगन्तुंगके दो पुत्री—इन्द्र या नियवर्ष और वाहिग या अमोघवर्ष (तृतीय) भेजे—अमोघवर्ष तृतीयके पुत्र कृष्णराजदेव या तृतीय कृष्ण थे । इनके समयमें राज सन् ८१७, ८७१, ८७८, और ८८१ के बार मिले हैं, इनमें इनका राज्यका काल कम ८१७ से ८८१ तक अनुमान है । ये दक्षिणके सावंभीमगडा थे और बड़े प्रतापी थे । इनके अधीन अनेक सामन्तिक या करदा राज्य थे । कृष्णराजने—जिगा कि गोमदेवगूरिने दिया है—गिहल, बोल, पाण्डव और चोर राजाओंको मुद्रमें पराजित किया था । इनके समयमें बनबी भारवा मुद्रगिह बलि पोष्य हुआ है जो जैन या और जिनमें धान्निपुराण नामक धेनु ग्रन्थकी रचना की है । महाराज कृष्णराज देवके दरबारमें हमें 'उभयभाषावचिकवर्णी' की उपाधि मिली थी ।

विजयके राज्यमें सलमेव नामकी एक ग्राम है जिगका प्राचीन नाम 'मान्यभेट' है । यह मान्यभेट ही अमोघवर्ष आदि राष्ट्रकूट राजाओंकी राजधानी थी । और उक्त समय बहुत ही समृद्ध थी । समझ है कि गोमदेवने हमेंको भेलगाडी या भेलगाडी दिया हो । 'हिस्टरी आफ कनारी डिस्ट्रिक्ट' के लेखकने दिया है कि योंग बलिबी उभयभाषावचिकवर्णीकी उपाधि देनेवाले राष्ट्रकूट राजा कृष्णराजने मान्यभेटमें सन् ९३९ से ९६८ तक राज्य किया है । हमें भी मालूम होता है कि मान्यभेटका ही नाम भेलगाडी होगा; परन्तु यदि यह भेलगाडी कोई दूसरा स्थान है तो समझना होगा कि कृष्णराज देवके समयमें मान्यभेटमें राजधानी

• जगन्तुंग गहौर नहीं बैठे । अकालवर्षके बाद जगन्तुंगके पुत्र तृतीय इन्द्रकी गद्दी मिली । इन्द्रके दो पुत्र थे—अमोघवर्ष (द्वितीय) और गोविन्द (तृतीय) । इनमेंसे द्वितीय अमोघवर्ष पहले गिहागनागन हुए, परन्तु कुछ ही समय के बाद गोविन्द तृतीयने उन्हें गद्दीसे उतार दिया और धात राजा बन बैठे । गोविन्दके बाद उनके बाला अर्थात् जगन्तुंगके दूसरे पुत्र अमोघवर्ष (तृतीय) गहौर बैठे । अमोघवर्षके बाद ही कृष्णराज देव गिहागनागन हुए । इन सबके विषयमें विस्तारसे जाननेके लिए डा० भाग्यशकरजी 'हिस्ट्री आफ डेवन' या उसका मराठी अनुवाद पढ़िए ।

× महागजा अमाधव (प्रथम) के पहले राष्ट्रकूटकी राजधानी मुपुरलण्डी थी जो इन समय नागिर जिलेमें मोरगुड जिलेके नामसे प्रसिद्ध है ।

परन्तु बतलाता या चुका है कि श्रीमदेकगुरि देवसंघके आचार्य ये और जहाँ तक हम जानते हैं वह मध्य दक्षिणमें ही रहा है। अब भी उत्तरमें जो आचार्योंकी गरिबी है, उनमेंसे कोई भी देवसंघकी नहीं है। यद्यपिलक्ष भी दक्षिणमें ही बना है और उगकी रचनासे भी अनुमान होता है कि उगके बर्णों दाक्षिणात्य हैं। ऐसी अवस्थामें उनका निर्गम्य होकर भी बान्यकुम्भके राजाकी सभामें रहना और उनके कहनेमें नीतिवाक्यामृतकी रचना करना अव्यभव नहीं तो विलक्षण अवश्य जान पड़ता है।

मूलग्रन्थ और उगके बर्णोंके विषयमें जिनकी बातें मालूम हो सकी उन्हें दिखाकर अब हम टीका और टीकाकारका परिचय देनेकी ओर प्रवृत्त होते हैं :—

टीकाकार ।

जिस एक प्रतिके आधारसे यह टीका मुद्रित हुई है, उगमें कहीं भी टीकाकारका नाम नहीं दिया है। संभव है कि टीकाकारकी भी कोई प्रशस्ति रही हो और वह स्तरावलीके प्रस्तावसे छुट गई हो। परन्तु टीकाकारने ग्रन्थके आरंभमें जो मंगलाचरणका श्लोक दिया है, उससे अनुमान होता है कि उनका नाम बहुत करके 'हरियल' होगा।

हरि हरियलं नम्या हरियर्ज हरिप्रभम् ।

हरिर्ग्यं च मुये टीका नीतिवाक्यामृतोपरि ॥

यह श्लोक मूल नीतिवाक्यामृतके निम्नलिखित मंगलाचरणका विवृत अनुकरण है —

श्रीम श्रीमश्रीमाकार श्रीमाभ श्रीमसंभवम् ।

श्रीमदेव मुनि नम्या नीतिवाक्यामृत मुये ॥

जब टीकाकारका मंगलाचरण मूलका अनुकरण है और मूलकारने अपने मंगलाचरणमें अपना नाम ही पर्यायान्तरमें व्यक्त किया है, तब बहुत संभव है कि टीकाकारने भी अपने मंगलाचरणमें अपना नाम व्यक्त करनेका प्रयत्न किया हो और ऐसा नाम उगमें हरियल ही हो सकता है जिसके आगे मूलके श्रीमदेवके समान 'नम्या' पद पड़ा हुआ है। यह भी संभव है कि हरियल टीकाकारके मुद्रक नाम हो और यह हमें कि श्रीमदेवका उन्होंने मूलग्रन्थकर्ताके मुद्रक नाम

समझा है। यद्यपि यह केवल अनुमान ही है, परन्तु यदि उनका या उनके गुरुका नाम दारिखल हो, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

टीकाकारने मंगलाचरणमें हरि या बामुदेवको नमस्कार किया है। इससे मा-
लूम होता है कि वे वैष्णव धर्मके उपासक होंगे।

वे कहाँके रहनेवाले थे और किस समयमें उन्होंने यह टीका लिखी है, इसके जाननेका कोई साधन नहीं है। परन्तु यह बात निःसंशय होकर कही जा सकती है कि वे बहुश्रुत विद्वान् थे और एक राजनीतिक ग्रन्थपर टीका लिखनेकी उनमें यथेष्ट योग्यता थी। इस विषयके उपलब्ध साहित्यका उनके पास काफी संग्रह था और टीकामें उसका पूरा पूरा उपयोग किया गया है। नीतिशास्त्रामृतके अधिकांश वाक्योंकी टीकामें उस वाक्यमें मिलते जुलते अभिप्रायवाले उद्धरण देकर उन्होंने मूल अभिप्रायको स्पष्ट करनेका भरसक प्रयत्न किया है। विद्वान् पाठक समझ सकते हैं कि यह काम कितना कठिन है और इसके लिए उन्हें कितने ग्रन्थोंका अध्ययन करना पड़ा होगा, स्मरणशक्ति भी उनकी कितनी प्रसर होगी।

यह टीका पचासों ग्रन्थकारोंके उद्धरणोंसे भरी हुई है। इसमें किन किन कवियों, आचार्यों या कृषियोंके श्लोक उद्धृत किये गये हैं, यह जाननेके लिए ग्रन्थक अन्तमें उनके नामोंकी और उनके पत्रोंकी एक सूची वर्णो-
मुद्रमने लगा दी गई है, इसलिए यहाँ पर उन नामोंका पृथक् उल्लेख कर-
नेकी आवश्यकता नहीं है। पाठक देखेंगे कि उसमें अनेक नाम बिजुल अपरिचित हैं और अनेक ऐसे हैं जिनके नाम तो प्रसिद्ध हैं; परन्तु रचनायें इन समय अनुपलब्ध हैं। इन शब्दोंमें यह टीका और भी बड़े महत्त्वकी है कि इनमें राजनीति या सामान्यनातिगम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थकारोंकी रचनाके सम्बन्धमें अनेक नये नये बातें मालूम आया।

सदांधकके आशेष।

इस ग्रन्थका प्रसक्तता और बृहत् सहायनका काम भीयुत पं० पञ्चा-
लालजी साहाने किया है। भाषा कबल भाषा उत्तरदायित्व पर, मेरी
अनुमतिसे, कई टिप्पणियाँ लगी गयी हैं। जिनमें टीकाकारके और उनकी
टीकाके विषयमें एक बड़ा भाग धन फैल सकता है, भगवद् गीता पर यह आश-
ङ्किक प्रमाण है कि इन टिप्पणियों पर भी एक नज़र डालनी चाहिए।
संस्कृतकी टिप्पणियोंके अभाव का प्रकार है —

१—टीकाकारने जो मनु, दृष्ट और वाङ्मन्यके ओङ उद्गुन दिये हैं, वे मनुस्मृति, दृष्टनीति और वाङ्मन्यस्मृतियोंमें नहीं हैं। यथा दृष्ट ११५ की टिप्पणी—“स्योच्यते मनुस्मृतौ तु नास्ति। टीकाकारो स्पष्टीकरणेन ग्रन्थकर्तृपराभवाभिप्रायेण बहवः शङ्काः स्वयं विरच्यस्य तत्र तत्र वचनेषु विनिर्दिष्टाः।” अर्थात् यह ओङ मनुस्मृतियोंमें तो नहीं है, टीकाकारने अपनी दुष्टतायदा मूलकताको जोचा दिशानेके अभिप्रायसे स्वयं ही बहुतसे ओङ बनाकर जगह जगह पुनर्दिये हैं।

२—इस टीकाकारने—जो रि निषवर्णक भवितुं है—बहुतेरे सूत्र अपने मनके अनुसार स्वयं बनाकर जोड़ दिये हैं। यथा दृष्ट ४९ की टिप्पणी—“अस्य ग्रन्थस्य कर्ता कश्चिदज्ञानविद्वानस्तीति निश्चितं। मतस्तेन स्वमतानुसारेण धृष्टि सुत्राणि विरच्यस्य मयोजितानि। तानि च तत्र तत्र निषेद्विषयाः।”

वहने भाष्यके सम्बन्धमें हमारा निवेदन है कि सोनीजी वैदिक धर्मके साहित्य और हमारे इतिहासमें सर्वथा अनभिज्ञ हैं, फिर भी उनके भाइयों की प्रशंसा करनी चाहिए कि उन्होंने मनु या दृष्टके नामके किसी एक ग्रन्थके किसी एक संस्करणकी देवदर ही अपनी भद्दा राय दे डाली है। गेद है कि उन्हें एक प्राचीन विद्वानके विषयमें—बेबल इन्वे ही कारणसे कि वह ज्ञान नहीं है—इतनी बड़ी एकतरफा टिका जारी कर देनेमें जरा भी शिंका नहीं हुई!

सोनीजीने सारा टीकामें मनुके नामके पाँच ओङोंपर, वाङ्मन्यके एक ओङ-पर और दृष्टके दस आठोंपर अपने मोट दिये हैं कि ये ओङ उक्त भाषाओंके ग्रन्थोंमें नहीं हैं। मनुब्रह्म हा उल्लेख मनुस्मृति, वाङ्मन्यपरस्मृति और दृष्टनामियों उद्गुन आकाश पता नहीं चलता। परन्तु जगह कि सोनीजी समझते हैं, हमका कारण टीकाकारके दुष्टता या मूलकताका जोचा दिशानेका प्रवृत्ति नहीं है।

सोनीजीका ज्ञानना नाशक कि “हन्दुधर्म भगवान्मात्रे समय समय पर बहुत कुछ परिवर्तन होत रहत है। जहाँ नमोत्तममयने रोजिग करके थे, इस समय उस रूपमें न। प्रत्यक्ष है। उनका मुख्य भागकरण भी हुआ है और प्राचीन ग्रन्थों के जहाँ हा ज्ञानमें उनका नामसे दृष्टमान न। सभी नामके ग्रन्थ बना दिये हैं। इसके विषय एक स्थानके प्राचीन ग्रन्थ के द्वारा स्थानों की पोतपात पात नहीं मिलता। इस विषयमें प्राचीन साहित्यके साक्ष्यमान बहुत। कुछ उल्लेखों का है और

विषय पर बहुत कुछ प्रकाश डाला है। कौटिलीय अर्थशास्त्रही मूमिनामें उन्हीं सुप्रसिद्ध गम्पादक पं० आर. रामशास्त्री लिखते हैं:—

“अतएव चाणक्यशक्तिकं धर्मशास्त्रमधुनातनाशास्त्रं तथा मन्वादिग्रन्थसंग्रहो दिति प्रतिनानि । एवमेव ये पुनर्मानव-बाह्यस्वायौशनसा मिश्रामिप्रायस्तत्र कौटिल्येन पराश्रुताः न तेऽधुनोपलभ्यमानेषु तत्तदर्थशास्त्रेषु दृश्यन्त इति कौटिल्यपराश्रुतानि तानि शास्त्राण्यन्यान्वेयेति वार्त्तं सुवचम् ।”

अर्थात् हममें मान्य होना है कि चाणक्यके समयका याज्ञवल्क्य धर्मशास्त्र वर्तमान याज्ञवल्क्य शास्त्र (स्मृति) से कोई जुदा ही था। इसी तरह कौटिल्य अपने अर्थशास्त्रमें जगह जगह बाह्यस्वाय, औशनस आदिमें जो अनेक अमिप्राय प्रकट किये हैं वे अमिप्राय इस समय मिलनेवाले उन धर्मशास्त्रोंमें न मिले लाई देते। अतएव यह अच्छी तरह सिद्ध होता है कि कौटिल्यने नि. शास्त्रोंका उल्लेख किया है, वे इनके विवाय दूसरे ही थे।

स्वर्गीय बाबू रमेशचन्द्र दत्तने अपने ‘प्राचीन सभ्यताके इतिहास’में लिखा है कि प्राचीन धर्मसूत्रोंको सुधार कर उत्तरकालमें स्मृतियाँ बनाई गई हैं—जैसे कि मनु और याज्ञवल्क्यकी स्मृतियाँ। जो धर्मसूत्र खोये गये हैं उनमें एक मनुका सूत्र भी है जिससे कि पीछेके समयमें मनुस्मृति बनाई गई है। *

याज्ञवल्क्य स्मृतिके सुप्रसिद्ध टीकाकार विश्वानेश्वर लिखते हैं:—“याज्ञवल्क्यशिष्यः कश्चन प्रश्नोत्तररूपं याज्ञवल्क्यप्रणीतं धर्मशास्त्रं संक्षिप्य कथयामास, यथा मनुप्रोक्तं भृगुः।” अर्थात् याज्ञवल्क्यके किसी शिष्यने याज्ञवल्क्यप्रणीत धर्मशास्त्रको संक्षिप्त करके कहा—जिस तरह कि भृगुने मनु-प्रणीत धर्मशास्त्रको संक्षिप्त करके मनुस्मृति लिखी है। इससे मान्य होता है कि उक्त दोनों स्मृतियाँ, मनु और याज्ञवल्क्यके प्राचीन शास्त्रोंके उनके शिष्यों या परम्पराशिष्यों द्वारा निर्मित किये हुए सार हैं और इस बातकी तो सभी जानते हैं कि उपलब्ध मनुस्मृति भृगुप्रणीत है—स्वयं मनुप्रणीत नहीं।

बम्बईके गुजरातीप्रेसके मालिकोंने कुल्लूकभट्टकी टीकाके सहित मनुस्मृतिका एक सुन्दर संस्करण प्रकाशित किया है। उसके परिशिष्टमें ३५५ श्लोक

* रमेशचन्द्रने अपने इतिहासके चौथे भागमें इस समय मिलनेवाली पृथक्-
—पिने के स्मृतियों पर आते लिख प्रकट किये हैं और उसमें बतलाया है कि
‘‘नेमें—जो प्राचीन भी
‘‘ है।

११ ऐसे दिने है जो वर्तमान मनुस्मृतिमें तो नहीं मिलते हैं; परन्तु हेमाद्रि, मिता-
हारा, पराशरमाधवीय, श्वेतशिक्षाकर, निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थोंमें मनु, बृहस्पति
और बृहन्मनुके नामों 'उपेक्ष' रूपमें उद्धृत किये हैं। इनके विचार से इस
श्लोक के अर्थमें भी दिने है, जिनकी वृत्त्युक्त भरणे भी टीका नहीं की है।

हमारे ग्रन्थोंमें भी मनुके नामों अनेक श्लोक उद्धृत किये गये हैं जो इस
मनुस्मृतिमें नहीं हैं। उदाहरणार्थ स्वनामधेय ६० टोडरमल्लजीने अपने
मोक्षमार्गप्रकाशके पाँचवें अधिबोधमें मनुस्मृतिमें तम श्लोक दिये हैं, जो
वर्तमान मनुस्मृतिमें नहीं है *। इसी तरह 'द्विजवदनचरित' नामक सिन्धु
ग्रन्थमें भी मनुके नामों ७ श्लोक उद्धृत हैं जिनमेंसे वर्तमान मनुस्मृतिमें
केवल १ मिलते हैं, दोन ५ नहीं है।*

शुक्लनामि जो इस समय मिलती है उनके विषयमें तो विद्वानोंकी यह राय
है कि यह बहुत पीछेकी कृति हुई है--पाँच छ गी बरसे पहलेकी तो यह
निसी तरह ही ही नहीं कहती। शुक्लका प्रचलन ग्रन्थ हमारे कोई उपर ही
था +। बौद्धिक अर्थशास्त्रमें लिखा है कि शुक्लके मतसे दण्डनिति एक ही
राजविद्या है, इसीमें सब विषयों सम्मिलित हैं, परन्तु वर्तमान शुक्ल नीतिशास्त्रों चारों
विद्याओंको राजविद्या मानता है--'विद्याभ्यस्तस्य एषेताः' आदि (अ० १,
श्लो० ५१)। अतएव इस शुक्लनामि की शुक्ल मानना भ्रम है।

इन सब बातों पर विचार करनेसे हम टीकाकार पर यह दोष नहीं लगा
सकते कि उनमें स्वयं ही श्लोक गड़बड़ मनु आदिके नाम पर मढ़ दिये हैं। हम यह
नहीं कहते कि वर्तमान मनुस्मृति उक्त टीकाकारके बादका है, इस लिए उस समय यह
न उपलब्ध होगा। क्योंकि टीकाकारसे भी पहले मूलकर्ता धर्मशास्त्रकार भी मनुके
गीतों आदि उद्धृत किये हैं और वे वर्तमान मनुस्मृतिमें मिलते हैं, अतएव टीकाकार-
के समयमें भी यह मनुस्मृति अवश्य होगी, परन्तु इसका या प्रति उन्हें उप-
लब्ध होगा, उसमें टीकाकार श्लोकोंका रहना असंभव नहीं माना जा सकता।

* हेमाद्रि माधवाचार्यका नामधेयका सम्करण पृष्ठ २०१।

* 'द्विजवदनचरित' नामक ग्रन्थ है, काट्यायनक धातुत ५ ब्रह्मणा भर-
त, महाटी टीकासहित प्रकाशित किया था।

+ दशगुप्तगाना प्रसक्त शुक्लनामिका भूमिका।

यह भी संभव है कि किसी दूसरे ग्रन्थकर्त्ता ने इन ओङ्कारों को मनुके नामसे उद्धृत किया हो और उस ग्रन्थके आधारसे टीकाकारने भी उद्धृत कर लिया हो। जैसे कि अभी मोक्षमार्गप्रकाशके या द्विजवदनचरित्रके आधारसे उनमें उद्धृत किने हुए मनुस्मृतिके ओङ्कारों, कोई नया लेखक अपने ग्रन्थमें भी लिख दे।

संज्ञाचरित्रस्मृतिके ओङ्कारके विषयमें भी यही बात कही जा सकती है। अरुही शुक्लीति, जो उसका प्राचीनतामें तो बहुत ही संदेह है। वह तो इस टीकाकारमें भी पीछेकी रचना मान पड़ती है। इसके सिवाय शुक्लके नामसे तो टीकाकारने दो बार नही १७० के लगभग ओङ्कार उद्धृत किये हैं। तो बरा टीकाकारने वे सबके सब ही मूलकर्त्ताको नीचा दिगानेकी गरजसे यह लिखे होंगे। और मूलकर्त्ता तो इसमें अपने कोई नौहीन ही नहीं समझते हैं। उन्होंने तो अपने संपादितकर्म न जाने कितने विद्वानोंके साथ और वर्य जगद् जगद् उद्धृत करके अपने विषयका प्रतीपादन किया है।

मोक्षमार्गका दूसरा भागोय यह है कि टीकाकारने स्वयं ही बहुतों मूल (पाठ) एकत्र मूलमें सम्मिलित कर लिखे हैं। विष्णुस्मृतिसंक्षेपके, नीचे लिखे ११ में, ११ में और १५ में सूचीका भाग टीकाकर्त्ताका बतलाते हैं:—

१—“विष्णुस्मृत्याः शास्त्राणां आचार्यरोऽधोरो गृह्यस्थाः ॥” २१

२—“शास्त्रान्वित्य और्ययरी येभ्यःनराः साधःप्रत्यक्षकश्चोति धामप्रस्थाः” ॥ २३

३—“शुक्लीत्यसौदक-हंस-पुष्पमर्हता यतयाः” ॥ २५

इसका वास्तव भागमें यह बन गया है कि मुद्रितपुस्तकमें और हस्तलिखित मूल-पुस्तकमें वे मूल नहीं हैं। परन्तु इस कारणमें कोई लज्ज नहीं दिग पाई वेना कभीकि-

१—जब तक इस चौथे हस्तलिखित प्रतिलिखित प्रमाणमें वैधान्त को आसकें, तब तक वह नहीं माना जा सकता कि मुद्रित और मूलपुस्तकमें भी वाद नहीं है कि मूलपुस्तक नहीं है—इसमें शेष लिखे गये हैं। इस तरहके हीन अतिरिक्त बातें कुछ कुछ प्रतिलिखित अक्षरों में लिखे हैं।

२—मूलकर्त्ता ने ११३ वर्षों के अंदर बरवाकर फिर आप्तों के अंदर बरवाये हैं—अष्टक, पञ्चम, चतुर्थम और तृतीय। फिर अष्टकचरित्रके उपक्रम, अष्टक, और शुक्ल के लिये अंदर बरवाकर इनके अंतर्गत लिखे हैं। इनके आगे अष्टक, चतुर्थम और तृतीय के लिये अक्षरों में लिखे हैं। तब वह हस्तलिखित और बरवाये हैं कि अष्टकचरित्रके लक्षण शुक्ली, चतुर्थम और तृतीय के भी

भेद बताये जाई और वे ही उक्त तीन सूत्रोंमें बताये गये हैं । तब यह निय-
मपूर्वक कहा जा सकता है कि प्रक्रमके अनुसार उक्त तीनों सूत्र अक्षर रहने
बादिए और मूलकणोंमें ही उन्हें रखा होगा । जिन प्रतिकोंमें उक्त सूत्र नहीं हैं;
उनमें उन्हें भूलसे ही गूटे हुए समझने बादिए ।

१—यदि हम धारणसे ये मूलकणोंके नहीं है कि इनमें बताये हुए भेद
अव्ययमव्यय नहीं है, तो हमारा प्रश्न है कि उपपुष्पों, कृपुषु और प्रप्र-
चारिकोंके भेद भी तो किसी जैनग्रन्थमें नहीं मिले हैं, तब उनके सम्बन्धके
जिनमें सूत्र है, उन्हें भी मूलकणोंके नहीं मानने बादिए । यदि सूत्रोंके मूल-
कणोंमें होनेकी यही कर्माटी सोचो तो ठहारा देवे, तब तो इन ग्रन्थका आधेसे
भी अधिक भाग टोकाचारण दूर जायगा । क्योंकि हमें सैकड़ों ही सूत्र ऐसे
हैं जिनका जैनधर्मके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है और कोई भी विद्वान् उन्हें
जैनग्रन्थ मानि नहीं कर सकता ।

४—जिनतरह टीकापुस्तकमें अनेक सूत्र अधिक हैं और जिन्हें सोनीको
टीकाकर्ताकी गदस्त समझते हैं, उही प्रचार मुद्रित और मूलपुस्तकमें भी कुछ
सूत्र अधिक हैं (जो टीकापुस्तकमें नहीं हैं), तब उन्हें किसकी गदस्त समझनी
बादिए ? निम्नलिखितसूत्रोंके ५९ वें सूत्रके आगे निम्नलिखित पाठ छूटा हुआ है जो
मुद्रित और मूलपुस्तकमें मौजूद है:—

“सांख्य योगो श्लोकायतं धान्वीक्षिकी । ध्याद्वर्तितोः धुनेः प्रति-
पक्षयाम् (नान्वीक्षिकीयं) । प्रकृतिपुरुषयो दि राजा सत्यमवल-
म्बते । राजा फलं ध्यायतं च परिहरति, तमाभिर्नोभिभूयते ।”

अतः इन सूत्रोंकी टीकाकारने क्यों छोड़ दिया ? इनमें कहा हुई बातें तो
उनके प्रतिपक्ष नहीं थीं और मुद्रित तथा मूलपुस्तक दोनों हाथोंमें जैनोंके लिए
विदेश प्रामाणिक माना जावे तो उनमें यह अधिक पाठ नहीं होना बादिए था ।
क्याकि हममें वैदिकोंका हाजेक कारण जैन और बौद्धमतको आन्वाक्षिकोंमें
बाहर कर दिया है । और मुद्रितपुस्तकमें ता मूलकणोंके संग्रहाकरण तबका
अभाव है । वास्तविक बात यह है कि न हममें टीकाकारका दोष है और न
मुद्रित कारनेवालेका । जिनमें जैनी प्रति निता है उसमें उन्हींके अनुसार टीका
लिखने के भार पाठ छपवा है । एक प्रारम्भ दूसरा जोर दूसराम तामरा हम तरह
प्रतिपक्ष हाथ हाथ लेनकाक प्रमादसे अकस्मात् पाठ छूट बात है जोर टिप्पण आदि
मूलमें शामिल हो जाते हैं ।

इस सामान्य है कि इन बातोंमें पाठकोंका यह भ्रम न हो जाय कि इन बातोंमें कुछ सूत्र भाग्य स्वयं मूलमें जंघित हैं। यह केवल गोपनीयता का व्यवस्था है और निष्कार है। भेद है कि हमें उनकी समझने दिगम्बरों कारण भूमिकाका इनका अधिक स्थान रोचना पडा।

एक विचारणीय प्रश्न।

इस आशयमें अधिक बड़ी हुई भूमिकाको समझ करनेके पड़ते हम अपने पाठकोंका ध्यान इस ओर विनियोजनमें आकर्षित करना चाहते हैं कि वे इस प्रश्नका जरा गहराईके साथ अध्ययन करें और देखें कि इसका जैनधर्मके साथ क्या सम्बन्ध है। हमारी समझमें तो इसका जैनधर्ममें बहुत ही कम मेल लगता है। राजनीति यदि धर्मनिरपेक्ष है, अपां वड किसी विशेष धर्मका पक्ष नहीं करती, तो फिर इसका जिन प्रकार जैनधर्ममें कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है उसी प्रकार और धर्मोंमें भी नहीं रहना चाहिए था। परन्तु हम देखते हैं कि इसका वर्णाचार और आश्रमाचारकी व्यवस्थाके लिए वैदिक साहित्यकी ओर बहुत अधिक झुकाव है। इस प्रश्नके विचारण, आन्वीक्षिकी और प्रयी समुद्देशोंका अच्छी तरह पढ़नेसे पाठक हमारे अभिप्रायको अच्छी तरह समझ पावेंगे। जैनधर्मके मर्मज्ञ विद्वानोंको चाहिए कि वे इस प्रश्नका विचारपूर्वक समायान करें कि एक जेनाचार्यकी कृतिमें आन्वीक्षिकी और प्रयीको इतनी अधिक प्रधानता क्यों दी गई है।

यथास्तलकके नीचे लिखे पद्योंको भी इस प्रश्नका उत्तर सोचते समय सामने रख लेना चाहिए:—

ह्रौ हि धर्मो गृहस्थानां लौकिकः पारलौकिकः ।

लोकधर्मो भवेद्याद्यः परस्यादागमाध्रयः ॥

जातयोऽनादयः सर्वास्तत्क्रियापि तथाविधा ।

श्रुतिः शास्त्रान्तरं वास्तु प्रमाणं कात्र न क्षतिः ॥

स्वजातीयं विशुद्धानां वर्णानामिह रत्नवत् ।

तत्क्रियाविनियोगाय जनागमविधिः परम् ॥

यद्भवमान्तिनिर्मुक्तिहेतुधीस्तत्र दुर्लभा ।

संसारव्यवहारे तु स्वतःसिद्धे ब्रूयागमः ॥

तथा च—

करते थे और हम उभयकृत्यमे अपने ज्ञानावरणीय कर्मका निवारण करते थे ।
 दुनोने तो हम कार्यके लिए लेमनशाखायें ही गोल रखी थी जिनमें निरन्तर
 ज्वलेन आर्वाचीन प्रन्थोंकी प्रतीर्षा होती रहती थी । यही कारण है जो हम
 सब मुरझकता न रहने पर भी प्रन्थोंका समेष्ट प्रसार रहता था और ज्ञानका
 कास मन्द नहीं होने पाता था । द्विषोंका हम ओर ओर भी अधिक लक्ष्य
 । हमने ऐसे पन्थामों हस्तक्षिप्त प्रन्थ देगे हैं जो धर्मशास्त्र द्विषोंके
 ही दान किये गये हैं ।

इस शास्त्रदान प्रथाको उल्लेखित करनेके लिए उग नामके विद्वान् प्रायः
 'उग दान' किंवा 'उग धन्य'के अन्तर्गत शास्त्रोंकी प्रशस्ति किया किया करते थे।
 यहाँ उगका और उगके कुटुम्बका गुणकीर्तन रहा करता था। हमारे प्राचीन
 ग्रन्थोंमें उगके अर्थोंमें इस तरहकी हजारी प्रशस्तियों संघट्ट की जा सकती है।
 यहाँ ही उग नामकारके काँपोंमें बहुत कुछ महायज्ञ भिन्न सकती है।

[illegible][illegible]

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । श्रीकृष्णार्चनम् ॥

[illegible]

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

[illegible]

1948 年 1 月 2 日 星期四 1948 年 1 月 2 日 星期四

• 6 • 118 增刊 第 2 期 1997 年 8 月 10 日 第 118 号

[illegible]

1990年12月15日

1990年12月24日

$$L_{\text{max}} = 15 \text{ cm} \quad \text{for } 10 \leq \text{depth} \leq 15 \text{ cm}$$

संज्ञित मेहा या मीहाका दूगता नाम वं० मेधावी था। ये बही मेधावी है जिन्होंने धर्मसंप्रदायापकाचार नामका ग्रन्थ बनाया है और जो मुद्रित हो चुका है। वं० मीहा अपनी गुदपरगाराके विषयमें कहते हैं कि नन्दिसंघ, बल्लभारण और सरस्वतीगण्डके भंडारक पद्मनन्दिने सिध्य भ० शुभ-चन्द्र और उनके सिध्य भ० जिनचन्द्र मेरे गुह थे। जिनचन्द्रके दो सिध्य और थे—एक रत्ननन्दि और दूसरे जितवीरि ।

यह पुस्तकदालाघी प्रचलित वं० मेधावीकी ही लिखी हुई मादम होती है। उन्होंने त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति, मूलारकी धामुनान्दिवृत्ति आदि ग्रन्थोंमें और भी कई बड़ी बड़ी प्रचलित की है। धमुनान्दिवृत्ति की प्रचलित वि० १५१६ की और त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति की १५१९ की लिखी हुई है *। धर्मसंप्रदायापकाचार उन्होंने कार्तिक बरी १३ सं० १५४१ को समाप्त किया है। नीतिशास्त्रामृतटीकाकी यह प्रचलित धर्मसंप्रदाहके समाप्त होनेके कोई आठ दिन बाद ही लिखी गई है।

धर्मसंप्रदाहमें वं० मेधावीने अपने पिताका नाम उद्धरण, माताका भीषुदी और पुत्रका जिनदास लिखा है। वे अमवाल जातिके थे और अपने समयके एक प्रसिद्ध विद्वान् थे। उन्होंने दक्षिणके पुस्तकगण्डके आचार्य धृतमुनिसे ग्रन्थ कई विद्वानोंके साथ अष्टसहस्री (विशानन्दस्वामीकृत) पढ़ी थी। जान पड़ता है कि उस समय दिगारमें जैन विद्वानोंका अच्छा समूह था। भंडारकी गरी भी शायद वही पर थी।

यह टीकापुस्तक दिगारसे आनेरके पुस्तक भंडारमें रख और कैसी पहुँची, हमका कोई पता नहीं है। आनेरके भंडारमेंसे सं० १९९४ में भंडारक महन्द्जी शास्त्रीके प्रयत्नसे हमको इसकी प्राप्ति हुई। इसके लिए हम भंडारकजी और शास्त्रीजी दोनोंके कृतज्ञ हैं।

इस प्रतिये १३३ पत्र हैं और ग्रन्थक वृष्टर्म प्राय २० पक्षिया है। प्रत्येक पक्षी लग्नाई ११० इंच और चौड़ाई २॥ इंचमें कुछ कम है। ५१ से ७५ तक पृष्ठ मौजूद नहीं है।

धर्मसंप्रदाह ।
पौपुस्तका तृतीया
१०७५ पृ० ।

निवेदक—
नाथूराम प्रेमी ।

दया नानार्हता भाग १०, अं० १-४ ।

विषय-सूची ।



पृष्ठानि ।

१ धर्मसमुद्देशः	१
२ अर्थसमुद्देशः	२७
३ कामसमुद्देशः	३३
४ अरिपङ्कजं	३९
५ विद्यापट्ट	४२
६ आन्वीक्षिकी	६७
७ त्रयी	८१
८ वार्ता	९३
९ दण्डनीति	१०२
१० मन्त्रि	१०६
११ पुरोहित	११०
१२ सेनापति	११९
१३ दूत	१७०
१४ चार	१७२
१५ विचार	१७५
१६ व्यग्न	१७७
१७ स्वाग्नि	१८०

पृष्ठानि ।

१८ अमात्य	१८५
१९ जनपद	१९१
२० दुर्ग	१९८
२१ कोश	२०२
२२ बल	२०७
२३ मित्र	२१६
२४ राजरक्षा	२२०
२५ दिवसानुष्ठान	२५१
२६ सदाचार	२५९
२७ व्यवहार	२७४
२८ विवाद	२९५
२९ पाइपुष्प	३११
३० युद्ध	३४४
३१ विशाह	३७३
३२ प्रकीर्ण	३७९
३३ ग्रन्थकर्तुः प्रशस्तिः	४०६
३४ पुनरुदात्तः प्रशस्तिः	४०७
३५ उद्धारणपदानां वर्णानुक्रमिका	४०८





श्रीषीतराणाय नमो नमः ।

श्रीमत्सोमदेवसूरिविरचितं

नीतिवाक्यामृतम् ।

मटीकम् ।

१ धर्मसमुद्देशः ।

हरिं हरिष्यत् नत्वा हरिष्यन् हरिप्रभम् ।

हरिजयं च श्रुत्वा टीकां नीतिवाक्यामृतोपरि ॥ १ ॥

टीका—अहं ब्रूवे वधिम् । का । कर्मतापना टीका । क । नीतिवाक्य
तोपरि—नीतिवाक्यान्ध्यामृत नीतिवाक्यामृतं तस्योपरि तदर्थमिष्यत्यर्थ
कृत्वा । नत्वा । क । हरि—वागुच्य । किंविशिष्ट हरि । हरिवत्
र्यायुस्तस्यैव वत् यस्यामा हरिवत्स्त ॥ १ ॥ पुनरपि कथंभूत
ण—हरिशब्देन माकलमभिर्व्ययने तद्वद् यस्यामा हरिवत्स्त
र्ण । पुनरपि करुणत्वं हरिप्रभम्—हरिप्रभं प्रभा तेषां
यस्यामा हरिप्रभम् हरिप्रभम् । पुनरपि करुणत्वं हरिप्र
दस्तस्येव पुनरपि हरिजयस्त हरिजयमिति ॥

सहोमया गौर्या वर्त्तत इति सोमस्तः । उमाशब्दस्य बहुवच्येण वर्त्तमान-
त्वेऽप्यत्र गौर्येवोच्यते प्रस्तावाद्गौचित्याद्वा, यतः प्रस्तावाद्गौचित्यादुपमान-
देशकालयुक्तिवशाच्छब्दार्थव्यगतिः, न तु शब्दशब्देवलादेव । सोमसमा-
कारमिति—सहोमया गौर्या वर्त्तत इति सोमः । तथा हि—

गौर्याभीमास्तीकांनिकोत्तिन्दुर्गापुलोमजाः ।

उमाशब्देन कथ्यन्ते कार्यस्तुंगोपमार्चिषः ॥ १ ॥

सह मया लक्ष्म्याऽष्टाणिमादिगुणैर्धर्मरूपया वर्त्तते इति समः ।

चन्द्रे छन्दमि लक्ष्म्यां च तथा शंक्रानिषेधयोः ।

माने माशब्दसंबन्धः कथ्यते शब्दचिन्तकैः ॥ १ ॥

सोमश्चासौ समश्च सोमसमः सोमसम आकारो यस्य तं कीर्ति-
लक्ष्मीसमावेशितशरीरावयवसंहतिः । सोमाममिति—सोमस्येवाभा यस्या-
सौ सोमाभः चन्द्रकान्तिः । तथा हि—

ध्यायेद्दशभुजं शान्तं कुन्देन्दुधवलं शिखे ॥ १ ॥

इत्यागमः । तथा भस्माशुगुठनात्पादुरंगाभस्तः । सोमसममिति—
सोमसंकेधात्मौत्रामणिप्रभृतिरूपि यज्ञवातः सोमशब्देनोपचारादभिधी-
यते । “ योऽन्तर्कर्मणि ” धातोर्- सोमं म्यतीति वाक्ये आतोऽनुप-
गो-कप्रत्यये कृते सति सोमसममिति सिद्धं गति तं सोमसं । ध्रुवने हि
दक्षाधरो दाशापिर्णाकोपिनेन भगवता भवानीपनिता तन्निःशब्दः
वृत्त इति । तथा च शिवपुराणे,—

“ छिन्न शिरः भगवताऽस्य मदेभ्यरेण

दक्षाधरस्य कुपिनेन कृते भवान्या ” इति वाक्ये ।

यथा च मार्कण्डेयः , -

चिच्छेद् भगवान् भुजं शिरः यज्ञस्य शक्रः । ॥

सोमेन दीव्यति शुतिमान् भवति सोमेनोपलक्षितो देवः सोम-
 देवश्चन्द्रमौलिस्तं । मुनिमिति “मीन् हिंसायां” मीनाति हिनस्ति काले
 कालाग्निरुद्ररूपेण चराचराणि भूतानीति मुनिस्तं । इत्यादिसंज्ञाशब्दानां
 निपातकालसिद्धिः । तमित्थंभूतं देवं नत्वा नीतिवाक्यामृतं ब्रवे । इत्येकः
 पक्षे महेश्वरः ॥

अथाच्युतं प्रति व्याख्या—तत्र विशेष्यं पदं सोमदेवमिति—सोम-
 संबंधात् सोमशब्देन यज्ञोऽप्युपचर्यते, सोमे यज्ञे दीव्यते देववाक्यैः
 स्तुयते यथा सोमदेवस्य यज्ञस्य देवप्रभुः क्रतुपुरुष इति यावत् तं नत्वा
 नीतिवाक्यामृतं ब्रुव इति संबंधः । कथंभूतं ? सोमं—सलक्ष्मीकं ।
 सोमसमाकारं—उकारो ब्रह्मा मकारो महेश्वरस्तथा चागमः—

अकारेण भवेद्विष्णुर्मकारेण महेश्वरः ।

उकारश्च स्वयं ब्रह्मा प्रणवे त्रितयं स्थितम् ॥ १ ॥

एवं उध मध उं सह उंभ्यां वर्तत इति सों त्रयीमूर्तिः । यथा चागमः—

यो ब्रह्मा स स्वयं विष्णुर्यो विष्णुः स महेश्वरः ।

एका मूर्तिस्तयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १ ॥

कालिदामोऽप्येवमाह—“ नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्य ” मित्यादि ।

असमाकारमिति—असमा महाप्रमाणा आकाराः प्रादुर्भावा मत्स्यहर्मा-
 दादृतिप्रदणानि यस्य तत्तथा । सों धासौ असमाकारश्च सोमसमाकारस्तं
 सोमसमाकारं । सोमामिति—उमा अतसी तदवपवेत पुष्पेष्वपि
 उमाशब्द उपचर्यते तथा गुगुनिविचक्रियन्नाय इति, उमावदामोनाभा
 सरोमाप्रया वर्तत इति सोमाभः कृष्णवर्णस्तं । सोममभे—सोमाः
 मर्कटानिका, संभवा वामनपद्मगुणमादयो जन्मावतारा यस्य स तथा ते ।

१ विष्णुपते सोमसमाकारमेश्वरस्य सो, असमाकार इति पदद्वयम् ।

२ कृष्णवर्णोऽयं दिव्यः, गुगुनः ।

गुप्तिर्यस्यासवकारः सोमसमश्वासावकारश्च सोमसमाकारस्तं । सोमसं-
भवमिति—सोमे सोमवंशे संभवति स तथा तं । तथा हि—

सोमयंशोद्भवं शुभ्रं जिनं चन्द्रप्रभं सुवे ॥ ३ ॥

सोमेन दीव्यतेऽवगम्यते “ सर्वे गत्यर्था ज्ञानार्थाः ” स तथा तं ।
मुनिमिति—मनुते जानाति सकल कल्पनाकलितचतुर्दशभुवनोदरवर्ति-
त्रिस्तलविषयवस्तुविशेषमिति मुनिस्तं । इति चतुर्थ आर्हतः पक्षः ॥

अथ तदाराध्यक्षपणकपक्षे व्याख्या—तत्र सोमदेवाख्यं मुनिं
नम्या नीतिवाक्यं सुवे इति सम्बन्धः । किमूतं ? सोमं—सोम इव
सोमस्तं सोमं शं (शां) तं । सोमसमाकारमिति—सह उभया तपः-
प्रभावजनितया कीर्त्या वर्तते सोमः कान्तः, समो विषमोजतद्वत्स्वदीर्घादि-
दोसरहित आकारः शरीरसमुदायो यस्य स कान्तलक्षणकायस्तं । तथा
सोमाभिमिति—सा माहा (!) लाभलक्षणा श्रेयसी । तथा च—

मा तामां सङ्घर्षं संवा इति ।

आ कीर्तिं काण्वता यथा—

“ लक्ष्मीर्गिषादकाण्वयन्नेदमं व्रणकर्मसु ” उन्मिः योकार....पु सम्ब-
न्धद्वया इति ध्वनितम् । सा च आ च उमा च, सोमाभिर्मातीति सो-
मान्नं । सोममेभवमिति—सोमो रौद्रः संभवो जन्म यस्य । तथा च
श्रुतिं शस्त्रं—

सोमं प्रहस्यन्तान्नि शान्तेऽदि शुभोदिने लगे
उत्पद्यन्ते धनघनमयीर्माप्येन पुण्याः ।

मुनिमिति—मानवति पूजयति अर्हदाचार्योवाक्याव्रमणानिति मु-
निम् । इति पंचमोऽथ ॥

नम्यावाक्यता मुनिनम्यनिमाह—

सोमं सोमसमाकारं गोमाभं सोमसंभरम् ।

सोमदंष्ट्रं मुनिं नम्या नीतिवाक्यामृतं सुवे ॥ १ ॥

अहं मुने—यस्मि । किं तत् ? नीतिशास्त्रामृतं—नयश्चनपीयूषं । किं
कृत्वा ? नत्वा । कै ? मुनि । किमभियाने ? सोमदेवं । किं विशिष्टं ? सोम-
सोमर्षं—सोमः कभिपुत्र्यविशेषस्तस्मात्संभवो यस्यासौ सोमसम्भवस्त
सोमसोमर्षः । पुनरपि किंभूतं ? सोम—उमाशब्देन कीर्तिरभिधीयते तथा
सह वर्तते इति सोमस्तं सोमं । पुनरपि किंभूतं ? सोमसमाकारं—
सोमः कुपेरस्तद्वदाकामो मूर्तिरक्षणो यस्यासौ सोमसमाकारः, यत्त. सो-
मेन कुपेरेण साधिता सौम्यादिक् उत्तरोच्यते । तथा सोमाभं—सोमभ-
न्दमास्तद्वदाभा कान्तिर्पस्यासौ सोमाभस्तं सोमाभम् ।

अथ राज्यनमस्मृतिमाह—

अथ धर्मार्थकामफलाय राज्याय नमः ।

टीका—अथ सोमदेवमुनिनमस्मृतौरन्तरं, नमो नमस्कारोऽस्तु ।
कस्मै ? राज्याय । किंविशिष्टाय ? धर्मार्थकामफलाय । तथा च बहुभदेवः—
गजाभ्यर्षपूर्वकं दानं कोशध्यापि निर्गम्यः ।

अन्तःपुरं मनोहारि न कयाद्राज्यं विना नृणां ॥ १ ॥

ननु कस्मादाचार्येण क्षपणकत्रतधारिणा सता तीर्थकरान् परित्यज्य
मुनेर्मेनुष्यमात्रस्य राज्यस्य च नमस्मृतिः कृता ? तदत्र विषये आचार्य-
स्याभिप्रायः कथ्यते—एतेनाचार्येण शार्हस्पत्यं औशनस्यं च नीतिशास्त्रद्वयं
विलोक्यैतन्नीतिशास्त्रामृतं कृतं । यतो बृहस्पतिना मुनेर्नमस्कारः कृतः
शुकेण तु राज्याय । तत्र तावद्बृहस्पतिरुक्ता नमस्मृतिर्निर्ह्यते—

धाया कायेन मनसा प्रणम्यार्तिरसं मुनिम् ।

नीतिशास्त्रं प्रहरयामि भूपतीनां सुखायहम् ॥ १ ॥

अथ शुक्रः—

नमोस्तु राज्ययुक्ताय वाङ्मनसाय प्रशासिने ।

सामादिचार्यपुण्याय त्रिवर्गफलदायिने ॥ १ ॥

१ नेव दृक्नीती ।

एतस्मात्कारणादाचार्येणापि तीर्थकरानुसृज्य “महाजनो येन गतः
स पन्थाः” इति वचनमाश्रित्य मुने राज्यस्य च नमस्कृतिः कृता ।
तथा च भगवता व्यासेनोक्तं—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ १ ॥ इति ।

अथ धर्मलक्षणमाह—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयमसिद्धिः स धर्मः ॥ १ ॥

टीका—अभ्युदयशब्देनात्र स्वर्ग प्रोच्यते, यतो यस्मात् स्वर्गप्राप्ति-
र्भवति तथा निःश्रेयसस्य मोक्षस्य सिद्धिर्भवति स धर्मः । न पुनर्यः
कीलनास्तिकैरुक्तः स्त्रीसेवामग्नपानादिलक्षणः । उक्तं च यतो नारदेन—

नास्तिकोक्तस्तु यो धर्मस्तं विद्यात्केवलं मलं ।

मुरापानाद्यतः स्वर्गस्तत्रोक्तध्यानिषेवणान् ॥ १ ॥

अथाधर्मस्य लक्षणमाह—

अधर्मः पुनरेतद्विपरीतफलः ॥ २ ॥

टीका—अधर्मस्तु पुनरेतस्य पूर्वोक्तस्य विपरीतफलः । यत्र न स्वर्ग-
सिद्धिर्न मोक्षसिद्धिः । तथापि स धर्मः कीलेर्नास्तिकेय कथ्यते परं
न भवति यतः स मद्यमांसस्त्रीनिषेवणद्वारेण । तथा च नारदः—

मद्यमांसाशनासंग्रयो धर्मः कीलसम्मतः ।

केवलं नरकार्यं न स काया विवेकिभिः ॥ १ ॥

अथ धर्माधिगमोपायानाह—

आत्मवन्पश्य कृत्स्नदृष्टिचिन्तनं शक्तिरभ्यासनपसी च
धर्माधिगमोपायाः ॥ ३ ॥

टीका—श्यागः कार्यः शक्तिः । उक्तं च यतः शुक्रेण—

आत्मविज्ञानसूत्रेण श्यामः कार्यो विवेचिता ।
 इमेन येन नो रीडा कुटुम्बस्य प्रजापते ॥ १ ॥
 कुटुम्ब रीडयित्वा तु यो धर्मं कुरुते कुर्षीः ।
 न स धर्मो हि धार्यं तद्देहायागाय वैद्यम् ॥ २ ॥

तथा दानिनः शरीरस्य तपः कार्यं । तथा च गुणः —

दारीरं रीडयित्वा तु यो व्रतानि समाचरेत् ।
 न तस्य प्रीयते ध्यामा तत्पुण्यास्तप धाचरेत् ॥ १ ॥

इत्येवं धर्मादितमोपाया सर्वेऽपि दूरीता शक्तिः कर्तव्या इति ।

अथ सर्वाङ्गरणानां य प्रधानमाचरणं तदाह —

सर्वगन्धेषु हि ममता सर्वाङ्गरणानां परमाचरणम् ॥ ४ ॥

टीका — समनारान्देन निर्वेता कल्पते सा यस्य पुण्यस्य भवति
 शङ्खामप्युपरि ततश्च परमाचरणं कृतं कल्पते । दानीहान्यान्वाचर-
 णानि स्नानदानजपहोमपूजाणि शुभकृत्यानि तेषां मध्ये येषां निर्वेता
 सर्वसत्त्वानामुप्री दया तत्प्रणममाचरणं । तथा च नारदः —

दूकामाकुण्डदान्यवि पात्र्यानि पुत्रयत् ।
 यत्तदाचरणं धेष्टं यस्यागो वरराजमयः ॥ १ ॥

अथ कथमकानां पुण्याणां पङ्कति तदाह —

न रादु भूतदृष्टां कापि क्रिया प्रभूने श्रेयांसि ॥ ५ ॥

टीका — भूतानि चतुर्विधानि स्येऽकाण्डजरापुत्रोऽपि असंख्यानि तानि
 यदभिदृष्ट्वि व्यापादयन्ति तेषां काचिदपि क्रिया शुभापि क्रिय-
 माणा नि धर्मासि कान्यागानि न प्रभूने न जनपति, कोऽप्ये व्यसनाद्
 व्यसनमुत्पद्यते । तथा च व्यासः —

अद्विषकानि भूतानि यां त्विहिन स निर्द्वय ।
 तस्य कर्मक्रिया व्यथा यजेन्ने वापद्ः सदा ॥ १ ॥

अथाहिंसकानां यद्भवति तदाह—

परत्राजिघांसुमनसां व्रतरिक्तमपि चित्तं स्वर्गाय जायते ॥ ६ ॥

टीका—परत्र शब्देन सर्वोपि जनः कल्पते, तत्र विषयेऽजिघांसु-
मनसामद्रोहचित्तानां यच्चित्तं दयान्वितं भवति तद्व्रतरिक्तमपि प्रत्रया-
रिक्तमपि स्वर्गार्थं भवतीत्यर्थः । तथा च व्यासः—

येषां परविनाशाय नात्र चित्तं प्रवर्तते ।

अव्रता अपि ते मर्त्याः स्वर्गे यान्ति दयान्विताः ॥ १ ॥

अथासत्यागे कृते यद्भवति तदाह—

स खलु त्यागो देशत्यागाय यस्मिन् कृते भवत्यात्मनो
दौःस्थिन्यम् ॥ ७ ॥

टीका—अत्रात्मशब्देन सकलमपि कुटुम्बं माह । तथा च शुकः—

आगतेरधिकं त्यागं यः कुर्यात्तत्सुतादयः ।

दुःस्थिताः स्युः कणमस्ताः सोऽपि देशान्तरं व्रजेत् ॥ १ ॥

अथाविद्यमानं यो माचते तत्स्वरूपमाह—

स खल्वर्थी परिपन्थी यः परस्य दौःस्थित्यं जानन्नप्य-
मिलपत्यर्थम् ॥ ८ ॥

टीका—स पुरुषः खलु निश्चयेन परिपन्थी शत्रुभूतः यः किं
कुपोत् ! यो जानन्नपि परस्य दारिद्र्यमविद्यमानममिलपति याचते । तथा च
बृहस्पति —

असन्तमपि यो लौहयाज्ञानमपि च याचते ।

साधुः स तस्य शत्रुर्हि, यद्दानं दुःखधायकञ्छति ? ॥ १ ॥

अथ तद्व्याशक्त्या यद्वृत्तं क्रियते तदर्थमाह—

तद्व्रतमाचरितव्यं यत्र न संशयतुलामारोहतः शरीरमनसी ॥ ९ ॥

टीका—युष्मेन नाथो वा तदने नियमश्चायं आचरितव्यं का-
र्णाथ, यस्मिन् हने भेदापनुतां सन्देहं नागेहयः न चटतः । के ।
हारीरमनमी कायचित्ते । तथा च आराधनः—

अनामया यः शरीरस्य मत्त नियममेव वा ।

करोम्यासौ भवेत्पद्यान् पद्यात्तापात्कृच्छ्रमुनिः ॥१०॥

अथ त्यागस्य माहात्म्यमाह—

ऐहिकामुत्रिककलाधर्मधर्मव्यवस्थायाः ॥१०॥

टीका—ऐहिकं मर्त्यलोकादुच्यते, आमुत्रिकं स्वर्गलोकात्पुनः पत-
त्यस्मिन् स्थाने हने भवति स त्यागः । योऽप्यस्य स वित्तशय एव, ऐहि-
कामुत्रिककलाधर्मिनो व्यसनेन यः नियते इति । तथा च आराधनः—

धूर्ते पंडितेन महं च कुर्यात्ते कृतये दंडे ।

वाटुष्वात्तर्षात्तेषु दत्तं भवति निष्कलम् ॥ १ ॥

अथापात्रदानं यद्वक्ति तदाह—

मम्मति हनमिवापात्रेण्यर्थव्ययः ॥ ११ ॥

टीका—न केवलं मुनि एवापात्रं, कुम्भये कुवाहने कुशाग्रे कुतप-
श्चिनि कुरिये कुशामिनि यो व्ययः स मरमहोमभिधिरिव । ऐहिकामु-
त्रिकवर्तिना निष्कल एव । तथा च नारदः—

कुम्भये च कुर्यात्ते च कुशाग्रे कुतपश्चिनि ।

कुतपये कुश्चिने नाथं त्वया मम्महर्षे यथा ॥१॥

अथावायमनेन पारम्पर्यमाह—

पात्रं च त्रिविधं धर्मपात्रं कामपात्रं कामपात्रं चेति ॥ १२ ॥

टीका—अथ यदमपात्रं त्रिविधं धर्मपात्रं कामपात्रं कामपात्रं चेति ।

तत्परिके । यत्तुनः कार्यसौ वै तत्प्रयोजनभाणमौदिके य । यत्तुनः
कार्यसौ तत्परिके तत्प्रयोजनभाणमौदिके पारिके य । तथा य वशिष्ठः—

स्वर्गार्थं धर्मार्थं च कार्यपात्रमिदं कथ्यते ।

कामार्थं निजा कामता लोकाद्वयप्रदायके ॥ १४ ॥

अथ कीर्तिप्राप्तमाह —

किं तथा कीर्त्यं या आधिनास विभक्तिं, प्रनिष्ठादि वा मये
मन्त्रिणी भी परराज्यारानामन्यदेव प्रणिद्धेः कारणं न पुनः
स्वातः परो न शत्रु वृद्धीयामो व्यापिनः मनामनाथ ॥ १५ ॥

अथ - आधिनासि विवेचि (ने) मन्त्रिणीपुत्रकारणं तथा
१५ कथ्यते । तथा य वशिष्ठः —

आधिनास कीर्तिप्राप्ता च परो मन्त्रिणी वृद्धयः ।

या कीर्तिः किमने मुदेः किं तथापि प्रभुत्वया ॥ १६ ॥

अथ च —

किं तथा ये प्रदत्तमिदं ये प्रदत्तमिदं मन्त्रिणी ।

ये प्रदत्तमिदं मन्त्रिणी कीर्तिः आकीर्तिः कथिणी ॥ १७ ॥

अथ - मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी —

अथ मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी
मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी

अथ मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी

मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी

मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी

मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी

मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी मन्त्रिणी

टीका—यत्र दक्षिणार्धे विद्यमानेऽसंविभागः सामान्यभोजनाप्ला-
दनादीनि न भवन्ति । केयां ? शरणागतानां समाधितानां, सोऽर्थो मनु-
ष्याणां मा भूत् मा भवतु । तथा च बह्वभेदः—

किं तथा क्रियते सश्रम्या या यधूरिय केयला ।

या न चेदयेय सामान्या पथिकैरपभुज्यते ॥ १ ॥

अथार्थदुग्धस्य यद्भवति तदाह—

अर्थिषु संविभागः स्वयमुपभोगधार्थस्य हि द्वे फले, नास्त्यर्था-
चिन्त्यमेकान्तदुग्धस्य ॥ १५ ॥ *

टीका—एकान्तमनवरतं अर्थदुग्धस्य पुरुषस्योचितं नास्ति । कोऽ-
र्थो यस्य योग्यं तद्विभाज्य करोति । तथा च गुरः—

लोमात्समुद्रतरणं लोमात्पापनिषेचनं ।

प्राज्ञेणोऽपि करोत्यत्र तस्मात् न नाति कारयेत् ॥ १ ॥

अथ दुग्धस्य प्रशंसासाह—

म खलु दुग्धो सत्तु विनियोगादान्मना सह जन्मान्त-
रेषु नयत्यर्थम् ॥ १६ ॥

टीका—स खलु दुग्धो लोदुपी स स्यात् यः सत्तु विनियोगात्
साधुजनेभ्यो दत्त्वायं पश्चादात्मना सह नयति । एतदुक्तं भवति—साधु-
जनदत्तं दानुर्दानमश्रयं स्यात् तर्थात्रपि योनिषु तदुपतिष्ठते तस्मान्ना-
र्थदुग्धो दुग्ध इत्यभूतो दुग्धः कथ्यते । तथा च वर्गः—

दत्त पात्रेऽत्र यद्दानं जायते व्याश्रयं हि तत् ।

जन्मान्तरेषु सर्वेषु दानुर्धनोपतिष्ठते ॥ १ ॥

अथ याचकस्य यथा-योग्यमभ्युक्तिर्भवति तदाह—

* अस्मादग्रे 'दानप्रियवचनान्ध्यामन्वस्य हि मन्त्रापातरादन जीवितस्य दाय-
धिक पाठ पुस्तकान्तरे

अदातुः प्रियालापोऽन्यस्य लाभस्यान्तरायः ॥ १७ ॥

टीका—याचकस्यादाता पुरुषो यः प्रियं वक्ति सोऽन्यलाभान्तरायोऽन्यलाभविनाशकारीत्यर्थः । तथा च वर्गः—

प्रत्याख्यानमदातानां याचकाय करोति यः
तत्क्षणाच्चैव तस्याशा वृथा स्यान्नैव दुःखदा ॥ १ ॥

अथ दरिद्रस्य यद्वचति तदाह—

मदैव दुःस्थितानां को नाम बन्धुः ॥ १८ ॥

टीका—सदैव सर्वकालमपि दुःस्थितानां दरिद्राणां को नामाहो बन्धुः, न कोपीत्यर्थः । तथा च जैमिनिः—

उपकर्तुमपि प्राप्तं निःस्वं दृष्ट्वा स्वमन्दिरे ।
गुप्तं च रोति चात्मानं शृद्धौ याचनशोकया ॥ १ ॥

अथ याचकदूषणमाह—

नित्यमर्थयतां को नाम नोद्विजते ॥ १९ ॥

टीका—सर्वदा सर्वकालं प्रार्थयतां को नामाहो नोद्विजते नोद्वेगं करोति निजपुत्राणामपि । तथा च व्यासः—

मित्रैश्च बन्धुवानौ यातिप्रार्थनार्दित कुर्यात् । ?
अपि धर्मसमतिपिबन्तं विषाणैरधिक्षिपति घेनुः ॥ १ ॥

अथ तप स्वरूपमाह—

इन्द्रियमनमोर्निषमानुष्ठानं तपः ॥ २० ॥

टीका—इन्द्रियं च मनश्चेन्द्रियमनसी तपोर्निषमानुष्ठानं तदेव तपः, न केवलं छिगधारणं । तथा च व्यासः—

१ अन्यत्रेति पाठान्तरे । २ लाभान्तराय इत्यन्यत्र । ३ दुःखस्थितानामिति मुदितपुस्तके । ४ अर्थयमानाद् इति मुदितलिखितपुस्तके ।

यदि पठति च दण्डं मन्त्रमुच्यते कल्पयते
यदि पठति तुष्टायां पुस्तकमूले शिखायां ।
यदि पठति पुस्तकं वेदनिष्ठागतत्वात्
यदि दण्डमनुष्ठेयं मन्त्रमेतच्च किञ्चित् ॥ १ ॥

तथा च विदुः—

एवेन्द्रियस्य मर्त्यस्य छिद्रं वेदेवमिन्द्रियं ।
ततोऽस्य पठति ब्रह्मा हारः पादादिवोदकं ॥ २ ॥

अथ नियमप्रमाणम्—

विहिताभरणं निषिद्धपरिवर्जनं च नियमः ॥ २१ ॥

टीका—ब्रह्मदेः प्राग्भूत्याभरणं, यन्निषिद्धिशास्त्रं निषिद्धं तस्य
वर्जनं च नियमः प्रोच्यते । तथा च नारदः—

पटूनं क्रियते तस्मिन्मन्त्राविवर्जितं ।
न भ्रातृभिरिविद्धं यो नियमः स उदाहृतः ॥ १ ॥

अथेतिप्रमाणाभ्यामाह—

विधिनिषेधान्निष्ठायाश्च ॥ २२ ॥

टीका—विधिः निषेधः विधिनिषेधौ, आवर्तो वृत्तान्तौ । कस्य ?
ऐतिहासिकस्य । विधाने विधिः, निषेधोऽहमनिर्दिष्टः, ताम्भ्यां
कफले भवति तद्विधानावर्तं तुभातुम् । तथा च भागुरिः—

विधिना विहितं कृतं परं धेया प्रवच्छति ।
विधिना नदितं यच्च यथा मरमदुर्लभं तथा ॥ १ ॥

अनु च—

त्रिपञ्च य पुरा कृत्या कल्पयिष्यन्तुः पुमान् ।
तद्वयं सेवते पश्चान् नित्यदीनः स पापहन् ॥ १ ॥

अथेतिप्रमाणानिर्गममाह—

तन्मन्त्रं मन्त्रिः श्रद्धेयमतिथं यत्र न प्रमाणबाधा पूर्वापरवि-
शेषो वा ॥ २३ ॥

टीका—ऐतिहासिकेनागम उच्यते । यत्र येस्मिन्नैतिह्ये प्रमाणवा-
धा-प्रमाणदूषणं न भवति तदैतिह्यं स आगमः सङ्ग्रिः निष्ठैः श्रद्धेयो
मन्यते । प्रमाणशब्देन स्वदर्शनाभिप्रायः कथ्यते । तथा च यत्र पूर्वा-
परविरोधो न भवति । कोऽर्थो यत्र प्रथमं उक्त्वा दर्शनाभिप्रायं पथा-
त्तं न दूषयति प्रतिष्ठापयतीत्यर्थः सोऽपि श्रद्धेयः । तथा च नारदः—

स्वदर्शनस्य माहात्म्यं यो न हन्यात्स आगमः ।
पूर्वापरविरोधश्च शस्यते स च साधुभिः ॥१॥

अथ चंचलमनसां यद्वचति तदाह—

हस्तिस्नानमिव सर्वमनुष्ठानमनियमितेन्द्रियमनोवृत्तीनाम् ॥२४॥

टीका—वर्तनं वृत्तिः, अनियमितानीन्द्रियाणि मनोवृत्तिश्च येषां
तेऽनियमितेन्द्रियमनोवृत्तयस्तेषामनियमितेन्द्रियमनोवृत्तीनां यदनुष्ठानं
क्रियालक्षणं । तत् किंविशिष्टमिव ? हस्तिस्नानमिव व्यर्थमित्यर्थः ।
यथा हस्ती मुस्नापितोऽपि भूयोपि प्रकृत्वात्मानं पांशुभिर्दूषयति
तत्स्नानं व्यर्थतां नयति तथा चंचलेन्द्रियमनाः । तथा च सौनकः—

अशुद्धेन्द्रियचित्तो यः कुरुते कांचित्सत्क्रियां ।
हस्तिस्नानमिव व्यर्थं तस्य सा परिकीर्तिता ॥ १ ॥

अथ ज्ञानवानपि यः शुभं न करोति तदर्थमाह—

दुर्भगाभरणमिव देहमेदावहमेव ज्ञानं स्वयमनाचरतः ॥२५॥

टीका—यः प्रभूतशास्त्रज्ञोऽपि शास्त्रार्थं न करोति तस्य निष्कर्षं शरी-
रखेदाय केवलं । किमिव ? दुर्भगाभरणमिव—यथा दुर्भगा स्त्री हारकेयूरा-
दिभिरात्मानं शृंगारयति यदुभयसंपोगं न लभते तत्तस्य देहखेदायहं व्यर्थ-
मित्यर्थः । तथा च राजपुत्रः—

यः शास्त्रं जानमानोऽपि तदर्थं न करोति च ।
तद्व्यर्थं तस्य विवेकं दुर्भगामरणं यथा ॥ १ ॥

परधर्मोपदेशकस्य स्वरूपमाह—

मुलमः सलु कथक इव परस्य धर्मोपदेशे लोकः ॥ २६ ॥

टीका—कथको देवायतनाचकोऽन्येषां कथयति धर्मोपदेशं, स्वयं न करोति । तथा च बाल्मीकिः—

मुलमा धर्मवक्तारो यथा पुस्तकवाचकाः ।
ये कुर्वन्ति स्वयं धर्मं धिरलास्ते महीतले ॥ १ ॥

अथ दानतपोभ्यां यद्भवति तदाह—

प्रत्यहं किमपि नियमेन प्रयच्छतस्तपस्यतो वा भवन्त्य-
वश्यं महीषांमः परे लोकाः ॥ २७ ॥

टीका—भवन्ति प्रवर्तन्ते । के ! कर्तृभूता लोकाः । किंविशिष्टाः !
परे स्वर्गलक्षणाः । पुनरपि कथंभूताः ! महीषांस उत्तमोत्तमाः ।
कस्य ! पुरुषस्य । किं कुर्वतः ! प्रयच्छतो ददतः । किमपि—भियन्मात्र-
मपि विच । किं कुर्वतः ! तपस्यतस्तपः कुर्वाणस्य श्लोकमपि । तथा च
चारायणः—

निरयं दानप्रवृत्तस्य तपोयुक्तस्य देहिना ।
सत्पात्रं पाप कालो वा स स्वाद्येन गतिर्वरा ॥ १ ॥

अथ संचयपराणां यद्भवति तदाह—

कालेन संचयीयमानः परमाणुरपि जायते मेरु ॥ २८ ॥

टीका—जायते सम्पद्यते । कोऽसौ । मेरु । किंविशिष्टः । सन्
संचयीयमानो वृद्धिं नीयमानः । कः । परमाणुरपि तिलानुपमात्रमपि
केन कृत्वा ! कालेन दिवसोद्येन । तथा च भागुरि—

निरयं कोऽपि वृद्धिं या कारयेद्यतनमास्थितः ।
अनन्तता भवेत्तस्य मेरोर्होमनां यथा तथा ॥ १ ॥

अथ धर्मश्रुतधनानां स्वल्पेनापि संप्रहेण नित्यं विहितेन यद्रवति
तदाह—

धर्मश्रुतधनानां प्रतिदिनं लवोऽपि संगृह्यमाणो भवति
समुद्रादप्यधिकः ॥ २९ ॥

टीका—धर्मश्च श्रुतं च धनं च धर्मश्रुतधनानि तेषां धर्मश्रुतध-
नानां मध्याल्लवोऽपि लेशोऽपि संगृह्यमाणः पुरुषेण प्रतिदिनं गच्छ-
ता कालेन समुद्रो भवति । कोऽर्थोऽनन्तो भवति । तथा च वार्ताः—

उपार्जयति यो नित्यं धर्मश्रुतधनानि च ।

सुस्तोकाव्ययनस्तानि तानि स्युर्जलधिर्यथा ॥ १ ॥

अथ धर्माय ये निरुद्यमास्तानुद्दिश्याह—

धर्माय नित्यमनाश्रयमाणानामात्मवचनं भवति ॥ ३० ॥

टीका—आत्मा वंचितो भवति । कृपा ! अनाश्रयमाणानां । कस्मै !
धर्माय धर्माय । तथा वशिष्ठः—

मनुष्यत्वं समासाद्य यो न धर्मं समाधयेत् ।

आत्मा प्रवंचितस्तेन नरकाय निरूपितः ॥ १ ॥

अथ धर्मराशिर्विषये प्राह—

कस्य नामैकदैव सम्पद्यते पुण्यराशिः ॥ ३१ ॥

टीका—कस्य नामैकदैव हेतुवैयर्थ्यं । सम्पद्यते इति निश्चयः ।
तथा च भागुरि —

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखं ।

न हेतुया सुखं नास्ति मार्गलाके भवेन्नृणां ॥ १ ॥

अथाऽस्योपहतस्य मनोरथा यथा भवति तथाह—

अनार्चरतो मनोरथा मग्नगज्यगमाः ॥ ३२ ॥

टीका—अनाद्यत उद्यमवपुर्वाणाम् पुण्यस्य मनोरथा ये इति
 विनिताग्ने मुत्ताभिप्रायाः । एतस्यावपुष्यात्तावत्मात्रगोचरता इत्यर्थः ।
 तथा च वस्तुभेदः—

उद्यमेन हि सिद्धयन्ति वाप्योनि न मनोरथाः ।

न हि सिद्धस्य मुत्तस्य प्रापितानि मुक्ते मृगाः ॥ १ ॥

अथ यो धर्मवत् भक्तमानोऽप्यधर्मानुष्ठानं कुरुते तदर्थमाह—

धर्मकृतमनुभवतोऽप्यधर्मानुष्ठानमनान्मजस्य ॥ ३३ ॥

टीका—यः पुरुषो धर्मकरी गेहमानः सन्, अधर्मानुष्ठानं करोति
 सोऽनामहो गुरो इत्यर्थः । ननु कथं ज्ञायते पुरुषस्य धर्मकत्वे भुक्तिः ?
 यथात्र हृत्पदवादिषो विभक्तो भवति तेन ज्ञायते धर्मकत्वमेतन्, तच्छ्रे-
 ष्ण्यजन्महन, लोकोपगताना अपि गुरो न जानन्ति पापानुष्ठानं कुर्वन्ति ।
 तथा च मैत्रेयः—

अभ्यजन्ममृतात्तन्मोक्षार्थं संजायते नृणां ।

तद्विद्वद्वाप्यते मास्तेस्तेन मे पापमेवकाः ॥ १ ॥

अथ धर्मानुष्ठानार्थमाह—

कः गुर्धर्मोपजमिवात्महितं धर्मं परोपरोधादनुतिष्ठति ॥ ३४ ॥

टीका—को नाम विद्वान् आत्महितं धर्मं अन्यदक्षिण्यादनुतिष्ठति
 करोतीत्यर्थः । यस्मात्तत्कृतमाप्नोति, विनिव । भोपजमिव औपधमिव
 यथोपध परोपरोधा कृतं चित्तानि न आगेभ्य कुरुते तथा धर्मोऽपि ।
 तथा च व्यासः—

परोपरोधाधर्मो धर्मं भोपज च करोति यः ।

आगेभ्य स्वर्गतामिव न ताभ्या सप्रजायते ॥ १ ॥

अथ धर्मानुष्ठानं कृते यद्वधति तदाह—

धर्मानुष्ठाने भवत्यप्रापितमपि प्रातिलोभ्यं लोकस्य ॥ ३५ ॥

टीका—लोकस्य जनस्य धर्मानुष्ठाने क्रियमाणे अप्रार्थितमपि प्राति-
लोभ्यं विघ्नं भवति पापानुष्ठाने न स्यात् । तथा च वर्गः—

भेयांसि बहुविद्मानि भवन्ति महतामपि ।

अभेयांसि प्रवृत्तानां यान्ति क्वापि विलीनतां ॥ १ ॥

अथ धर्माप्रवृत्तस्य यद्भवति तदाह—

अधर्मकर्मणि को नाम नोपाध्यायः पुरश्चारी वा ॥ ३६ ॥

टीका—पापकर्मणि प्रवृत्तस्य लोकस्य को नामाहो नोपाध्यायः
नोपदेशदाता, अपि सर्वोऽपि जनः पापार्थं प्रेरयतीत्यर्थः । पुरश्चारी
वा अप्रेसरः । अहमेतत्करोमि स्वमपि कुरु एवं जल्पत इत्यप्रेसरो भवति ।
तथा च रम्यः—

सुलभाः पापरक्तस्य लोकाः पापोपदेशकाः ।

इयं कृत्वा च ये पापं तदर्थं प्रेरयन्ति च ॥ १ ॥

अथ पापनिषेधार्थमाह—

कण्टगतैरपि प्राणैर्नाशुभं कर्म समाचरणीयं कुशलमतिभिः ॥ ३७ ॥

टीका—उत्कृष्टबुद्धिभिः पुरुषैरशुभं कर्म न समाचरणीयं न कर्तव्यं
पिपमाने प्राणैः, किमिति । कण्टगतैरपि, कोऽर्थः ? यदि प्राणस्यागो
भवति, किं पुनः स्वम्वचिते । तथा च देवतः—

धामिन्नोऽशुभं कर्म प्राणस्यागोऽपि संक्षिप्यते ।

इह लोकं यतो निम्दा परलोकऽप्यमा गतिः ॥ १ ॥

अथैवम् । न भ्रातृव्य पापमार्गं नियोज्यन्ते तदर्थमाह—

स्वम्यमननपेणाय भूतदुर्गदितवृत्तयः क्रियन्ते धीमन्तः ॥ ३८ ॥

टीका—धीमन्तो धनिना वनाः क्रियन्ते विधीयन्ते । किमिति ?
दुर्गदितवृत्तयः पापमार्गता । के ? भूतवचनयोः । किमर्थं ? स्वम्यमननपे-
णाय ।

णाय निवापकाशाय ।^१ न तेषां सकाशादर्थं लभते । कथं क्रियते यत् ।
स्नानदानजपहोमतीर्षयाद्यादिकं कष्टेन क्रियमाणं धर्ममार्गं दूषयित्वा,
स्त्रीसेवादिकं सुखकारकं स्वमतिविहितव्याख्याने तथा प्रबोधयन्ति धनि-
नो यथा तेषां तत्सत्यं मत्वा धनानि लिप्स्यन्ते ।

यतो माशिका घ्राय विमुषो ब्रह्मविन्दयः ।

स्त्रीमुखं बालपृष्ठं च न दुष्यन्ति कदाचन ॥ १ ॥

स्त्रियः पवित्रमतुलं नैता दुष्यन्ति कर्दिचित् ।

मासि मासि रजो यासां दुष्टतान्यपि कर्षति ॥ २ ॥

सोमस्तासां दग्दी शीर्षं गन्धर्पाश्च कलं गिरं ।

पापकः सूर्यमेष्ट्यत्यं तस्मान्मेष्ट्यतमाः स्त्रियाः ॥ ३ ॥

प्राप्त्या पादसो मेष्ट्या गायो मेष्ट्याश्च पृष्ठतः ।

भजाश्च मुपतो मेष्ट्याः स्त्रियो मेष्ट्याश्च सर्वतः ॥ ४ ॥

स्त्रीमुद्रां मकरपञ्चस्य परमां सर्पाधिसाकरी-

मेनां ये प्रविहाय यान्ति कुक्षियः स्वर्गापवर्गोऽष्टया ।

तदीर्यपिनिहरय ते हततटं नग्रीकृता मुषिहताः ।

केचित् रत्नापटीकृताश्च ऊटिलाः कापालिकाश्चापरे ॥ ५ ॥

कामातां कामिनीं प्राप्तां पार्प माया त्यजन्ति ये ।

ते मृता मरकं यान्ति तद्भिः श्वातसमाहताः ॥ ६ ॥

परदारविरक्तानां कुक्षारणां वृणामिह ।

येदया साधारणा प्रोक्ता तस्मात्सर्वेऽप्यो प्रयन्ततः ॥ ७ ॥

ब्रह्मचर्येण चोत्सर्गो मरणामिह जायते ।

ते वृद्धाः प्रथमं यांति ततोऽन्ये ब्रह्मचारिणः ॥ ८ ॥

इत्येवमादिभिरप्येव धर्मविषये मुक्तावैर्वाक्यैः स्नानदानजपहोम-
कृते धूर्ते दुरीहितवृत्तयः क्रियन्त इति ।

अथ खलसंगेन पद्मवति तदा—

खलसंगेन किं नाम न भवत्यनिष्टम् ॥ ३९ ॥

टीका—खलो दुर्जनस्तेन सह संगेन कृतेन तर्हि नामाहो न भवति यदनिष्टं पापलक्षणमित्यर्थः । तस्मात्खलसंगस्याप्यः । तथा च बहुभदेवः—

वसतां संगक्षेपेण साधवो यान्ति विक्रियां ।
दुर्योधनप्रसंगेन भीष्मो गौदरणे गतः ॥ १ ॥

अर्थ दुर्जनानां स्वरूपमाह—

अग्निरिव स्वाश्रयमेव दहन्ति दुर्जनाः ॥ ४० ॥

टीका—दुर्जनाः खलाः स्वाश्रयमपि यस्मिन् गृहे जायन्ते तदपि दहन्ति, किं पुनरन्येषां साधूनां न दहन्ति । क इव ? अग्निरिव वैश्वानरवत् । यथा वैश्वानरो यत्र काष्ठे उत्पन्नस्तदपि दहति तथा दुर्जनाः स्वगृहं क्षयं कृत्वा ततश्च साधूनामपि गृहाणि नाशयन्ति । तथा च बहुभदेवः—

धूमः पयोधरपदं कथमप्यवाप्यै—

पोम्बुभिः शमयति ज्वलनस्य तेजः ।

ईवादद्यान् खलु नीचजनः प्रतिष्ठां

प्रायः स्वयं बन्धुजनमेव तिरस्करोति ॥ १ ॥

अथ तदात्वमुखलुब्धस्य यद्वति तदाह—

वनगज इव तदात्वमुखलुब्धः को नाम न भवत्यास्पदमा-
पदाम् ॥ ४१ ॥

टीका—अत्र तदात्वमुखशब्देन परस्त्रीस्पर्शः तत्कालिकमुखमभिधीयते । तत्र यो लुब्धः पुरुषः को नामाहो कासामापदां व्यसनलक्षणानां नास्पदं स्थानं भवति । क इव ? वनगज इवारण्यहस्तीव यथा

१ किं नाम न करोति इति ख-पुस्तके । ज्वलनस्यः कं नामानर्थं न करोति इति ग-पुस्तके । २ अग्निरिव सु-मू-पुस्तके । ३ तदात्विकेति मू-पुस्तके ।

वनहृत्सी दृष्ट्वा कामैराभीता वनपतेषु कं शर्शमात्रं गुणमनुभवन् बन्धन-
मामोनि तद्वत् पुरुषोऽपि यस्मान् परस्त्रीस्पर्शमात्रं गुणं लभते । तथा
च नारदः—

कसिणीस्पर्शसंलयेन प्रमत्ता यनदस्तिनः ।

बन्धमापान्ति तस्माच्च तद्वर्ग्यं वर्जयेत् शुचम् ॥ १ ॥

अथ धर्मातिक्रमेण यद्भवति तदाह—

धर्मातिक्रमादेनं परेऽनुमवन्ति मयं तु परं पापस्य भाजनं
सिह इव सिन्धुरवधान् ॥ ४२ ॥

टीका—धर्मातिक्रमेण चौर्यादिभिरहृत्यैर्वहनं प्राप्यते तदपरे पुत्रक-
लत्रादयो भक्षयन्ति, उपार्जकस्तु पुनः केवलं उत्कृष्टं पापस्य भाजनं
पापस्थानं भवति । क इह! सिंहवत् यथा सिंहः सिन्धुं गजं हत्वा
अन्येषां शृगालादीनां भोग्यं करोति केवलं स्वयं पापवान् भवति तथा
पुरुषोऽपि । तथा च मिदुरः—

एकार्का कुदते पापं फलं मुंते मदाजनः ।

भोक्तारं विप्रमुच्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते ॥ १ ॥

अथाधार्मिकस्य यद्भवति तदाह—

बीजभोजिनं कुटुम्बिन इव नाम्न्यधार्मिकस्यायत्यां किमपि
शुभम् ॥ ४३ ॥

टीका—अत्रायनिशब्देन परिणाम उच्यते तस्मिन् परिणामे पुरु-
षस्य न किञ्चिच्छुभं भवति । किञ्चिजिष्टस्य पुरुषस्य । अधार्मिकस्य ।

कस्येव ! कुटुम्बिन इव कर्षकस्येव । किंविशिष्टस्य ? बीजमोजिनो वा
योग्यस्य भक्षकस्य न किञ्चिदन्नं भवति । आप्त्या शरदि वसन्ते वा
तथा च मागुरिः—

पात्यासक्तस्य नो स्त्रीत्वं परलोके प्रजायते ।

बीजाशिहालिकस्येव वसन्ते शरदि स्थिते ॥ १ ॥

अथ कामार्थव्यागेन केवलं धर्माश्रितस्य यद्भवति तदाह—

यः कामार्थाद्युपहत्य धर्ममेवोपास्ते स पक्व क्षेत्रं परित्यज्या
रेण्यं कृपति ॥ ४४ ॥

टीका—यः पुरुषः कामार्थो त्यक्त्वा धर्ममेकं करोति । स किं कुरुते
पक्वं लवनयोग्यं क्षेत्रं त्यक्त्वा रण्यकर्षणं करोति । कोऽर्थो यो कामार्थं
पक्वक्षेत्रसमो तौ ज्ञेयौ । यः पुनः धर्मः सोऽरण्यकर्षणसमो न तस्य
धर्मस्थापि माहात्म्यं मन्यते कामार्थाभ्यां विना । तदर्थमाह—अरण्यक-
र्षणादपि सस्योत्पत्तिर्भवति परं कालक्रमेण तत्रारण्यस्यानावृष्टिरिति उप-
द्रवो यदि न भवति । यो पुनः कामार्थो तौ सयः सुखफलो । तस्मान्न
कामार्थाभ्यां सह धर्मः कर्तव्यः सुखार्थिभिः । तथा च रैम्यः—

कामार्थसहितो धर्मो न क्लेशाय प्रजायते ।

तस्मात्ताभ्यां समेतस्तु कार्यं एव सुखार्थिभिः ॥ १ ॥

अथ सुमतिर्वया भवति तथाह—

१ स खलु सुधीर्योऽमुत्र सुखाविरोधेन सुखमनुभवति ॥ ४५ ॥

टीका—स पुरुषः खलु निश्चयेन सुधीः सुमतिर्विज्ञेयः । यः किं
करोति ? योऽनुभवति सेरते । किं तत् ? सुखं । केन कृत्वा ? अमुत्र सुखा-
विरोधेन । अमुत्रशब्देन परलोकोऽभिधीयते । तस्य येन सुखेनानुभूतेन
विरोधो न भवति तथा तदनुभवितव्यं । यत्पुनः परदारचौर्यादिकं तेन

परलोके, विरोधः स्यात् कारकगतौ भवतीत्यर्थः । ज्ञानज्ञानादकारण-
विषे गुणमनुपदिशन्त्येव । तथा च धर्मः—

शेषजायन्त्य धर्मस्य नरकं प्राप्पते ध्रुवं ।

धीमता तत्र कर्तव्यं कर्माकारितकर्मनिर्माणम् ॥ १ ॥

अथान्यायगुणदेशेन दृश्यति तदाह—

इदमिह परमार्थं यदन्वायगुणलवादिहामुत्र चान्यधिर्दु-
स्तानुबन्धः ॥ ४६ ॥

टीका—हे जनाः । एतदधर्वमिह जगति अपरं भूयं न दृश्यते मूर्ख-
जनानां, यत् विधिद्वयाप्यधीर्धर्मिभिरपार्जनं कृत्वा तेन ये गुणउपम-
मुभवति तस्यानवधिरन्तो दुःखानुबन्धो दुःखपरिणामः । क ! इहा-
सिन् जगति । अमुत्र च परलोके च । कथंचिदि तावदात्रा जा-
यामाति तदा दृश्यति । अथवा पाण्योकेऽपि धर्मैरात्रो निपटं करोति
तस्मादन्वायोपार्जना न कर्तव्या । तथा च वशिष्ठः—

विद्यमेतद्धि मूर्खाणां यदन्वायार्जनास्तुल्यम् ।

अल्पं प्राप्तं विहीनं च दुःखं शोकप्रये भवेत् ॥ १ ॥

अथान्यक्रमतपोर्धर्मधर्मयो, किं हि तदर्थं व्याख्यायते—

गुणदुःखादिभिः प्राणिनामुत्कर्षापकर्षां धर्मधर्मयोर्लिङ्गं ॥ ४७ ॥

टीका—उत्कर्षशब्देन वृद्धिर्भवति । अपकर्षशब्देन हानिश्च । उत्कर्ष-
प्रापकर्षयोर्धर्मधर्मयोः ताभ्यां ज्ञायते । किं तन् । हिंसा चिह्नं ।
कर्म । धर्मधर्मयो । वेदा । नाराणां । के कृश । गुणदुःखादिभिः ।
यदा पुण्याणां गुणं परं भवति तदा ज्ञायते एतैरन्यजन्मनि धर्मं कृतं ।
यदा पुनः दुःखोत्कर्षो भवति तदा ज्ञायते एते पाप कृत्वा धर्मं कृतं ।
तथा च दश —

२ अर्थसमुद्देशः ।

अथार्थसमुद्देशो लिख्यते, तत्रादौ शेषार्थस्य स्वल्पमाह—

यतः सर्वप्रयोजनमिद्विः सोऽर्थः ॥ १ ॥

टीका—कल्पते, नान्यो यः हृत्पदैर्गतेषु स्थापितस्तिष्ठति । उक्तं च
यत्प्रभवेन—

शृद्धमभ्यनिगातेन धनेन धनिनां यदि ।

अयामः विप्र तेनैव धनेन धनिनो धयं ॥ १ ॥

तथा च—

येषां धर्मस्य हृते प्रयुज्यते येषां कामस्य च भूमिमभ्यगम् ।

तत्कदप्यपरिपुष्टितं धनं चौरपार्थिवशृद्धेषु भुज्यते ॥ १ ॥

संचितशृद्धेषु नैव भुज्यते, याचितं भुज्यते न दीयते ॥

अथ यादृक् पुमानर्थस्य भाजने भवति तदाह—

सोऽर्थस्य भाजनं योऽर्थानुबन्धेनार्थमनुभवति ॥ २ ॥

टीका—स पुण्यः सर्वकालमर्थस्य धनस्य भाजनं स्थानं भवति ।

य किं कुर्यात् ? योऽर्थानुबन्धेनागामिकागूत्रन्यायेनार्थमनुभवति सेवते ।

तथा च दर्श —

अर्थानुबन्धमागंण योऽर्थं सत्सेवने नृदा ।

एव तेन मुच्यते नैव कदाचिदिति निश्चयः ॥ १ ॥

अर्थानुबन्धमागंणमाह—

अलम्ब्यलाभो लब्धपरिक्षयं गदितपरिवर्द्धने नार्थानु-
बन्धः ॥ ३ ॥

टीका—सामादिभिरुपायैस्तावत् पुरुषेणार्थ उपार्जनीयः । उक्तं यतो हारीतेन—

अस्ताभ्यं नास्ति लोकेऽत्रः यस्यार्थं साधनं परं ।

सामादिभिरुपायैश्च तस्मादर्थमुपार्जयेत् ॥ १ ॥

तथा च लब्धोऽर्थो यथा भवति तथा रक्षणीयो यत्नेन यतस्त-
बहवो हिंसका भवन्ति । तथा च व्यासः—

यथामिपं जले मत्स्यैर्मह्यते श्यापदैर्भुवि ।

आकाशे पक्षिभिश्चैव तथा र्थाऽपि च मानवैः ॥ १ ॥

तथा रक्षितो वृद्धिं नेयः । यस्तं सद्रूप्यवहारैः कुसीदादिभिर्वृद्धिं
नयति स तस्य भाजनं भवति । उक्तं च यतो गर्गेण—

वृद्धे तु परिदातव्यः सदा र्थो धनिकेन च ।

ततः स वृद्धिमायाति तं विना क्षयमेव च ॥ ३ ॥

इत्यर्थानुबन्धः ।

अथ सामादिभिरुपार्जितोऽर्थोऽपि यथा नाशमायाति तथाह—

तीर्थमर्थेनासंभावयन् मधुच्छत्रमिव सर्वात्मना विनश्यति ॥४॥

टीका—तीर्थभूतं पुरुषलक्षणं आगाभिकमूत्रे वदिष्यति । यो धनी
तीर्थलक्षणे पुरुषमर्थेन न सम्भावयति स सर्वात्मना निधितं विनश्यति । किं
कुर्वन् ? असंभावयन् अनियोजयन् । किं तत् ? तीर्थं पात्रं । केन ? अर्थेन
चित्तेन । कथं विनश्यति ? मधुच्छत्रवत् मधुच्छत्रशब्देन मधुजालकमु-
च्यते । तस्य तीर्थं भ्रमरा । माक्षिकोऽर्थः । तेन यन् भ्रमरान् न संभा-
वयति तत्सर्वात्मना विनश्यति तथा मदनमपि न भवति सूक्ष्मोत्पल-
कीटैर्भक्ष्यते । यस्य पुनर्भ्रमरा मधु पिबन्ति अन्यच्च द्रावयन्ति तच्छेषं
मिथ्यकमंजं भवति । एवं धनी पुमानपि सत्पात्रेषु धनं (न) नियोजयति
तस्य तत्प्रभावाच्छेषमपि वित्तं भूयोपभोग्यं भवति । तथा च वगै-

यो न यच्छति पात्रेभ्यः स्वधनं कृपणो जनः ।

तेनैव स ह भूपालश्चीरायर्था स हन्यते ॥ १ ॥

केचित् मधुच्छत्रशब्देन बालकजालं कथयति । तस्य तीर्थभूतानि पात्राणि, अर्थभूतो गन्धः । तेभ्यः पात्रेभ्यस्तीर्थभूतेभ्यो गन्धस्त्वेणार्थं प्रयच्छन् प्रददत् बालकजालमपि विनश्यति ।

अथ तीर्थलक्षणमाह—

धर्मसमवायिनः कार्यसमवायिनश्च पुरुषास्तीर्थम् ॥ ५ ॥

टीका—ये पुरुषाः समवायिनो धर्मकृत्येषु सहाया भवन्ति येषां सकाशात् धर्मकार्यं निरूपितं भवति ते धर्मसमवायिनः प्रोच्यन्ते । ये च सर्वकृत्येषु सहाया भवन्ति, येषां सकाशात् महदपि कृत्यं सिद्धिं गच्छति ते कार्यसमवायिनः । तत्र सर्वेऽपि तीर्थं भण्यते । तान् योऽर्थो न संभावयेत् तेभ्यः योऽर्थः (समर्थः) नियोजयेत् । तस्य वृद्धिर्धर्म-वृद्धिश्च भवति । तथा च बृहस्पतिः—

तीर्थेषु योजिता अर्था धनिनां वृद्धिमाप्नुयुः ।

अतीर्थेषु पुनर्लभं योजिता व्याललोभताः ॥ १ ॥

अथ येषां धनिनां धननाशो भवति तानाह—

तादात्विकमूलहरकदर्येषु नागुलभः प्रत्ययायः ॥ ६ ॥

टीका—एतेषां तादात्विकमूलहरकदर्याणां रक्षा आगामिकगुरोर्बुद्धिष्यति । किं बहूना, एतेषां धनिनां प्रत्ययायोऽर्थनाशः सदैव भवतीति । तथा च शुक्रः—

अविग्नितार्थमस्मान्ति योऽभ्योपार्जितभक्षकः ।

कृपणश्च योऽप्येते प्रापवायस्य मग्निदहम् ॥ १ ॥

अथ तादात्विकलक्षणमाह—

यः किमप्यसंविन्योन्पन्नमर्थं पश्यति स तादात्विकः ॥ ७ ॥

व्ययं करोति तत्तयोरपि द्वयोर्द्विद्वता भवति द्वौ दौःस्थं व्रजतः । तथा च कपिपुत्रः—

आगमाभ्यधिकं कुर्याद्यो व्ययं यश्च भक्षति ।

पूर्वजोपाजितं नान्यदर्जयेद्य स सीदति ॥ १ ॥

अथ कदर्यस्य यद्वचति तदाह—

कदर्यस्यार्थसंग्रहो राजदायादत्तस्कराणामन्यतमस्य
निधिः ॥ ११ ॥

टीका—कदर्यस्य तु पुनर्यो धनसंचयः स किंविशिष्टो ? निधिः ।
केयो ? राजदायादत्तस्कराणां । अन्यतमस्य एकस्य । एतदुक्तं भवति
भूपेन गोत्रजेन तत्करेण वाह्यते इति । तथा च बहुभदेव. —

दानं भोगो नाशस्तिष्ठो गतयो भवन्ति विष्टस्य ।

यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥ १ ॥

तथा च शुक्रः—

शेषो धारयते पृथ्वीं सन्निधानां तदोष्मणां

एषणैर्निदितानि च तस्य शक्तिर्न चान्यथा ॥ १ ॥

तथार्थः केवलं सेव्यमानो धर्मकामौ पीडयति । तथा कामोऽप्यति-
सेवितः स धर्मार्थौ पीडयति । कथं ? केवलं धर्मासक्तोऽर्थोऽर्जुनादिके
व्यवसायं न करोति स्त्रीविषयविरक्तो भवति । यद्यर्थासक्तो भवति तद्धर्मं
न करोति तदासक्तश्च निष्कामो भवति । तथा कामासक्तो धर्मं न
करोति धनशायं च करोति । तथा च वशिष्ठः—

एको हि सेव्यमानस्तु त्रिवर्गं च प्रपीडयेत् ।

द्वापन्थी सेवयेद्दस्मिन्प्रीत्य तांश्च यथोदितान् ॥ १ ॥

अथ कष्टेन यत्नोपाजर्जने क्रियते तदर्धमाह—

परार्थं मारवाहिन इवात्मसुरां निरुन्धानस्य धनोपाजर्जनम् ॥ ५ ॥

टीका—आत्मसुरां निरुन्धानस्य महता क्रोधेन युक्तस्य पुरुषस्य यत्न-
नोपाजर्जने । किमिति ? परार्थं मारवाहनदशं व्यर्थमित्यर्थः । यथा कश्चित्
पुरुषः पशुवर्ज्यभ्यर्थं शिरसा गृष्टया वा भारं वहति न तद्भोक्तुं लभते
केवलं क्लेशभागी भवति । तथा च व्यासः—

अतिक्रोधेन ये स्वार्थो धर्मस्यातिक्रमेण च ।

शत्रूणां प्रतिघातेन मात्मेन ! तेषु मया कृषाः ॥ १ ॥

अथ विभूतीनां माकृत्य यथा भवति तयाह—

इन्द्रियमनःप्रमादनफला हि विभूतयः ॥ ६ ॥

टीका—सम्पदः कथ्यन्ते याः पुनः सेविता अपि गुप्ति न प्रवर्तयन्ति
न कामादभ्यस्त्य न दुर्जनैः भवन्ति, यकानि विभूतिनिर्दिष्टमानानि
कृत्या न न प्रवर्तयन्ति न दिव्यमाभ्यर्जनेन, न निष्कामाभ्यर्जनेन, न
स्वस्वदुर्जनैः न स्वस्वदुर्जनैः न स्वस्वदुर्जनैः न स्वस्वदुर्जनैः । तेषु मया कृषाः
भूतानि यत्नयन्ति । तेषु मया कृषाः भूतानि यत्नयन्ति । तेषु मया कृषाः

यद्वन विषयाणां च निष्कामाभ्यर्जनेन ।

नन्वाः निष्कामाः यथा यद्वानाजिवा यीजन्तः ॥ १ ॥

कामसमुद्देशः ।

तथा यकाभिर्विभूतिभिर्विद्यमानाभिर्मनसस्तुष्टिर्न भवति ताधावि
 ष्ण्डलाः पुमां । कोऽर्थः ! विद्यमाने घने यः सेवान्देशेन खेदं जनयति
 वासेन वा तस्यापि ता निष्फलाः । तथा च चारायणः—

सेवादिभिः परिकल्पितैर्विद्यमानघनोऽपि यः ।
 सन्तापं मनसः कुर्याच्चस्योदत्तघर्षणम् ॥ १ ॥

अप्राजितेन्द्रियाणां यथा स्वल्पापि कार्यसिद्धिर्न भवति तदाह—

नाजितेन्द्रियाणां कापि कार्यसिद्धिरस्ति ॥ ७ ॥

टीका—अजितेन्द्रियाणां पुरुषाणां कापि स्वल्पापि कार्यसिद्धिर्न
 विद्यते । कथं, यो गीतलाभसं भवति स गीतं शृण्वन् स्वकृतेषु विलम्बं
 करोति विलम्बे कृते कार्यनिष्फलता स्यात् । उक्तं च शुक्रेण—

यस्य तस्य च कार्यस्य सफलस्य विशेषतः ।
 क्षिप्रमक्रियमाणस्य कालः विषति तत्फलम् ॥ १ ॥

एवं यः प्रियादिङ्गनलाभसः, तथा मिथ्याज्ञास्वादतः, तथा रूपादा-
 ख्रियामवलोकनतः, तथा परिमलात्राणनिरतश्च । तथा च ऋषिपुत्रकः—

स्पृष्टतेषु विलम्बन्ते विषयासक्तचेतसः ।
 क्षिप्रमक्रियमाणेषु तेषु तेषां न तत्फलम् ॥ १ ॥

अथ पुरुषाणां यथेन्द्रियजयो भवति तदाह—

इष्टेऽर्थेऽज्ञामक्तिर्विरुद्धे चाप्रवृत्तिरिन्द्रियजय ॥ ८ ॥

टीका—इष्टे बहुभेदे यन्तुनि अनासक्तो भवति युक्तमात्र निवे-
 दते न तत्रैवामक्ति करोति स जितेन्द्रिय कथ्यते । सेवास्य फलवत्त-
 व्येतद्विष्टनिर्वाण युक्तं तथाप्यत्रिविधमुक्तं यतोऽर्थात् एष्वप्यत्र व्या-
 धये मरणाय वा भवति । तथा विरुद्धे पदार्थे चाप्रवृत्तिप्रवृत्तये यस्य

कामसमुद्रः ।

टीका—नास्ति न विद्यते । किं तन्, विकिसितं शुभकर्मोप-
 शः । कस्य ! कामासक्तस्य पुरुषस्य । कोऽर्थः ! न किंचिद्विदितं

जृणोति । तथा च जैमिनिः—

न जृणोति पितृर्घोषं न मातुर्न दितस्य च ।
 कामेन पित्रितो मर्त्यस्ततो नाशं प्रगच्छति ॥ १ ॥

अथ श्रीममासक्तस्य यद्भवति तदाह—

न तस्य धनं धर्मः शरीरं वा यस्यास्ति ग्रीप्यत्यामक्तिः ॥ १२ ॥

टीका—यस्य पुरुषस्य स्त्रीवियवेज्यासक्तिर्भवति तस्य तावद्भवेन न
 भवति तस्यामासक्तेर्व्यवसायं न करोति तेन विना दरिद्रता भवति ।

उक्तं च कामन्दकिना—

नितान्तं संप्रवृत्तानां कामतामुषयिलोकने ।

नाशमायान्ति सुख्यकं यौवनेन समं धियः ॥ १ ॥

तथा च धर्मश्च न भवति देवहृत्यस्य पितृकार्यस्य वा पुनः तथा
 च शरीरं न भवति, अतिरिच्यभवात् क्षयव्याधिर्न संजायते । तथा च

बृहभदेवः—

यः संसेपयते कामी कामिनीं न ततं प्रियां ।

तस्य संजायते परमां धृतराष्ट्रपितुर्वया ॥ १ ॥

अथ विरुद्धकामवृत्तेर्भवति तदाह—

विरुद्धकामवृत्तिः समृद्धौऽपि न चिरं नन्दति ॥ १३ ॥

टीका—यः पुमान् विरुद्धवृत्तिः स समृद्धौऽपि लक्ष्मीवानपि चिर-
 कालं न नन्दति न पुनर्लक्ष्मीवान् भवति । विरुद्धकामवृत्तेन परदार-
 मेवा कथ्यते तथा यो वर्तत इति । तथा च कपिपुराणे—

परदारवृत्तो योऽत्र पुरुषः सप्रजायते ।

॥ १ ॥

पुनस्तस्य भवति सोऽपि जितेन्द्रियः । अतिरुद्धशब्देन शिष्टाचारः कथ्यते
तदा च भृगुः—

अनुगन्तुं सतां गच्छं दृग्मनं यदि न शक्यते ।
स्वल्पमप्यनुगम्यते येन स्योत् स्वयिनिर्जयः ॥ १ ॥

अत्रान्येन पदार्थेन यथा स्वादिन्द्रियजन्यस्तरुणमाह—

अर्धशास्त्राध्ययनं वा ॥ ९ ॥

टीका — वा लोकान्येन यदि शिष्टगामो न ज्ञायते तर्ह्ये शास्त्राध्य-
यने दृष्ट्या रू येन जितेन्द्रियता भवति । तथा च वर्गः—

नीतिशास्त्राध्ययनीये यस्तस्य दृष्टानि स्वागम्यनि ।
यशमानं शनैर्गन्ति यशसायतिहंसा यथा ॥ १ ॥

अत्र शब्दार्थेन कामदृष्ट्यामाह —

वीर्यद्वन्द्वेनारि जीयते न कथं पुत्रद्वन्द्वेनार्तिरुपेत् ॥ १० ॥

टीका — वा नरादनमन कामद्वन्द्वेन जीयते न कथं केन प्रकारेण
अनारिन् वरुण ननु समर्था भवति न कथमिदमेवम् । त्रिविदि-
शब्दार्थेन । पुत्रद्वन्द्वेन पुत्रानि यशानि यशसायतिहंसा येन ते पुत्रद्व-
न्द्वेन । पुत्रद्वन्द्वेन यशसायतिहंसा यथा दुर्गं कामो व ३ मृदो यथा-
द्वन्द्वेन न विजयते । यथा यथा । ननु ।

यत्तु ॥ कामिभ्यस्तथा । न यशसायतिहंसा ।
पुत्रद्वन्द्वेनारि जीयते न कथं पुत्रद्वन्द्वेनारि जीयते ।

अत्र ॥ १० ॥ १० ॥ १० ॥

स्वल्पमप्यनुगम्यते येन स्योत् स्वयिनिर्जयः ॥ ११ ॥

कामममुरशः ।

टीका—नास्ति न विद्यते । किं तन्, चिकित्सितं शुभकर्मोप-
 दाः । कस्य ! कामासतस्य पुण्यस्य । कोऽर्थः ? न किंचिद्विदितं
 नृणोति । तथा च जैमिनिः—

न शृणोति पितुर्वाक्यं न मानुने दितस्य च ।
 कामेन विजितो मर्त्यस्ततो नाशं प्रगच्छति ॥ १ ॥
 अथ छीसमासतस्य यद्वदति तदाह—
 न तस्य धनं धर्मः शरीरं वा यस्यास्ति ग्रीष्मत्यामक्तिः ॥ १२ ॥
 टीका—यस्य पुण्यस्य छीविषयेऽयामक्तिर्भवति तस्य तावद्धनं न
 भवति तस्यामासतेर्त्यवमाय न करोति तेन विना दग्धिता भवति ।
 उक्तं च कामन्दकिना—

निनाशं संप्रवृत्तानां कामागुह्यविशेषकमे ।
 नाशमायान्ति सुख्यस्तः यावतेन स्वमं धियाः ॥ १ ॥
 तथा च धर्मश्च न भवति देवहृत्यस्य पितृकार्यस्य वा पुनः तथा
 च शरीरं न भवति, अतिदीर्यश्रयाः क्षयव्याधिश्च संजायते । तदा च
 बृहस्पदेव—

यः संवेद्यते कामी कामिनीं स्वतन्त्रं प्रियां ।
 तस्य संजायते स्वमं धृततापितुर्पथा ॥ १ ॥

अथ विन्दकामहृतेर्पद्वदति तदाह—
 विन्दकामहृतिः समृद्धोऽपि न चित् नन्दति ॥ १३ ॥

टीका—यः पुमान् विन्दते स समृद्धोऽपि तस्मीदृशे चित्-
 काय न नन्दति न पुनरेवमर्थं भवति । विन्दकामहृतेन पादा-
 मय कायने तस्य वा वतल शयः । तदा च कामपुत्र-
 परदास्यतो वा च पुण्य संप्रजायते । । ॥

४ अरिपङ्क-समुद्देशः ।

अथ मूर्खानां शरीरस्यः शत्रुपङ्क्तौ यथा भवति तथाह—

अपुनितः प्रणीताः काम-क्रोध-लोभ-मद-मान-द्वेषाः
द्वितीयानामन्तरङ्गोऽरिपङ्क्तौ ॥ १ ॥

टीका—अपुनितान्यायेन संविताः सन्तः काम-क्रोध-लोभ-मान-मद-
द्वेषाः, एतेषां यणां वर्गः संपातोऽन्तरङ्गः शरीरस्य शत्रुपङ्क्तौ द्वे-
ष्टशणो ज्ञेयः । केनां ? द्वितीयानां । योऽर्थः ? यत्तत्रैव बुद्धिना वधिना
एते हृष्यन्ति ।

अथ यथा कामो दुरभिसन्धिर्भवति तथाह—

परपरिगृहीताम्यनृणां तु सखीषु दुरभिसन्धिः कामः ॥ २ ॥

टीका—परैर्भैर्या परिगृहीता बेरपादयः, तथा वा अनृणां तुमा-
रिकास्तां विषये च कामः स दुरभिसन्धिर्न सुखशो भवति । तथा
च गौतमः—

सखाधिता च यो नारी कुमारी वा निवेद्यते
तत्रैव कामः प्रदुःखाय वन्ध्याय मरणाय च ॥ १ ॥

अथ क्रोधा यथासि सखायते तथाह—
अविषार्य परम्यान्मनो वापायहेतुः क्रोधः ॥ ३ ॥

टीका—यः परम्याऽन्तः शान्तः न कामात् क्रोधः च ॥ ३ ॥
न क्रोधात् तस्य वापयः विनाशाय च ॥ ३ ॥ तत्र च
भाष्ये—

अरिपद्मसमुद्रः ।

बुद्धधीर्यस्यरूपायैवै गयो ज्ञानसम्भवः ।
स मदः प्रोच्यतेऽन्यस्य येन या कर्पणं भवेत् ॥ १ ॥

अथ हर्षो यथा भवति तथाह—

* निर्निमित्तमन्यस्य दुःखोत्पादनेन स्वस्वार्थसंचयेन वा
मनःप्रतिरञ्जनो हर्षः ॥ ७ ॥

टीका—निर्निमित्त अन्यस्य दुःखोत्पादनं क्रियते तत्र या प्रीतिः
सोऽपि हर्ष इति । तथा च भारद्वाजः—
प्रयोजनं विना दुःखं यो दृष्ट्वान्यस्य हृष्यति ।
आत्मनोऽनर्थसदेदः स हर्षः प्रोच्यते बुधः ॥ १ ॥

अरिपद्मसमुद्रः ।

* हर्षं लक्षणाभिधायकं गुणं पुस्तकं न विद्यते अतो मुद्रितपुस्तकस्य स
मवोजितं वर्तमानं त्रुटितरूपं । १ स्वस्वार्थसंचयेन वा मू । २ मनः प्रीतिः
पुस्तकं ।



कुलघोर्यस्वरूपायैव गघोः ज्ञानसम्पदः ।

न मदः प्रोच्यतेऽन्यस्य येन वा कर्पणं भवेत् ॥ १ ॥

अथ हर्षो यथा भवति तथाह—

* निर्निमित्तमन्यस्य दुःखोत्पादनेन स्वसार्थसंचयेन वा
मनःप्रतिरोजनो हर्षः ॥ ७ ॥

टीका—निर्निमित्तं अन्यस्य दुःखोत्पादने क्रियते तत्र या प्रीतिः
सोऽपि हर्ष इति । तथा च भारद्वाजः—

प्रयोजनं विना दुःखं यो हृत्स्वान्यस्य हृष्यति ।

आत्मनोऽनर्थसर्द्धः स हर्षः प्रोच्यते बुधैः ॥ १ ॥

इत्यरिपद्मसमुद्देशः ।

* हर्षं लक्षणाभिधायकं सूत्रं पुस्तके न विद्यते अतो मुद्रितपुस्तकस्थं सूत्रं
संयोजितं इतिरपि त्रुटितरूपैव । १ स्वस्यानर्थसंशयेन वा मू । २ मनः
जननो. मू—पुस्तके ।

प्रतक्षर्यादिको धर्मो न भूपानां सुखायदः ।

तेषां धर्मः प्रदानेन प्रजासंरक्षणेन च ॥ १ ॥

अथ राज्ञो यथा योग्यं कर्म राज्यं भवति तदाह—

राज्ञः पृथ्वीपालनोचितं कर्म राज्यं ॥ ४ ॥

टीका—राज्ञो भूपतेर्यपृथ्वीपालनोचितं योग्यं कर्म पाहुण्यलक्षणं तद्राज्यमुच्यते न विद्यासायं तस्माद्रूपतिना पाहुण्यनिरतं सदैव भाव्यं न केवलं विद्यासरतेन । तथा च वर्गः—

पाहुण्यचिन्तनं कर्म राज्यं यसंप्रकथ्यते ।

न केवलं धित्वासायं तेन याद्यं कथंचन ॥ ११ ॥

यो राजा चिन्तयेन्नय पिण्डसंकमनाः सदा ।

पाहुण्यं तस्य तद्राज्यं स चिरेण प्रणश्यति ॥ २ ॥

अथ भूयोऽपि भूपतेर्यादप्राप्त्यं [शब्दः] तदाह—

वर्णाश्रमवती धान्यहिरण्यपशुकुप्यष्टिप्रदानफला च पृथ्वी ॥५॥

टीका—न केवलं भूपतेः प्रजापारने राज्यमुच्यते । चकाराद्वर्णाश्रमवती धान्यहिरण्यपशुकुप्यष्टिप्रदानफला च पृथिवी राज्यमुच्यते । वर्णाश्रमादयः, आश्रमा प्रह्वचारिप्रभृतयस्ते विद्यन्ते यस्यां सा वर्णाश्रमवती । पुनरपि किंविदिष्टा पृथ्वी ? धान्यहिरण्यपशुकुप्यष्टिप्रदानफला धान्यं सस्यं, हिरण्यं द्रव्यं, पशवश्चतुष्पदाद्याः, कुप्यं सुवर्णरूप्याभ्यामन्यत् । एतेषां पदार्थानां वर्णनं वृष्टिस्तस्या प्रदानं वा करोति सा पृथिवी उच्यते । एतदुक्तं भवति—एते (एतेषां) पदार्थे (पदार्थानां) या वर्णनं करोति—एते पदार्था यस्या भूमेः सकाशानित्य यस्य राज्ञे समुत्पद्यन्ते तद्राज्यमिति । तथा च भृगु —

वर्णाश्रमसमोपेता सर्वकामान् प्रपच्छति ।

या भूमिर्भूपते राज्यं प्रोक्ता साग्या विद्वज्जना ॥ १ ॥

अथाश्रमलक्षणमाह—

ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राश्च वर्णाः ॥ ६ ॥

ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो यतिरित्याश्रमाः ॥ ७ ॥

टीका—गतार्थमेतत् ।

अथापकुर्वाणकस्य ब्रह्मचारिणो लक्षणमाह—

स उपकुर्वाणको ब्रह्मचारी यो वेदेमधीत्य स्नायात् ॥ ८ ॥

टीका—स्नानं कुर्यात् । अत्र स्नानशब्देन यज्ञावभृथस्नानमुच्यते ।

एतदुक्तं भवति, वेदानपि पठित्वा तत्रस्थोऽपि विवाहं न करोति पश्चात्

गुरोः सुश्रूषां करोति नान्यैर्ब्रह्मचारिभिरिव गृहं याति यज्ञावभृथमुच्यते ।

तत्कृत्येनोपकुर्वाणसंज्ञां प्राप्नोति । उपकुर्वाणकशब्देन यज्ञावभृथस्नानं ।

तथा च वर्गः—

वेदानधीत्य यः कुर्याद्विवाहं यज्ञमेव वा ।

उपकुर्वाणको संज्ञां ब्रह्मचारी लभेत सः ॥ १ ॥

अथ ब्रह्मचारिण उपकुर्वाणसंज्ञा यथा भवति तदाह—

स्नानं विवाहदीक्षामिपेकः ॥ ९ ॥

टीका—गतार्थमेतत्

अथ नैष्ठिकस्य ब्रह्मचारिणो लक्षणमाह—

१ ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो मिथुश्च सप्तमे ।

चत्वारोऽग्रे विवाहेदादुक्ता वर्णवदाश्रमाः ॥ १ ॥

अथवा—

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च मिथुः ।

इत्याश्रमास्तु ज्ञेयानां सप्तमाज्ञादिनिर्मुक्ताः ॥ १ ॥

२ वेभो किल मिदन्तो तस्मिन् नवपमरपञ्चस्य ।

गुणमगण्डाणां च जीवहृत्पाणि सन्धानि ॥ १ ॥

उपानिषत्प्रत्ययनादशास्त्रं वा । ३ अस्यार्थः, स्वयमाचार्यणात्तरप्रबन्धेन

वक्ष्यते ।

स नैष्ठिको ब्रह्मचारी यस्य प्राणान्तिकमदारैकर्म ॥ १० ॥

टीका—यस्य ब्रह्मचारिणः प्राणान्तिकं मृत्युपर्यन्तं कलत्ररहितं क्रियाकाण्डं भवति स नैष्ठिकः प्रोच्यते । निष्ठाशब्देन कष्टमभिधीयते । तथा दीव्यति नैष्ठिकः । तथा च भारद्वाजः—

कलत्ररहितस्याथ यस्य कालोऽतिवर्तते ।

कष्टेन मृत्युपर्यन्तो ब्रह्मचारी स नैष्ठिकः ॥ १ ॥

अथ पुत्रस्य लक्षणमाह—

य उत्पन्नः पुनीते वंशं न पुत्रः ॥ ११ ॥

यः पुत्र उत्पन्नो जातः कुलं पुनीते पवित्रतां नयति स्नानदानव्रतादिभिः स पुत्रः प्रोच्यते । तथा च मागुरिः—

कुलं पाति समुत्थो यः स्वधर्मं प्रतिपालयेत्

पुनीते स्वकुलं पुत्रः पितृमातृपरायणः ॥ १ ॥

अथ कृतपदस्य ब्रह्मचारिणो लक्षणमाह—

कृतोद्वाहः कृतप्रदाता कृतप्रदः ॥ १२ ॥

टीका—यो ब्रह्मचारी कृतोद्वाहः सन् कृतकाण्डाभिगामी केवलं सन्तानाय भवति स कृतपदसंज्ञो भवति । तथा च वर्गः—

सन्तानाय न कामाय यः स्त्रियं कामयेच्छता ।

कृतपदः स सर्वेषामुत्तमोत्तमस्तवेधित् ॥ १ ॥

अथापुत्रस्य ब्रह्मचारिणो यद्भवति तदाह—

अपुत्रो ब्रह्मचारी पितृणामृणभाजनम् ॥ १३ ॥

१ प्रथमाधमिज-प्रोक्ता ये पञ्च पञ्चदश ।

तेऽप्येत्येव शास्त्रे स्वर्गपुंशंरानन्त्यत्र नैष्ठिकात् ॥ १ ॥

२ पुत्र पुत्रो स्वात्मानं मुक्तिपथि च केचन ।

य उपस्तुयते वपुस्तस्य शत्रु मुतच्छतकात् ॥ १ ॥

३ मेरुं सर्वं सु-मू-पुलके ।

टीका—यो ब्रह्मचारी पुत्ररहितो भवति स पितृणामृणभाजनं भवति ततश्च पुनर्नरकं प्राप्नोति । तथा च ऋषिपुत्रकः—

पिता पुत्रमुत्वं दृष्ट्वा मुच्यते पैतृकादृणात् ।

अपुत्रश्च पुनर्याति पुंसं नरकं नरः ॥ १७ ॥

अथाप्यनरहितस्य ब्रह्मचारिणो यद्वदति तदाह—

अनप्ययनो ब्रह्मणः ॥ १४ ॥

टीका—अनप्ययनो वेदरहितः स ब्रह्मणः पितामहस्य ऋणभाजनं भवति । तथा च ऋषिपुत्रकः—

ब्रह्मचारी न वेद यः पठते मीढ्यमासिपतः ।

स्यायंभुवमृणं तस्य वृद्धिं याति कुसीदकम् ॥ १८ ॥

अथायतनब्रह्मचारिणो यद्वदति तदाह—

अयजतो देवानां ॥ १५ ॥ *

टीका—यो ब्रह्मचारी अयजतो भवति यजने न करोति स देवानां ऋणभाजने भवति । तथा च ऋषिपुत्रकः—

नाग्नेः परिग्रहो यस्य विद्यते ब्रह्मचारिणः ।

ऋगनाग्नी न देवानां जायते नात्र संशयः ॥ १९ ॥

अथ नैष्ठिकस्य ब्रह्मचारिणोऽपुत्रस्यापि यद्वदति तदाह—

आत्मा वै पुत्रो नैष्ठिकस्य ॥ २० ॥

टीका—ये शब्दः समुद्यते । नैष्ठिकस्य पूर्वोक्तउत्थणस्य ब्रह्म-
चारिण आत्मा एव पुत्रः । एतदुक्तं भवति—यथाऽपुत्रः पुत्रार्थं वि-
नश्यति पुत्र प्राप्नोति । तथा नैष्ठिकाग्रो ब्रह्मचारिणोऽपुत्रत्वेन न
प्राप्नोति । पुनर्नरकं न पश्यतीत्यर्थः । तथा नप्यनायतनदोषमपि न प्रा-
प्नोति । तथा च ऋषिपुत्रकः—

अथ नित्यानुष्ठानस्य लक्षणमाह—

ब्रह्मदेवपितृतिथिभूतयज्ञा हि नित्यमनुष्ठानम् ॥ १९ ॥

टीका—यत्स्वशक्त्या ब्रह्मण यज्ञा क्रियन्ते तथाभीष्टदेवतार्चनं तथा पितृत्तर्पणं तथा कालप्राप्तब्राह्मणतर्पणं तथा भूतयज्ञः । भूतयज्ञशब्देन वैश्वदेववलिप्रदानमुच्यते एतानि कुर्वाणो गृहस्थो नित्यानुष्ठानी भवति । तथा च वर्गः—

पितृदेवमनुष्याणां पूजनं ब्राह्मणैः सह ।

वलिप्रदानमयुक्तं नित्यानुष्ठानमुच्यते ॥ १ ॥

अथ नैमित्तिकानुष्ठानस्य लक्षणमाह—

दर्शपौर्णमास्याद्याश्रयं नैमित्तिकम् ॥ २० ॥

टीका—दर्शशब्देनामावास्या प्रोच्यते । पौर्णमासी प्रसिद्धा एते द्वे अपि आद्ये, प्रथमे यासा तिथीना ता दर्शपौर्णमास्याद्यास्तासु तिथिषु । देवतासमुद्देशेन यत् क्रियते धर्मफल तन्नैमित्तिकं । तथा च भागुरिः—

हुतबहकमलजगिरिजागजयदनभुजगगुहदिनेशशिवाः ।

दुर्गायमविद्याच्युतमदनेश्वरचण्डिकास्थितिपतयः ॥ १ ॥

पितरोऽमावस्यां यान्ति तिथिपूजात्र या कृता

तेषां तर्ह्यमित्तिकं प्राह यश्चानित्यं च पर्वभवं ॥ २ ॥

अथान्यदपि चतुर्विधगृहस्थलक्षणमाह—

वैवांहिकः शालीनो जायावगेऽधोगे गृहस्थाः ॥ २१ ॥

१ गृहस्थस्येज्या वार्ता दत्ति स्वाध्याय मयम तप इत्याययट्कमाणि भवन्ति । तत्रार्हत्पूजेज्या, सा च नित्यमहधनुर्मुख कल्पवृक्षोऽष्टान्दिक गन्द्रध्वज इति । तत्र नित्यमहो नित्य यथाशक्ति जितशुद्धेभ्यो निजगृहाङ्गुण्यपुण्याक्षतादि- निवेदनं, चैत्यचैत्रालय कृत्वा ग्रामक्षेत्रादीनां शासनदान मुनिजनपूजनं च भवति । चतुर्मुख मुकुटवर्द्धं कियमाणा पूजा मेव महामह सर्वनीमद इति । कल्पवृक्षोऽर्धिनः प्रार्थितार्थैः सन्तर्प्यं चक्रवर्तिना कियमाणो मह । अष्टान्दिक

विद्याह्वयमुद्देशः ।

एकस्मिन्माहरेषस्तु भक्षया परया युतः ।
 वैयादिकः स विप्रयो वर्तमानगृहे स्थितः ॥ १ ॥
 अग्निष्टोत्रपरो यस्तु वैयासं यजन विना ।
 शालान्तः स च विप्रैः पंचयद्वानराचनम् ॥ २ ॥
 एकयन्दिपरो पाथ पंचयन्दिपरोऽपि पा ।
 यः शूद्रार्थं न शूकानि मुक्तो ज्ञायापरो हि सः ॥ ३ ॥
 अग्निष्टोमार्हनिपञ्चयजते यः सदर्शनः ।
 अघोरः स च विप्रैः सांख्यरूपवपुर्धरः ॥ ४ ॥
 इति चतुर्विधगृहस्थसमुद्देशः ।

अथ बानप्रस्थप्रश्नमाह—

[illegible]

ब्रह्मसूत्रानुसारं गृहस्थ - वैश्य - शूद्राणां च भोजनं विहितम् । नः हस्त्य
मेदप्रतिपादकं सूत्रं सु-सं-सूत्रपुस्तकम् । अथ - धर्म्य उक्तं च । नः हस्त्य
विद्वान्स्त्रीनि निश्चितम् । अतस्तत्र स्वमतानुसारं गृहस्थं सूत्रानि विरचय्य
मयाजितानि । एतानि च तत्र तत्र निवदन्तिष्याम ।

इति चतुर्विधवानप्रत्यसमुद्देशः ।

अथ यतिलक्षणमाह—

यो देहमात्रारामः सम्यग्विद्यानांलाभेन वृष्णासरित्तरणाय
योगाय यतते यतिः ॥ २४ ॥

टीका—यो देहमात्रारामः शरीरमात्रेणात्मन रमते नान्यत्किंचिदानन्दार्थं
विलोकयति । सम्यग्विद्याशब्देन ज्ञानमभिधीयते सा एव नौर्वाणपात्रं
तामभ्यस्यन् संसारनदीपारगमनाय यो योगस्तदर्थं यतते यत्नं करोति स
यतिः । तथा च द्दारीतः—

आमारामो भवेद्यस्तु विद्यासेवयनतत्परः ।

संसारतरणार्थाय योगमाग्नयतिरुच्यते ॥ १ ॥

अथ चतुर्विधयतिलक्षणं—

* कुटीरकवहोदकहंसपरमहंसा यतय ॥ २५ ॥

टीका—त्रिदण्डो त्रिशिखी यस्तु प्रत्यक्षी गृहच्युतः ।

सकृन् पुनश्च स्नानि यो यतिः स कुटीरचरः ॥ १ ॥

* यतिभेदप्रतिपादकं सूत्रं टीकाकर्त्रा विरचितं, त्रिदं सूत्रं पुनः पुनः-मूल-
पुराणे । जैनमतानुसारेण तु कनीनां इमे चारारो भेदाः । त्रिदण्डो त्रिशिखी-
रिगस्ते बहवो भवन्ति । अतएव यतयो मुनयश्च यथेति । तत्रानगाराः सामा-
न्यसाधव उत्पद्यन्ते । यतय उपशमसाधकथेभ्यः कृता भवन्ते । मुनयोऽर्थमन-
पर्ययकेवलज्ञानिनश्च कथ्यन्ते । कथय कृद्विप्राप्तात्ते चतुर्विधा राजब्रह्मदेवपरम-
भेदात् । तत्र राजर्षयो विविधासीत्कृद्विप्राप्ता भवन्ति । ब्रह्मर्षयो बुद्धर्षयो-
कृद्विप्राप्ता कीर्यन्ते । देवर्षयो गगनगमनादभ्युक्ता कथ्यन्ते । परमर्षय-
केवलज्ञानिनो निगद्यन्ते । अत्र च—

देवप्रपद्यवि-केवलभूतिदं मुनि स्थानं च द्दाल्लतदि-

राहुर्येतिपुनमाऽत्रति यतिरनगाराऽपरं साधुवृत्तः ।

रात्रा ब्रह्मा च देव परम इति कृषिर्विक्रियऽक्षान्तरा-
प्राप्तो बुद्धर्षीचर्षीर्यो विषययनपदुर्बलवदा वमेत ॥ १ ॥

कुटीचरस्य रूपेण ब्रह्मभिक्षाकृताशनः ।
 बद्धोदकः स विश्वेयो विष्णुजापपरायणः ॥ २ ॥
 एकरात्रं यसेह्वामे स्थाने चैव त्रिरात्रकं ।
 दण्डभिक्षां चरेत्तत्र पुष्टिकां वा समाचरेत् ॥ ३ ॥
 विप्राणामावसर्धेषु विधूमेषु गताग्निषु ।
 हंसस्य जायते ज्ञानं यदा स्यात्परमो हि सः ॥ ४ ॥
 चतुर्वर्षप्रभोक्ता स्यात्स्वेच्छया दण्डधृत्तदा ।
 सर्वारम्भपरित्यागो भिक्षास्य वृक्षमूलतः ॥ ५ ॥
 निष्परिवृद्धीताद्रोहः समता सर्वजन्तुषु ।
 प्रियाप्रियापरिष्यद्भः सुखदुःखाधिकीरिता ॥ ६ ॥
 सयाह्वाम्यन्तरं शौचं याश्मनोयतचारिता ।
 सर्पेन्द्रियसमाहारो धारणा ध्याननित्यता ॥ ७ ॥
 भावमनुजिज्ञित्वेना परिब्राह्मणं उच्यते ।

चतुर्विधपनिममुदंग ।

अथ राज्यस्य मूलं यद्वदन्ति तदाह—

राज्यस्य मूलं क्रमो विक्रमश्च ॥ २६ ॥

टीका—क्रमशब्देन विवृण्वतामहिकं राज्यमुच्यते । विक्रमः शौर्यं ।
 एतन् वृक्षस्येव राज्यमूलं । यथा वृक्षेण मूलेन सता सर्वशाखादि-
 पुष्पकण्ठे भवन्ति तथा च राज्यस्य क्रमविक्रमाभ्यां सहितस्य सर्वं हस्त्यश्व-
 नथान्यादिकं भवति । तथा च शुकः —

क्रमविक्रममूलस्य राज्यस्य तु यथा तरोः ।

सामूलस्य मधेद्रुजिह्वाभ्यां शंस्य संशयः ॥ १ ॥

अथ यथा क्रममव्यतिर्भवति तदाह—

आनात्मव्यतिः क्रममव्यतिं करोति ॥ २७ ॥

टीका—आचारो लोकव्यवहारस्येन वर्तमानस्य नयवृद्धी राज्यवृद्धि-
र्भवति । तथा च शुकः—

लौकिकं व्यवहारं च कुरुते नयवृद्धितः ।

तद्वृद्ध्या पूर्यमायाति राज्यं तत्र क्रमागतं ॥ १ ॥

अथ यदा विक्रमस्यालङ्कारो भवति तदाह—

अनुत्सेकः खलु विश्रमस्यालङ्कारः ॥ २८ ॥

टीका—अनुत्सेकशब्देनागर्भोऽभिधीयते स विक्रमस्य शोभा जन-
यति । न कनकादिभूषणं । तथा च गुरुः—

भूषणरूपि संशयः स विरेजे विगर्धकः ।

सगर्भो भूषणाङ्गोऽपि लोकेऽस्मिन् दास्यतां प्रजेत् ॥ १ ॥

योऽमात्यान्मन्यते गर्वात् गुरुन् न च बालधवान् ।

शूरोऽहमिति विज्ञेयो ध्रियते रावणो यथा ॥ २ ॥

अथ भूपस्य राज्यलाभो यदा भवति तदाह—

क्रमविक्रमयोरन्यतरपरिग्रहेण राज्यस्य दुष्करः परिणामः २९

टीका—क्रमविक्रमयोरन्यतरपरिग्रहेणैकतमस्वीकारेण राज्यस्य दुष्करो
न शक्यते परिणामः परिणतिः । एतदुक्तं भवति पराक्रमरहितं क्रमा-
गतं पितृपैतामहिकमपि राज्यं विनश्यति । यदि बलेन परराज्यं गृहीतं
परिणामे न याति भूयोऽपि तथा कार्यं, क्रमेण यथा गच्छति । तथा
च शुकः—

राज्यं हि सखिलं यद्वयद्वलेन समाहृतं ।

भूयोऽपि तत्ततोऽभ्येति लब्धाकालस्य संशयः ॥ १ ॥

अथवा पितृपैतामहिकेऽपि राज्ये प्राप्ते पराक्रमं त्यक्त्वा भीरुत्वं प्रतिगृह्णाति तस्यापि राज्यस्य परिणामः परिणतिर्दुष्करा भवति । कोर्यः ? राज्यभ्रंशो भवतीति । तथा च नारदः—

पराक्रमव्युत्थो यस्तु राजा संप्रामकातरः

अपि क्रमागतं तस्य नाशं राज्यं प्रगच्छति ॥ १ ॥

अथ क्रमविक्रमयोरधिष्ठानं राजा यथा भवति तथाह—

क्रमविक्रमयोरधिष्ठानं बुद्धिमानाहार्यबुद्धिर्वा ॥ ३० ॥

टीका—यो बुद्धिमान् राजा भवति स क्रमविक्रमयोरधिष्ठानं स्थानं भवति । आहार्यबुद्धिर्वा तथा आहार्यबुद्धिर्यो भवति सोऽपि क्रमविक्रमयोरधिष्ठानं भवति । आहार्या बुद्धिर्यस्यासौ आहार्यबुद्धिः । अमात्यदत्तोपदेश इत्यर्थः । तथा च शुक्रः—

स बुद्धिसहितो राजा नीतिशौर्यगृहं भवेत् ।

अथवा मात्यबुद्धिस्तु बुद्धिहीनो विनश्यति ॥ १ ॥

अथ बुद्धिमान् यथा राजोच्यते तदाह—

यो विद्याविनीतमतिः स बुद्धिमान् ॥ ३१ ॥

टीका—यो शास्त्रानुगतबुद्धिर्भवति स बुद्धिमान् न शिल्पादि-मिर्यया प्राकृतो जनः । तथा गुरुः—

शास्त्रानुगा भवेद्बुद्धिर्यस्य राज्ञः स बुद्धिमान् ।

शास्त्रबुद्ध्या विहीनस्तु शौर्ययुक्तो विनश्यति ॥ १ ॥

अथ शास्त्ररहितबुद्धेः शूरस्यापि नृपस्य यद्भवति तदाह—

मिहस्येव केवलं पौरुषावलम्बिनो न चिरं कुशलम् ॥ ३२ ॥

टीका—शास्त्ररहितस्य केवलं पौरुषयुक्तस्य चिरं प्रभूतकालं कुशलं न भवति केनापि वक्ष्यते दुष्टोऽयमिति । तथा च शुक्रः—

प्राप्त्याप्तमृगमाधनम् दृष्टिः न प्राप्यते जनः ।

शास्त्रदुष्टिदृष्टिनिष्ठम् यतो मार्गो न गच्छति ॥ १ ॥

अथ शास्त्रादित्यस्य दृष्टिर्नैकैकवाच्यं तदाह—

अज्ञानः शून्य इवाज्ञानं प्रज्ञावानपि भवति विद्विषीं यज्ञः ३३

टीका—यथा शास्त्रादित्य आधुनिकनिष्ठः पुमान् शून्येति श्रीगदीनां
गम्यो भवति तथा शास्त्रादित्य शून्येति पुमान् प्रज्ञावानपि सर्वेया
श्रीगदीनां गोचरो गम्यो भवति तथा च गुणः—

मीतिज्ञानमिदानीं य प्रज्ञावानपि दृश्यते ।

परं शास्त्रमिदानीम् चार्थार्थरवि धीयमान् ॥ १ ॥

अथ शास्त्रं पुनश्च यथा भवति तदाह—

अलोचनगोचरे दृश्ये शास्त्रं तूनीयं लोचनं पुण्याणाम् ॥ ३४ ॥

टीका—अपेक्षान्तेन प्रयोजनमधीयते । अपेक्षान्तेन लोचनाम्यां
न दृश्यते तस्य दर्शनार्थं तूनीयं लोचनं शास्त्रं भवति । एतदुक्तं भवति,
तत्रयोजनं शास्त्रदृष्ट्या हेतुः, युक्तमयुक्तं भवति न वेति निश्चयः कार्यः ।
तथा च गुणः—

अदृष्ट्या निजस्यभुक्त्या कार्यं लभ्येहमागते ।

शास्त्रेण निश्चयः कार्यस्तदर्थं च क्रिया तताः ॥ १ ॥

अथ शास्त्रादीनं पुमान् यथा न भवति तदाह—

अनर्थातशास्त्रधक्षुमानपि पुमानन्य त्व ॥ ३५ ॥

टीका—यत्नं पुण्या शास्त्रं पश्यते न भवति स लोचनमाहताऽप्य-

न्य लोचनं हीयते । तथा च भाग्यम्

दुष्मादुमे न पश्यथा यथाप्य दृश्यते । स्थितः ।

शास्त्रादीनस्तथा मन्या धर्माधर्मा न विन्दन्ति ॥ १ ॥

१ अज्ञानादिति । गुणः पुनश्च । २ सर्वथा न वेति न पुनश्च ।

अथ मूर्खः पुमान् यथा भवति तदाह—

न ह्यज्ञानादर्परः पशुरस्ति ॥ ३६ ॥

टीका—अस्मिन् जगति अज्ञानान्मूर्खादन्यो द्वितीयः पशुर्नास्ति । यतः पशुस्तृणानि भक्षयति ततो मूत्रपुरीषक्रियां करोति तथा मूर्खोऽपि खानपानार्थं मूत्रपुरीषे च केवलं करोति, धर्माधर्मौ न जानाति । तथा च वशिष्ठः—

मर्त्या मूर्खतमा लोकाः पशवः शृङ्गवर्जिताः ।

धर्माधर्मौ न जानन्ति यतः शास्त्रपराश्मुखाः ॥ १ ॥

अथ भुवन यादृशेन राज्ञा वृद्धिं न याति तथाह—

वरमराजकं भुवनं न तु मूर्खो राजा ॥ ३७ ॥

टीका—वरं अराजकं भूपतिहीनं भुवनं न तु मूर्खमूपाळाधिष्ठितं । तथा च गुरुः—

अराजकानि राष्ट्राणि रक्षन्तीह परस्परम् ।

मूर्खो राजा भवेद्येषां तानि गच्छन्ति संक्षयं ॥ १ ॥

अथ कुमारो यथा पदवीमाप्नोति तदाह—

असंस्कारं रत्नमिव सुजातमपि राजपुत्रं न नायकपदायाम्भ-
नन्ति सार्धैवः ॥ ३८ ॥

टीका—यस्य राजपुत्रस्य सुजातस्यापि कुलीनस्यापि संस्कारः कौशल्यं न भवति तं नायकत्वे यौवराज्यपदे नामनन्ति न वाञ्छन्ति सर्वाः प्रकृतयः यत् युवराजोऽयं भवतु । कथं, रत्नमिव परं संस्कार-
रहितं, यावच्छाणौ लीड (न) क्रियते सुजातमपि समुद्रोत्पन्नमपि । नायकत्वे न मन्यते यथा रत्नमसंस्कृतं ।

१ अन्य. इति मु-पुस्तके पाठान्तरं । २ त्विति मु-मू-पुस्तके नारित ।
३ अह्नसंस्कारं मु-पुस्तके । ४ नीतिमन्तः इति मू-पुस्तके ।

अथ दुर्विनीताद्राज्ञः सकाशात् प्रजानां यद्भवति तदाह—

ने दुर्विनीताद्राज्ञः प्रजानां विनाशादपरोऽस्त्युत्पातः ॥३९॥

टीका—प्रजानां लोकानां दुर्विनीताद्राज्ञः सकाशात् अन्य उत्पातो विनाशलक्षणो नास्ति न विद्यते । उत्पातैर्भूमिकम्पादिभिः किञ्च प्रजा-
शयो भवति तेषां सकाशादपि अधिक उत्पातो दुष्टेष्टितस्य भूपतेः
सकाशाद्भवति । तथा च हारीतः—

उत्पातो भूमिकम्पाद्यः शांतिकैर्याति साम्यतां ।

नृपदुर्घृष्ट उत्पातो न कथंचिदप्रशाम्यति ॥ १ ॥

अथ दुर्विनीतस्य नृपतेर्लक्षणमाह—

यो युक्तायुक्तयोरपिवेकी विपर्यस्तमतिर्वा स दुर्विनीतः ४०

टीका—यो राजा युक्तायुक्तयोर्योग्यायोग्ययोः पदार्थयोः विषयेऽ-
विवेकी विवेकहीनो बुद्ध्या न जानाति, अयोग्यानां प्रसादं करोति,
योग्यानामपमानं करोति स दुर्विनीतः । तथा यो विपर्यस्तमतिर्विप-
रीतबुद्धिर्वा यः शिष्टानामाचारं न मन्यते पापानां करोति स विपर्यस्त-
मतिः । तथा च नारदः—

युक्तायुक्तविषेकं यो न जानाति महीपतिः ।

दुर्घृष्टः स परिक्षेपे यो या याममतिर्भवेत् ॥ ११ ॥

अथ द्रव्यस्य लक्षणमाह—

यत्र मङ्गिगार्धायमाना गुणा संक्रामन्ति तद्द्रव्यं ॥ ४१ ॥

टीका—यत्र यस्मिन् पुरुषद्रव्ये मङ्गि गार्धायमाना निषीज्य
माना गुणा संक्रामन्ति तद्द्रव्यं ॥ ४१ ॥ १ राजा २ कर्मा ३ तथा च
सायुषि

१ न पुनर्मात्रं तु पुनर्मात्रं । २ यत्तु द्रव्यं तत्तु द्रव्यं तत्तु द्रव्यं तत्तु द्रव्यं
दुर्विनीत इति तु पुनर्मात्रं तु । ३ यत्तु द्रव्यं तत्तु द्रव्यं तत्तु द्रव्यं तत्तु द्रव्यं
विपर्ययमतिर्वा स तु-पुनर्मात्रं ।

योज्यमाना उपाध्यायैर्यत्र पुंसि स्थिराश्च ते ।

भयन्ति नरि द्रव्यं तत्प्रोच्यते पार्थिवोचितम् ॥ १ ॥

अथ द्रव्यप्रकृतेर्यदि तदद्रव्यप्रकृतिर्भवति तस्य राजकुलस्य याद-
म्भवति तदाह—

यतो द्रव्यप्रकृतेरप्यस्ति पुरुषः संकीर्णगजवत् ॥ ४२ ॥

टीका—यतः कारणात् द्रव्यप्रकृतेरुत्तमपुरुषस्य सर्वगुणयुक्तस्य
सकाशात् कचित् पुरुषः संकीर्णगजसदृशो भवति मिश्रगुणः । यथा
भद्रमन्दरमृगजात्यो मिश्रगुणो गजः स राजार्हो न भवति तथा सोऽपि
द्रव्यप्रकृतिः पुरुषो द्रव्यप्रकृतिना जातोऽपि । तथा च बल्लभदेवः—

शिष्टारमजो विदग्धोऽपि द्रव्याद्रव्यस्यभाषकः ।

न स्याद्राज्यपदाहोऽर्हो गजो मिश्रगुणो यथा ॥ १ ॥

तथा च गुरु —

यः स्यान् सर्वगुणोपेतो राजद्रव्यं तदुच्यते ।

सर्वकृत्येषु भूपानां तदहं कृत्यमाधनं ॥ १ ॥

अथ द्रव्यभूतस्य पुरुषस्य यद्वति तदाह—

द्रव्यं हि क्रियां विनयति नाद्रव्यं ॥ ४३ ॥

टीका—हि यस्मात्कारणान् यत्पुरुषद्रव्यं भवति तत् क्रियां
राजलक्षणां विनयति भोग्यता नयति । नाद्रव्ये, गुणभूते । तथा
च भागुरि —

गुणादयः पुरुषे कृत्य भूयतीनां प्रमिश्रयति ।

मदभरमाण प्राया निगुणस्य ना लघु ॥ १ ॥

अथ बुद्धिगुणानां लक्षणमाह

मुग्धाश्चरमग्रहणधारणाविज्ञानोदापोदतप्ताभिनिवेना बुद्धि-
गुणाः ॥ ४४ ॥

१ द्रव्यद्रव्यप्रकृतिर्यानि मु-पुनः । २ निविशेयवता इति बुद्धिगुणा,
मु-पु. इत्येव बुद्धिगुणा इति मु-पुनः ।

यस्तुयिद्यामधीत्याथ हितमात्मनि संचयेत् ।

अदितं नाशयेद्विद्यास्ताध्यान्याः ह्येवमताः ॥ १ ॥

अथ राजविद्यानां संज्ञाः संख्याश्चाह—

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिरिति चतस्रो राजविद्याः

आन्वीक्षिकीमभ्यस्यतो राज्ञो यद्भवति तदाह—

अधीयानो आन्वीक्षिकीं कार्योणां बलाग्रलं हेतुमिर्विचार-
यति, व्यमनेषु न विषीदति, नाभ्युदयेन विकार्यते, समधि-
गच्छति प्रज्ञावाच्यैर्वशास्त्रम् ॥ ५६ ॥

टीका—गतार्थमेतत् ।

त्रयीं पठन् वर्णानामेव्यतीव प्रगल्भते, जानाति च समस्ता-
मपि धर्माधर्मस्थितिम् ॥ ५७ ॥

टीका—गतार्थमेतत् । तथा—

युक्तितः प्रवर्तयन् वार्तां सर्वमपि जीवलोकमभिनन्दयति
तमने च स्वयं सर्वानपि कामान् ॥ ५८ ॥

टीका—गतार्थमेतत् । तथा—

यम इवापराधिवृ दण्डप्रणयनेन विद्यमाने राज्ञि न प्रजाः
स्वमयोदामनिक्रामन्ति प्रसीदन्ति च त्रिवर्गकला विभूतयः *
॥ ५९ ॥

टीका—गतार्थमेतत् ।

१ अर्थोदाहरणमिति सु सु-पुष्पकः । २ प्रज्ञावान् सु-पुष्पकः ।

* अत्रादौ “साक्ये वाया आकाशे वाय्वादिनाः । कोदासीनः धृतेः
इतिप्रत्ययान् (आन्वीक्षिकीनाम्) । प्रकृतिपुद्गलज्ञो हि राजा साधनप्रवर्तने ।
इह कल काले च परीक्षति । ममानिर्निभूपन । इवपि वादी मूढादिभि-
पुष्पक मुद्रिपुष्पकश्च वर्तते ।

अथ चतसृणामपि विद्यानां प्रयोजनमाह—

आन्वीक्षिक्यध्यात्मविषये, त्रयी वेदयज्ञादिषु, वार्ता कृषिक-
र्मादिका, दण्डनीतिः साधुपालनदुष्टनिग्रहः ॥ ६० ॥

टीका—गतार्थमेतत् । तथा च गुरुः—

आन्वीक्षिक्यध्यात्मविमाने धर्माधर्मौ त्रयीस्थितौ ।

अर्थानर्थौ तु वार्तायां दण्डनीत्यां नयानर्था ॥ १ ॥

अथ राजा यथा विद्यां जानाति तथाह—

चेतयते च विद्यावृद्धसेवायाम् ॥ ६१ ॥

वृद्धशब्देन धर्मशास्त्राणि प्रोच्यन्ते, न बलिपलितमाजः । तथा च
नारदः—

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ।

यो र्षं युषाप्यधीयानस्तं देवाः स्वयिरं विदुः ॥ १ ॥

अथ राजाऽज्ञातविद्यावृद्धसंयोगो यथा भवति तथाह—

अज्ञातविद्यावृद्धसंयोगो हि राजा निरंकुशो गज इव सद्यो
विनश्यति ॥ ६२ ॥

टीका—यो राजा अज्ञातवृद्धसेवी भवति स निरंकुश टन्मार्गगामी
भवति सतोऽकुशरहितो गज इव सद्यः शीघ्रं विनश्यति । तस्माद्राज्ञा
विद्या ज्ञातव्या वृद्धाश्च सेवनीयाः । तथा चार्पिपुत्रः—

यो विद्यां वेत्ति नो राजा वृद्धार्द्रयोपसेवते ।

स शीघ्रं नाशमाप्सति निरंकुश इव द्विपः ॥ १ ॥

अथ राज्ञो विशिष्टमन्त्रेण यद्वधति तदाह—

अनधीयानोऽपि विशिष्टजनसंसर्गात्परां व्युत्पत्तिम-
वाप्नोति ॥ ६३ ॥

टीका—अनधीयानोऽप्यपठन्नपि विद्याः शिष्टजनसेवनात्परां व्युत्प-
त्तिमवाप्नोति उत्तमं विवेकं लभते जानातीत्यर्थः । तथा च व्यासः—

विवेकी साधुसङ्गेन जडोऽपि हि प्रजायते ।

चन्द्रांशुसेवनाभूतं यद्वच्च कुमुदाकरः ॥ १ ॥

अथ भूपस्य साधुसंगाद्व्रवति तदाह—

अन्यैव कांचित्खलु छायोपजलतरूणाम् ॥ ६४ ॥

टीका—उप-समीपे जलस्य, स्थितानां तरूणां काचिदपूर्वा छाया
कान्तिर्भवति । तथा च बल्लभदेवः—

अन्यापि जायते शोभा भूपस्यापि जडात्मनः ।

साधुसंगादि धृक्षस्य सलिलादूरवर्तिनः ॥ १ ॥

अथ राज्ञा यादृशा उपाध्याया भवन्ति तानाह—

वैश्वृत्तविद्याभिजनविशुद्धा हि राज्ञामुपाध्यायाः ॥ ६५ ॥

टीका—राज्ञां भूपतीना उपाध्याया गुरवः कीदृशा भवन्ति योग्या
वंशवृत्तविद्याभिजनशुद्धाः, वंशोद्भवाः स्ववंशे पूर्वेषां ये पाठकाः, क्रमागता
इत्यर्थः । तथा वृत्तशब्देन चारित्र्यमभिधीयते । तथा विद्याधिकाः ।
तथाभिजनशब्देन कुलीनता प्रोक्ष्यते स्ववंशेऽपि ये जारचौतशा न
भवन्ति ते भूपतीना विद्याविगमे योग्याः । तथा नारदः—

पूर्वेषां पाठका येषां पूर्वजा वृत्तसंयुक्ताः ।

विद्याकुलीनतायुक्ता नृपाणां गुरवश्च ते ॥ १ ॥

अथ शिष्टानां प्रणतस्य नृपतेर्व्रवति तदाह—

१ अनधीयानोऽप्यनधीक्षिणी विशिष्टः इत्यादि पाठान्तरं मु-पुस्तके ।

२ काचिदिति पाठः मु-मू-पुस्तके नास्ति ।

शिष्टानां नीचैराचरन्नरपतिरिहलोके स्वर्गे च महीयते ॥ ६६ ॥

टीका—(यो नरपतिः शिष्टानां नीचैराचरन् इह लोके) माहात्म्यम-
प्नोति स्वर्गेऽपि देवैः पूज्यते । तथा च हारीतः—

माधुषूजापरो राजा माहात्म्यं प्राप्य भूतले ।
स्थानगतस्ततो दयैरिन्द्राद्यैरपि पूज्यते ॥ १ ॥

अथ राजा यादृशो भवति तदाह—

राजा हि परमं देवतं नासां कस्मैचित्प्रणमत्यन्यत्र गुरुज-
नेभ्यः ॥ ६७ ॥

टीका—योऽसौ राजा न किञ्चिद्विदुः ! परमं देवतं कर्तारमित्यर्थः ।
तेन कस्यचिज्जघतां न गण्टानि । अन्यत्र गुरुजनेभ्यः पूज्यान् मुक्त्वा
मातृपितृपूर्वकान् । तथा च भृगुः—

अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य यमस्य घटणस्य च
तेजसास्य नृपस्तेन कस्यचिन्न नर्ति प्रजेत् ॥ १ ॥

अथाशिष्टमकाशाद्विद्याया यद्भवति तदाह—

चरमज्ञानं नाशिष्टजनसेवया विद्या ॥ ६८ ॥

टीका—यं प्रधानमज्ञानं मूर्खत्वं नाशिष्टजनसेवया दुर्जनमुश्रूयया
विद्याया आप्तिः । तथा च हारीतः—

परं जनस्य मूर्खस्य नाशिष्टजनसेवया ।
पांडित्यं यस्य संसर्गात् पापात्मा जायते नृपः ॥ १ ॥

अथ शिष्टसंगाद्यंमाह—

अलं तेनामृतेन यत्राम्बि विपसंमर्गः ॥ ६९ ॥

१ विधेर्विधिः भु मू पुस्तकः । २ रिह परत्र च महीयते मु-पुस्तके, पर-
लोके इति भू-पुस्तके पाठः । ३ कस्य पाठ कश्चित्, । ४ परं देव भू-
पुस्तके टीकायां च ५ देवगुरुजनेभ्य भू-पुस्तके

टीका—अलं पर्याप्ते तिष्ठतु तदमृतं, यत्रास्ति विषममार्गः । काञ्चूट-
मध्यगतं । एतदुक्तं भवति, अमृतमपि काञ्चूटमिश्रं मारयति, विना
यामृतमपि काञ्चूटलक्षणाप्यपन्नान्नं (!) तद्विरुद्धिन् पार्थ कर्तव्यं
येन मृत्युमवाप्नोति । तथा च नारदः—

नास्तिकानां मतं शिष्यः पीयूषमिव मन्यते ।

दुःप्रायदं परे लोके नो चेद्विषमिव स्मृता (तम्) ॥ १ ॥

अथ गुरुणा शिष्या यादृशा भवन्ति तानाह—

गुरुजनशीलमनुसरन्ति प्रायेण शिष्याः ॥ ७० ॥

टीका—ये शिष्याभ्यात्रा भवन्ति ते प्रायेण बाहुल्येन गुरुणां
शीलमनुसरन्ति तेन व्यवहरन्ति तस्मात् सुशीला गुरवः कार्याः । तथा
च वर्गः—

यादृशान् सेवते मर्त्यस्तादृक्चेष्टा प्रजायते ।

यादृशं स्पृशते देशं वायुस्तद्रन्ध्रमाचहेत् ॥ १ ॥

अथ सुकुलशीलगुरुसेवनाद्यद्भवति तदाह—

नवेषु मृद्भाजनेषु लग्नः संस्कारो ब्रह्मणाप्यन्यथा कर्तुं न
शक्यते ॥ ७१ ॥

टीका—शुभो वा यदि वा निकृष्टः तस्मात्सुमतिरुपाध्यायः कार्यः ।
तथा च वर्गः ।

कुविद्या वा सुविद्यां वा प्रथम यः पठेन्नरः ।

तथा हस्त्यानि कुर्वाणो न कथंचिन्निरर्तते ॥ १ ॥

अथ राजा स्वल्पज्ञानो यथा भवति तदाह—

अन्ध इव वरं परप्रणयो राजा न ज्ञानलवदुर्विदग्धः ॥ ७२ ॥

टीका—वरं श्रेष्ठं ज्ञान्यन्धो राजा अन्येन नीयमानः कुमारो नै गच्छति परप्रणयो यतः । यः पुनः ज्ञानलवः स्तोत्रं जानाति न प्रभूतं न दुर्निदग्धो भवति विदग्धतां न धेसि नित्यं पादुष्यविषये विपर्ययमाचरन्नुन्मार्गेण गच्छति, अन्यायी भवतीत्यर्थः । तथा च गुरुः—

मंत्रिभिर्मन्त्रकुक्षैरन्धः संचार्यते नृप ।

कुमार्गेण न न याति स्यल्पज्ञानस्तु गच्छति ॥ ८ ॥

अथ दुर्विदग्धस्य राज्ञो यद्भवति तदाह—

नीलीरक्ते वसु इव को नाम दुर्विदग्धे गति रागान्तर-
माधने ॥ ७३ ॥

टीका—अहो को नाम जनो दुर्बिदये दुर्बलिते भूषाये ज्ञानउवाचये
 रोगान्तरमन्यभावं तस्य कर्तुं समर्थः, अपि तु न कश्चित् । करिमतिव !
 नीलीरक्ते वस्त्र इव, यथा नीलीवस्त्रे नान्यो लभते (गणैः) न तु
 दत्तसारथिभुं शक्यते तथा भूपर्यापि । तथा च नारदः—

दुर्दिग्धस्य भूपर्य भायः शक्येत नाभ्यधा ।

पत्तुं धर्णोऽत्र यद्वक्ष्ये नीलीरक्तस्य पादस्य ॥ १ ॥

अथ यथार्थवादिनां सिद्धिर्वा यद्भवति तदाह—

यथार्थवादो विदूषां श्रेयस्करो यदि न राजा गुणप्रदोऽपि । ७४।

टीका—यदि न राजा गुणान् द्वेष्टि निन्दति तदा स्यार्थवादः सुदु-
र्घनानि पलायन्यपि मुखावहानि तद्दिदृशा पण्डितानां शेषमङ्गानि तस्य
[ज्ञो भवन्ति] । कि. १ यदि न स्यात् यदि राजा गुणान्-ता न भवति
गुणशाली भवति । तथा च राजा ।

अथऋकाराणि यावदात्मनः सूरजानि यथाधत्त ।

विष्णुर्ह्यसि भूषाणा गुणद्वयं न गच्छत्यतः ।

६ आन्वीक्षिकी-समुद्देशः ।

अथाध्यात्मयोगालक्षणमाह—

आत्ममनोमरुतत्वसमंतायोगलक्षणो अध्यात्मयोगः ॥ १ ॥

टीका—आत्मा चिद्रूपः, मनः प्रसिद्धः, मरुतः शरीरस्था वायवः, तत्त्वं पृथिव्यादि तेषां समं एकहेतुया समतालक्षणः स हि सुन्दरं अध्यात्मयोगः कथ्यते । तथा चरित्रपुत्रकः—

आत्मा मनो मरुतसत्त्वं सर्वेषां समता यदा ।

तदा त्वध्यात्मयोगः स्वाध्यासां ज्ञानदः स्मृतः ॥ १ ॥

तथा च श्यामः—

न पद्मासनतो योगो न च नास्ताप्रवीक्षणान् ।

मनसश्चेन्द्रियाणां च संपोगो योग उच्यते ॥ १ ॥

अथ अध्यात्मज्ञस्य राज्ञो यद्वचति तदाह—

अध्यात्मज्ञो हि राजा सहजशरीरमानसागन्तुभिर्दोषैर्न बाध्यते ॥ २ ॥

टीका—यो राजाध्यात्मज्ञो भवति, तस्य किं स्यात्, एतेन दोषचतुष्टयेन स राजा न बाध्यते नाधिष्यते । केन केन तावत् सहजेन सत्त्वमुक्त्वा रजसा तमसा च, कथित् प्रकृत्या राजसो भवति, कथित्तामसः, कथित्दुःख्या महित् स्यात्, स तमसा न बाध्यते । तथा शरीरमाद्ये दोषा रोगमम्भवनं गण्टादयः । तथा मानमाद्ये दोषाः परकः वादवस्तीरपि न बाध्यते । तथा गन्तुकेर्भावित्तिरि न बाध्यते । तच्च नारदः—

अध्यात्मज्ञो हि महीपालो न दोषः परिभूयते ।

सहजागन्तुकंश्चापि शारीरेर्मानसैस्तथा ॥ १ ॥

अथात्मनः क्रीडास्थानान्याह—

इन्द्रियाणि मनो विषया ज्ञानं भोगायतनमित्यात्मारामः ॥ ३ ॥

टीका—(इन्द्रियाणि मनो विषया ज्ञानं) भोगायतनं विलासस्थानं,
एतैः सर्वैरासमन्ताद्रमते इत्यारामः क्रीडां करोतित्यर्थः । तथा च
विभिटीकः—

इन्द्रियाणि मनो ज्ञानं विषया भोग एव च ।

विश्वरूपस्य चैतानि क्रीडास्थानानि कृत्स्नशः ॥ १ ॥

अथात्मनः स्वरूपमाह—

यत्राहमित्यनुपचरितप्रत्ययः स आत्मा ॥ ४ ॥

टीका—यस्य स्वरूपं न निश्चीयते यथेवं तर्हि आत्मना स प्रत्ययो
न ज्ञायते “ किं वा शुक्लः किं वा नील इति ” स आत्मा ? तथा च
श्रुतिः—

“ यथा महाराजनं वासो यथा यांद्वाविकं यथेन्द्रगोपो-
न्निर्यथा पुण्डरीकं यथा सकृद्विद्युत्तेवं भया स्युर्ध्रीर्भवति”

अथात्मनः प्रतिप्रार्थमाह—

असत्यात्मनः प्रेत्यभावे विदुषां विफलं खलु सर्वमनुष्ठा-
नम् ॥ ५ ॥

टीका—अत्र नास्तिका अप्येव वदन्ति आत्मा नास्तीति । तथा ।
आत्मनः प्रेत्यभावो न भवति प्रेत्यभावशब्देनाहप्रत्ययोऽभिधीयते स यदि
न भवति तदेतेषां दीक्षितानां खलु निश्चयेन विफलं व्यर्थं सर्वमनुष्ठानं

१ इत्यात्माराम इति पाठो लिखितमुद्रितमूलपुस्तकद्वयान् संयोजितः ।
२ कसस्यः पाठः कल्पितः । ३ यस्मिन् मुख्यपदं तु ह्यहमिच्छावानहमिच्छानु-
पचरिताहप्रत्यय आत्मप्राप्ती प्रतिप्राप्तिसंविदितरूपो भवति स आत्मा ।—मार्तण्डे

स्नानदानजपहोमार्थिकं, तदेवं न भवति,^१ आत्मास्येव । तथा च याज्ञवल्क्यः ।

आत्मा सर्वस्य लोकस्य सर्वं भुक्तं द्रुमानुमं ।

मृतस्यान्यत्समासाद्य स्वकर्मादं करोष्वरम् ॥ १ ॥

अथ मनःस्वरूपमाह—

यतः स्मृतिः प्रत्यवमर्षणमृहापोहनं शिक्षालापक्रियाग्रहणं च भवति तन्मनः ॥ ६ ॥

टीका—यतो यस्मात्स्मृतिर्भवति मयेतत्कार्यं कृतं करिष्यते वा । तथा प्रत्यवमर्षणं चिन्ता । तपोहापोहनं, ऊहा मदिग्धस्य पर्यालोचनं, अपोहस्तस्य निधयः । शिक्षालापग्रहणं यदि कश्चिद्विदुषां ददाति, अपवात्मान्धारं करोति तस्य यद्ग्रहणमवधारणं तन्मनो भवति । तथा च गुरुः—

ऊहापोही तथा चिन्ता परालापवधारणं ।

यतः संजायते पुंसां तन्मनः परिबीर्जितम् ॥ १ ॥

अथेन्द्रियाणां स्वरूपमाह—

आत्मनो विषयानुभवनद्वागणीन्द्रियाणि ॥ ७ ॥

टीका—विषयाणामनुभवनं विषयानुभवनं विषयसेवनं तदिन्द्रिय-
द्वारेण सहाध्येनात्मनो भवति । तथा च रैभ्यः—

इन्द्रियाणि निजान् प्राप्यविषयाव नृपृथक्पृथक् ।

आत्मन नृप्रयच्छन्ति सुभूत्याः सुप्रभाष्यया ॥ १ ॥

अथ विषयाणां महामाह

शब्दस्पर्शरसगन्धगन्धा हि विषयाः ॥ ८ ॥

१ आत्माभावे । २ यतः । ३ अर्थात् । ४ अर्थात् । ५ अर्थात् । ६ अर्थात् । ७ अर्थात् । ८ अर्थात् । ९ अर्थात् । १० अर्थात् । ११ अर्थात् । १२ अर्थात् । १३ अर्थात् । १४ अर्थात् । १५ अर्थात् । १६ अर्थात् । १७ अर्थात् । १८ अर्थात् । १९ अर्थात् । २० अर्थात् । २१ अर्थात् । २२ अर्थात् । २३ अर्थात् । २४ अर्थात् । २५ अर्थात् । २६ अर्थात् । २७ अर्थात् । २८ अर्थात् । २९ अर्थात् । ३० अर्थात् । ३१ अर्थात् । ३२ अर्थात् । ३३ अर्थात् । ३४ अर्थात् । ३५ अर्थात् । ३६ अर्थात् । ३७ अर्थात् । ३८ अर्थात् । ३९ अर्थात् । ४० अर्थात् । ४१ अर्थात् । ४२ अर्थात् । ४३ अर्थात् । ४४ अर्थात् । ४५ अर्थात् । ४६ अर्थात् । ४७ अर्थात् । ४८ अर्थात् । ४९ अर्थात् । ५० अर्थात् । ५१ अर्थात् । ५२ अर्थात् । ५३ अर्थात् । ५४ अर्थात् । ५५ अर्थात् । ५६ अर्थात् । ५७ अर्थात् । ५८ अर्थात् । ५९ अर्थात् । ६० अर्थात् । ६१ अर्थात् । ६२ अर्थात् । ६३ अर्थात् । ६४ अर्थात् । ६५ अर्थात् । ६६ अर्थात् । ६७ अर्थात् । ६८ अर्थात् । ६९ अर्थात् । ७० अर्थात् । ७१ अर्थात् । ७२ अर्थात् । ७३ अर्थात् । ७४ अर्थात् । ७५ अर्थात् । ७६ अर्थात् । ७७ अर्थात् । ७८ अर्थात् । ७९ अर्थात् । ८० अर्थात् । ८१ अर्थात् । ८२ अर्थात् । ८३ अर्थात् । ८४ अर्थात् । ८५ अर्थात् । ८६ अर्थात् । ८७ अर्थात् । ८८ अर्थात् । ८९ अर्थात् । ९० अर्थात् । ९१ अर्थात् । ९२ अर्थात् । ९३ अर्थात् । ९४ अर्थात् । ९५ अर्थात् । ९६ अर्थात् । ९७ अर्थात् । ९८ अर्थात् । ९९ अर्थात् । १०० अर्थात् ।

साधुमध्ये भवति तदभिमानमुष्यते द्वितीयं सुखकारणं । तथा च नारदः—

सत्कारपूर्वो यो लाभः स स्तोकोऽपि सुग्राह्यः ।

अभिमानं ततो घटे साधुलोकस्य मध्यतः ॥ १ ॥

अथ सम्प्रत्ययलक्षणमाह—

अतद्गुणे वस्तुनि तद्गुणत्वेनाभिनिवेशः सम्प्रत्ययः ॥ १२ ॥

टीका—अतद्गुणे वस्तुनि निर्गुणे पदार्थे तद्गुणत्वेनाभिनिवेशः

स्वशक्त्या गुणप्रतिष्ठाया सम्प्रत्यय उच्यते तृतीयं सुखकारणं । एतदुक्तं भवति श्रोत्रेण एतदर्थं सुन्दरं, एतदसुन्दरं । तथा त्वचा एतन्मृदुरे-
तकटोरं । तथा इष्टया एतद्भक्ष्यमेतदभक्ष्यं । तथा निन्दयैतन्मधुरमेत-
त्कटुकं । तथा प्राणैर्नैतन्सुगन्धमेतद्दुर्गन्धमिति । तथा च नारदः—

परोक्षो यो भवेदर्थः स ह्ययोऽत्र समाधिना ।

प्रत्यक्षधेन्द्रियैः सर्वैर्निजगोचरमागतः ॥ १ ॥

अथ सुखस्य लक्षणमाह—

सुखं प्रीतिः ॥ १३ ॥

टीका—यत्र मनस इन्द्रियाणां प्रीतिगानन्दो भवति तत्सुखं । तथा

च हासितः—

मनसश्चेन्द्रियाणां च यत्रानन्दः प्रजायते ।

दृष्टे या भक्षिते यापि तत्सुखं सम्प्रकीर्तितम् ॥ १ ॥

अधामुखस्यापि स्वस्वमाह—

तत्सुखमप्यसुखं यत्र नास्ति मनोनिवृत्तिः ॥ १४ ॥

टीका—नास्ति सुखं लोकावा पुत्रकलत्रपुत्रसन्ध्यायमनुष्य भवति तत्र

यस्मिन् पुत्रे मनसा वैराग्य भवति कलत्रे वा, पुत्रे वा, पान्ये वा
तत्सुखमपि दुःखं भवति । तथा च वा—

समृद्धस्यापि मर्त्यस्य मनो यदि विरागशक्तः ।
दुःखी स परिश्रेयो मनस्तुष्ट्या सुखं यतः ॥ १ ॥

अथ सुखस्य कारणान्याह ।

अभ्यासाभिमानसंप्रत्ययविषयाः सुखस्य कारणानि ॥ १५ ॥

टीका—एतानि चत्वारि नरस्य सुखकारणानि । एकं तावदभ्या-
सो यः स्वकर्मणः । तथाभिमानं अभि-समन्तात्मानं सम्मानं तदाज्ञादीनां
संकाशात् । तथा सम्प्रत्ययः सम्प्रत्ययशब्देनात्मनः प्रतिष्ठाकारणमुच्यते,
अयोग्यमपि । विषया प्रमिद्धास्तेषां सेवने । तत्र तावदभ्यासस्य सुख-
कारणमुच्यते—

अभ्यासाच्च भवेद्विद्या तथा च निजकर्मणः ।
तथा पूजाभ्यासोऽपि तस्याः क्वात्सर्वदा सुखी ॥ १ ॥

अथ मानस्य—

सम्मानपूर्वको ह्यम एव कोकोऽपि सुखायह ।
मानदीनः प्रभूतोऽपि शाशुमिर्न प्रदाहयते ॥ १ ॥

अथ विषयः—

मेयनं विषयाणां यत्नमिदं सुखकारणं ।
अमिदं च पुनस्तेषां शारिष्ट्यकारणं परं ॥ १ ॥

तथा च हासितः—

अविद्याऽपि शृणुतात्मार्थे. क्वदाकदा यः प्रतिष्ठयेत् ।
तन्मूर्च्छं ज्ञायत तस्य क्वप्रतिष्ठानमुद्विगम् ॥ १ ॥

अथ विषयभक्त्यानाह—

इन्द्रियमनस्तेषां भासो विषयः ॥ १६ ॥

१ इन्द्रियमनस्तेषां भासो विषयः ॥ १६ ॥ २ अविद्याऽपि शृणुतात्मार्थे. क्वदाकदा यः प्रतिष्ठयेत् ।
तन्मूर्च्छं ज्ञायत तस्य क्वप्रतिष्ठानमुद्विगम् ॥ १ ॥ ३ अथ विषयभक्त्यानाह—

टीका—येन भावेन कृतेनेन्द्रियाणां सर्पणं भवति मनसश्च तृप्तिर्भवति
स भावो विषय उच्यते । तच्चतुर्थं मुखकारणं । तथा च शुक्रः—

मनसश्चेन्द्रियाणां च सन्तोषो येन जायते ।

स भावो विषयः प्रोक्तः प्राणिनां सौख्यदायकः ॥ १ ॥

अथ दुःखस्य लक्षणमाह—

दुःखमप्रीतिः ॥ १७ ॥

टीका—यस्मिन् वस्तुनि दृष्टे आच्छादिते वाऽप्रीतिर्वैराग्यं भवति
तद्दुःखमभिधीयते श्रेष्ठेऽपि च वस्तुनि । तथा च शुक्रः—

यत्र नो जायते प्रीतिर्दृष्टे वाच्छादितेऽपि वा ।

तच्छ्रेष्ठमपि दुःखाय प्राणिनां सम्प्रजायते ॥ १ ॥

अथ सुखस्य लक्षणमाह—

तद्दुःखमपि न दुःखं यत्र न संश्लिष्यते मनः ॥ १८ ॥

टीका—यत्र यस्मिन् पदार्थे दृष्टे वा मृते वा मनसः क्लेशः न भवति
तद्दुःखमपि अदुःखमेव ।

..... ।

कथं कारणेद्वयाधिः स नश्यति विनीषधं ॥ १ ॥

अथ चतुर्विधस्य दुःखस्य स्वरूपमाह—

दुःखं चतुर्विधं सहजं दोषजमागन्तुकमन्तरंगं चेति ॥ १९ ॥

टीका—एतस्य चतुर्विधस्य दुःखस्याचार्येणापि व्याख्या कृता ।

सहजं धुनृषामनोभूभवं चेति ॥ २० ॥

दोषजं वातपित्तकफवैषम्यसम्भूतं ॥ २१ ॥

आगन्तुकं वर्षातपादिजनितं ॥ २२ ॥

(यच्चिन्त्यते दरिद्रैर्न्यकारजं । न्यकारोऽपराधचौर्यादिको यः तेन कदाचिद्व्यत्यते कदाचिद्विध्यते स तं ?)*

न्यकारावज्ञेच्छाविधातादिसमुत्थमन्तरङ्गजम् ॥ २३ ॥

टीका—गतार्थमेतत् ।

अथ पुरुषस्य यथा लोकद्वयनाशो भवति तदाह—

न तस्यैहिकामुष्मिकं च फलमस्ति यः क्लेशायासाभ्यां भवति विष्टवप्रकृतिः ॥ २४ ॥

टीका—क्लेशः कष्टं, आयासः खेदः, ताभ्यां यः पुरुषो विष्टवप्रकृतिर्नष्टमतिर्भवति । तत्र कापि नास्ति न विद्यते किं तत् फलं । किंविशिष्टं ? ऐहिकमिहजन्मभवं तयामुत्रिकं वा पारलौकिकं । तथा च व्यासः—

जीयते क्लेशखेदाभ्यां सदा फाणुरूपोऽत्र यः ।

न तस्य मर्त्ये यो लाभः कुतः स्वर्गसमुद्भवः ॥ १ ॥

सुवंशस्य पुरुषस्य माहात्म्यमाह—

स किं पुरुषो यस्य महाभियोगे सुवंशधनुष इव नाधिकं जायते बलम् ॥ २५ ॥

टीका—यस्य पुरुषस्य महाभियोगे आपत्काले अधिकं बलं पौरुषं न जायते स पुरुषः स्त्रीति मन्तव्यः । कस्येव ? सुवंशधनुष इव । एतदुक्तं भवति—यमुवंशधनुर्भवति तस्य शराक्षेपकाले दृढता भवति कुवंशजस्य पुनः शिथिलता । तथा च गुरुः—

युद्धकाले सुयुद्धयानां धीर्योत्कर्षः प्रजायते ।

येषां च धीर्येदानीः स्यात्तेऽत्र ज्ञेया ननुसक्ताः ॥ १ ॥

* इमस्यः गृध्रादः गदपादश्च केवलं टीका-पुस्तके वर्तते न हायते इयमयं पाठो मध्ये पठितः ।

अपाभिलाषस्य स्वरूपमाह—

आगामिक्रियाहेतुरभिलापो चेच्छा ॥ २६ ॥

टीका—आगामिक्रिया भविष्यत्कृत्य तस्य हेतुः कारणमभिलाषः कथ्यते, वा विकल्पेनेच्छा वेति । तथा च गुरुः—

मायिहृत्यस्य यो हेतुरभिलाष स उच्यते ।

इच्छा या तस्य सन्धा या मयेत्प्राणिनां सदा ॥ १ ॥

अपात्मनः प्रत्यवायेषु यत्पुरुषेण कर्तव्यं तदाह—

आत्मनः प्रत्यवायेभ्यः प्रत्यावर्तनहेतुर्द्वेषोऽनभिलापो वा २७

टीका—आत्मनः सकाशात् यं प्रत्यवाया दोषा भवन्ति तेषां प्रत्यावर्तनं व्याधोदनं तस्य हेतुः कारणं द्वेषो जुगुप्साऽनभिलापो वा बोध्या वा । तथा च गुरुः—

आत्मनो यदि दोषा स्युस्ते निघा विधुर्धर्जनैः ।

अथवा नैव कर्तव्या यादृशा तेषां कदान्वन ॥ १ ॥

अयोत्साहस्य स्वरूपमाह—

हिताहितप्राप्तिपरिहारहेतुरुत्साहः ॥ २८ ॥

टीका—यस्मिन् कर्मणि क्रियमाणे हितस्याभीष्टस्य प्राप्तिर्भवति । तथाहितस्यानिष्टस्य परिहारस्स्यागो भवति स उत्साहो हृदयानन्दः कथ्यते । तथा च वर्ग —

शुभातिर्यत्र कलश्या जायते पापयज्ञं तम् ।

हृदयस्य पगं तुष्टिः स उत्साहः प्रकाशितः ॥ १ ॥

अथ प्रयत्नस्य स्वरूपमाह—

प्रयत्नः परनिमित्तको भावः ॥ २९ ॥

टीका—परार्थेऽन्वहने यो भावधित मयास्मिन् दवः, कर्तव्यमिति स प्रयत्नः । तथा च वर्गमाह—

परस्य करणीये यश्चित्तं निश्चित्य धार्यते ।

प्रयत्नः स च विशेषो गर्गस्य वचनं यथा ॥ १ ॥

अथ संस्कारस्य स्वरूपमाह—

सातिशयलाभः संस्कारः ॥ ३० ॥

टीका—यः सातिशयः सातिरेको लाभो भवति जनानृपतेर्वा

स संस्कारः प्रतिष्ठासंज्ञः । अत्रापि गर्गः—

सन्मानाद्भूमिपालस्य यो लाभः संप्रजायते ।

महाजनाच्च सद्भक्तेः प्रतिष्ठा तस्य सा भवेत् ॥ १ ॥

अथ शरीरस्य स्वरूपमाह—

भोगायतनं शरीरम् ॥ ३१ ॥

टीका—भुज्यन्ते इति भोगाः शुभाशुभाः तेषामायतनं गृहमेतच्छ-

रीरं । तथा च हारीतः—

सुखदुःखानि यान्यत्र कीर्त्यन्ते धरणीतले ।

तेषां गृहं शरीरं तु यतः कर्माणि सेवते ॥ १ ॥

अथ लोकायतिकस्य स्वरूपमाह—

ऐहिकव्यवहारप्रसाधनपरं लोकायतिकम् ॥ ३२ ॥

टीका—यद्दोकायत नास्तिकदर्शनं तदनुष्ठानं च । तत्किं विशिष्टं ?

ऐहिकव्यवहारप्रसाधनं केवलं मयमासखीसेवानिमित्तं न परमार्थं । तथा च गुरुः—

अग्निहोत्रं त्रयो वेदाः प्रबुद्ध्या नम्रमुण्डता ।

बुद्धिर्षास्पर्शनानां जीवितेऽदो मतं गुरुः ॥ १ ॥

अथ भूपतेर्लोकायतिकशास्त्रस्य यद्भवति तदाह—

लोकायतनो हि राजा राष्ट्रकण्टकानुच्छेदयति ॥ ३३ ॥

टीका—किञ्च लोकायतै निषिद्धं साधूना यतस्तेन ज्ञातेन निर्दयता भवति तथापि राज्ञा बोद्धव्यं यतस्तेन ज्ञातेन जारचौरमर्षाशमेदकानामुपरि निर्दयत्वं करोति राष्ट्रशेमाय । तथा च शुक्रः—

दृष्ट्वां करोति यो राजा राष्ट्रसन्तापकारिणः ।

स राज्यसंशमाप्नोति राष्ट्रोच्छेदादिगंशार्थं ॥ १ ॥

अधैकान्तत्वदूषणमाह—

न स्वत्वेकान्ततो यतीनामप्यनवद्यास्ति क्रिया ॥ ३४ ॥

टीका—यतीनामपि संन्यस्तानामपि एकान्ततो नैरन्तर्येण क्रियमाणं क्रिया नानवद्या, अपि तु साध्यपश्चादाय तेषामपि क्रियावसानमस्ति । तथा च वर्गः—

भयवद्या सदा तायद्य स्वत्वेकान्ततः क्रिया ।

यतीनामपि विद्येन तेषामपि यतःक्रियुर्ग ॥ १ ॥

अधैकान्तेन कारुण्यपरस्य यद्भवति तदाह—

एकान्तेन कारुण्यपरः करतलगतमप्यर्थं रक्षितुं न क्षमः ॥ ३५ ॥

टीका—एकान्तेन नैरन्तर्येण यो राजा कारुण्यपरो दयापरो भवति स हस्तगतमपि वित्तं रक्षितुं न क्षमः । तथा च शुक्रः—

दया साधुषु कर्तव्या मोदमानेषु जगत्तुषु ।

भसाधुषु दया शुक्रः स्वचित्तादपि क्षययति ॥ १ ॥

अथ प्रशमैकचित्तस्य भूपतेर्यद्भवति तदाह—

प्रशमैकचित्तं को नाम न परिभवति ॥ ३६ ॥

टीका—केवलमक्रांशो यः २ चित्तवर्गः न तथामूलं को नामाहो न परिभवति । अपि तु सर्वेष्ववज्ञया तदर्थः । तथा च शुक्रः—

तदा तु क्षान्तचित्तस्य पुरुषः सर्वप्रजायतः ।

तस्य भवति न तदासीत्यर्थः । तथा च शुक्रः—

दायैव ददितो राजा दीनरूप्यभिभूयते ।

महमरातिर्यथानमिर्निःशंकः स्फुरयतेऽरिभिः ॥ १ ॥

अथ धर्मप्रतिष्ठायाः—

वृत्तापमपि न पापं यत्र महान् धर्मानुबन्धः ॥ ४१ ॥

टीका—यत्र धर्मिन् पापे कृते परिणामे महान् धर्मानुबन्धो भवति धर्मप्रतिभवंति तत्र पापं, पापमपि स धर्मः, किञ्च बन्धवन्धादिभिः पापं भवति परं तेषां निग्रहे कृते यथातः स एव धर्मः । तथा च बादरायणः—

त्यजेद्दं कुलस्याप्ये प्रामस्याप्ये कुलं त्यजेत् ।

ग्रामं जनपदस्याप्ये ग्रामार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥ १ ॥

पापार्थं निग्रहे राजा परं धर्ममवाप्नुयात् ।

न तेषां च बन्धवन्धाद्यैस्तस्य पापं प्रजायते ॥ २ ॥

अथ गणो दुष्टनिग्रहमकुर्वाणस्य यद्भवति तदाह—

अन्यथा पुनर्नरकाय राज्यम् ॥ ४२ ॥

टीका—अन्यथा पुनर्वर्तमानस्य दुष्टानां निग्रहमकुर्वाणस्य तदेव राज्यद्वारेण नरकम् । तथा च हारीतः—

यौगदिभिर्जनां यस्य मैथिल्येन प्रपीडयते ।

स्वयं तु नरकं याति स राजा मात्र संशयः ॥ १ ॥

अथ नियोगिनो यद्भवति तदाह—

बन्धनान्तो नियोगः ॥ ४३ ॥

टीका—योऽसौ नियोगे गताश्रितः स बन्धनान्तो बन्धनादासी-
भवति । तथा च गुरुः

न जग्म मृग्युता बाह्यं नार्थं नु पतनं विना ।

न नियोगकृत्युतां योगो नाधिकाराऽस्त्यबन्धन ॥ १ ॥

अथ सन्धैव्यायद्भवति तदाह—

टीका—यासौ गामैसी दुर्जनसङ्गतिः सा विदग्धा व्यसनदायिनी भवति । तथा च बहुभेदः—

अमलसंगात्पराभूतिं याति पूर्योऽपि मानवः ।

लोहसंगाद्यतो यदिहताग्नौ तु घनैर्धनैः ॥ १ ॥

अथ स्त्रीषु विधामे कृते यद्व्यति तत्तद—

मरणान्तः स्त्रीषु विधामः ॥ ४५ ॥

टीका—स्त्रीषु विधये योऽगो विधामः स मृत्युवर्षणो भवति । तथा च विष्णुधामा

जीवमानः स्वतन्त्रेण सागः पीतदृष्टिकोऽग्रणीम् ।

श्रीलां मुष्णमाकृष्यति तद्वर्णं तस्य जीवितम् ॥ १ ॥

इत्याम्नीतिः कोवमुद्राः ।

७ त्रयी-समुद्देशः ।

अथ त्रय्याः स्वरूपमाह—

चत्वारो वेदाः, शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो
ज्योतिरिति षट्ज्ञानीतिहासपुराणमीमांसान्यायधर्मशास्त्रमिति
चतुर्दशविद्यास्थानानि त्रयी ॥ १ ॥
गतार्थमेतत् ।

अथ त्रयीतो यज्ज्ञापते तदाह—

त्रयीतः रतु वर्णाधमाणां धर्माधर्मज्यवस्या ॥ २ ॥

टीका—त्रयीतः सकाशात् वर्णा ब्राह्मणक्षत्रियविद्वज्ज्ञाः, आधमा
ब्रह्मचारिगृहस्थश्रमप्रस्थपत्यस्तोत्रा ये आचारा व्यवहारा धर्माधर्मलक्षणा-
स्तोत्रा वा व्यवस्थितिः सा ज्ञापते इति । तथा च शुक्रः—

मन्याद्याः कृतयो पात्रा ज्ञप्यद्विताः प्रकीर्तिताः ।
वर्णाधमाणांमाचारकृतागु धर्माश्च केवलं ॥ १ ॥

अन्यदपि त्रयीना यद्वचति तदाह—

स्वपशानुगमप्रवृत्त्या सर्वे समवायिनो लोकज्यवहारेष्वधि-
क्रियन्ते ॥ ३ ॥

टीका—यज्ज्ञास्त्रयीतः सकाशात् सर्वे समवायिनो जिज्ञिनः शैव-
बौद्धकोलनास्तिका स्वपशानुगमप्रवृत्त्या निजदर्शनमतिमवनाल्लोक-
ज्यवहारेष्वधिक्रियन्त मध्य धानामागममनुभवन्ति । नान्य दर्शनधर्मं कुर्व-
न्ति । तथा च शुक्रः—

परदर्शनलिङ्गं च यत्र लिङ्गी समाधायन् ।
वेदो तत्र दि दोगाः रयुः स च स्याति दीरघम् ॥ १ ॥

मीमांसा—१

अथ स्मृतिवेदानां लक्षणमाह—

धर्मशास्त्राणि स्मृतयो वेदार्थसंग्रहाद्वेदा एव ॥ ४ ॥

टीका—यानि धर्मशास्त्राणि स्मृतयः प्रोच्यन्ते ताभिर्वेदार्थसंग्रह-
कार्यस्तस्मात्ता वेदा एव ज्ञातव्या एवं निश्चयः । तथा च गुरुः—

दुर्बोधांश्चरणान् ज्ञात्वा मन्दबुद्धिरेव यत् ।

तेषामर्थं समादाय मुनिभिः स्मृतयः कृताः ॥ १ ॥

अथ विप्रक्षत्रियवैश्यानां धर्मः प्रोच्यते—

अध्ययनं यजनं दानं च विप्रक्षत्रियवैश्यानां समानो
धर्मः ॥ ५ ॥

टीका—विप्रादीनां त्रयाणां वर्णानां अध्ययनं वेदानां यजनमग्निष्टो-
मादिकं, स्वशक्त्या दानं सामान्यं तुल्यं त्रिभिरपि कर्तव्यम् । तथा च
हारीतः—

वेदाभ्यासस्तथा यज्ञाः स्वशक्त्या दानमेव च ।

विप्रक्षत्रियवैश्यानां धर्मः साधारणः स्मृतः ॥ १ ॥

अथ क्षत्रियवैश्यानामपि ब्राह्मण्यं यद्ववति तदाह—

त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ ६ ॥

टीका—यत्क्षत्रियवैश्ययोरपि ब्राह्मण्यमुक्तं तत्पूर्वस्तत्रापेक्षया न तु
जात्या, यदि पुनः क्षत्रियो वैश्यो वा ब्राह्मणो भवति तदा श्रुतिस्मृतीनाम
प्रमाणता भवति तत्कथमुक्तमाचार्येण यतस्तेनैतदुक्तं अध्ययनं यजनं दानं
ब्राह्मणक्षत्रियविशां समानो धर्मः, एतदर्थमुक्तं, स्वाध्यायो यजनं दानं
विप्रवैश्यनरात्रिपैः कर्तव्यं ब्राह्मणेन तु याजनाध्यापनार्जनम् ।

अथ ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यवादां केवलं ब्राह्मणानां यत् भवति तदाह—
अध्यापनं याजनं प्रतिग्रहो ब्राह्मणानामेव ॥ ७ ॥

टीका—ब्राह्मणानामयं विशेषो यदध्यापनं कुर्वन्ति तथा याजनं
यजमानानां तथा च प्रतिग्रहमपि, एतत् कर्मत्रयं न क्षत्रियवैश्यानां,
ब्राह्मणस्य पूर्वमाणि । तथा च हारीतः—

यजनं याजनं चैव पठनं पाठनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहोपेतं पूर्वमाणि द्विजन्मनां ॥ १ ॥

अथ क्षत्रियाणां यत्कर्म भवति तदाह—

भूतसंरक्षणं शस्त्राजीवनं सत्पुरुषोपकारो दीनोद्धरणं रणेऽप्य-
लायनं चेति क्षत्रियाणाम् ॥ ८ ॥

(भूतानां प्राणिनां संरक्षणं, शस्त्रेणाजीवनं, सत्पुरुषाणां सज्जनानां
उपकारः) दीना अन्धर्गुरोमिपूर्वकास्तेषामुद्धरणं निर्वाहणं यथा भवति
तथा कार्यमिति क्षत्रियाणां धर्मः । तथा च पाराशरः—

क्षत्रियेण मृगाः पाल्याः शस्त्रहस्तेन निष्पशः ।
अनाथोद्धरणं कार्यं साधूनां च प्रपूजितम् ॥ १ ॥

अथ वैश्यधर्ममाह—

वार्ताजीवनमावेजिकपूजनं मन्त्रप्रपापुण्यागमदयादानादिनि-
र्माणं च विशाम् ॥ ९ ॥

टीका—वैश्यानां नावज्ञानाजीवनं वार्ताशब्देन कृषिकर्मपशुपालन-
पूर्वकं कर्म प्रोच्यते । तथावेजिकपूजनमवपद यज्ञ इति । तथा मन्त्रप्रपा-
पुण्यागमदयादौ नादिकर्माणि—मन्त्र नि शान्तदानं स्वगत्तया, तथा प्रपा

१ पशुवार्ताजीवनं वैश्यानामिवेश रूपं मूत्र मूत्रिक-पुत्रिके । २ सर्वेषां
जिनां दुःखादिभ्यताममयप्रदानं । ३ अन्नप्रदानरूपान् ।

जलदानं, पुण्यं धर्मक्रिया, आरामः पुण्यादिसंजनना एतेषां धर्माणां करणं । तथा च शुकः—

कृषिकर्म गद्यारक्षा यज्ञाद्यं दम्भवर्जितम् ।

पुण्यानि सत्रपूर्वाणि वैश्यवृत्तिरुदाहृता ॥ १ ॥

अथ शूद्रकर्माण्याह—

त्रिवर्णोपजीवनं कारुकुशीलवकर्म पुण्यपुटवाहनं च
शूद्राणां ॥ १० ॥

टीका—त्रिवर्णा ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तेषामुपजीवने शुश्रूषा । कारु-
शब्देन नीचतमाः प्रजाः कथ्यन्ते तेषां कर्म । कुशीलवा नर्तकादय-
श्चारणास्तेषां कर्म कार्य । तथा पुण्यपुटवाहनं पुण्यपुटका भिक्षुका-
स्तेषामुपसेवने शूद्रैः कार्यम् । तथा च पाराशरः—

घर्णत्रयस्य शुश्रूषा नीचन्यारणकर्म च ।

भिक्षूणां सेवनं पुण्यं शूद्राणां न विरुद्ध्यते ॥ १ ॥

अथ शूद्रा यादृशा भवन्ति तदाह—

सकृत्परिणयनव्यवहाराः सच्छूद्राः ॥ ११ ॥

टीका—ये सच्छूद्राः शोभनशूद्रा भवन्ति ते सकृत्परिणयना एक-
वारं कृतविवाहाः, द्वितीयं न कुर्वन्तीत्यर्थः । तथा च हारीतः

द्विमार्यो योऽत्र शूद्रः स्यादुपलब्धः स दि विद्युतः ।

महस्यं तस्य नो भाषि शूद्रजातिसमुद्भवः ॥ १ ॥

अथ शूद्रोऽपि देवद्विजजानां शुश्रूषाया योग्यो यथा भवति तयाह—

आचारानवद्यत्वं शुचिरुपस्कारः शरीरी च विशुद्धिः करोति
शूद्रमपि देवद्विजतपस्विपरिकर्मसु योग्यम् ॥ १२ ॥

टीका—यः शूद्रोऽपि स देवद्विजतपस्विशुश्रूषायोग्यः, यस्य किं
शूद्रस्याचारानवद्यत्वं व्यवहारनिर्वाप्यता, तथोपस्वगे गृहयात्रागुरावः

स शुचिर्निर्मलः, तथा शरीरशुद्धिर्वस्य प्रायश्चित्तेन कृतासीत्
एपापि गूढं करोति, किंविशिष्टं ! देवद्विजतदस्विभक्तियोग्यं । तथा च
चारायणः—

शृणुपात्राणि शुद्धानि व्यवहारः सुनिर्मलः ।
कायशुद्धिः करोत्येष योग्यं देवादिपूजने ॥ १ ॥

अथ सर्वेषां वर्णानां यः समानो धर्मस्तमाह—

आनृशंस्यममृषाभाषित्वं परस्वनिवृत्तिरिच्छानियमः प्रति-
लोमाविवाहो निषिद्धासु च स्त्रीषु ब्रह्मचर्यमिति सर्वेषां समानो
धर्मः ॥ १३ ॥

टीका—आनृशंस्यममृषाभाषित्वं सत्यवादिता, परस्वनि-
वृत्तिरन्यायेन परार्थग्रहणं, इच्छानियमः स्नेच्छाप्रवृत्तिव्रतं, प्रतिलोमावि-
वाहः स्वजानिसम्बन्धः, निषिद्धासु च स्त्रीष्वसतीषु विषये ब्रह्मचर्य-
मिति समानस्तुल्यो धर्मः सर्वेषां वर्णानां । तथा च भागुरिः—

दयां सत्यमचौर्यं च नियमः स्वविवाहकम् ।
असतीवर्जनं कार्यं धर्मे सर्वैः स्तिरीरतां ॥ १ ॥

अथ मूयोऽपि तुल्यधर्मे कृते विशेषमाह—

आदित्यावलोकनवन् धर्मः खलु सर्वमाधारणो विशेषानु-
ष्ठाने तु नियमः ॥ १४ ॥

टीका—य एव पूर्वोक्त सर्वेषां वर्णानां तुल्यो धर्मः सर्वमाधा-
रणस्तुल्यो निधयेन । कथं ? आदित्यावलोकनवन् यथा आदित्य सर्वे-
र्धप्राप्त्यनैरपि दृश्यते, तथैव धर्मः सर्वैरपि कार्यः । तथा विशेषानुष्ठाने
नियमः परं विशेषानुष्ठानं यद्वर्णानां तत्र नियमः । तत्र कार्यं पूर्वे-
स्मीयमनुष्ठानं यदुक्तं तत्कार्यमन्यत् । तथा च नारदः—

यस्य वर्णस्य यत्प्रोक्तमनुष्ठानं महर्षिभिः ।

तत्कर्तव्यं विशेषोऽयं तुल्यधर्मो न केवलं ॥ १ ॥

अथ यतीनां यः स्वो धर्मस्तमाह—

निजागमोक्तमनुष्ठानं यतीनां स्वो धर्मः ॥ १५ ॥

टीका—यतीनां लिङ्गिनां निजागमोक्तमनुष्ठानं कृत्यं यस्य धर्मः

आत्मीय इति । तथा च चारायणः—

स्वागमोक्तमनुष्ठानं यत्स धर्मो निजः स्मृतः ।

लिङ्गिनामेव सर्वेषां योऽन्यः सोऽधर्मलक्षणः ॥ १ ॥

अथ यतीनां परमागमानुष्ठानेन यद्ववति तदाह—

स्वधर्मव्यतिक्रमेण यतीनां स्वागमोक्तं प्रायश्चित्तम् ॥ १६ ॥

टीका—निजदर्शनव्यतिक्रमेण धर्मविलोमतया सर्वेषां लिङ्गिनामा-

त्मीयागमे यदुक्तं प्रायश्चित्तं भवति । तथा च वर्गः—

स्वदर्शनविरोधेन यो धर्माधर्ममाचरेत् ।

स्वागमोक्तं भवेत्तस्य प्रायश्चित्तं विशुद्ध्ये ॥ १ ॥

अथाभीष्टदेवप्रतिष्ठापनमाह—

यो यस्य देवस्य भवेच्छ्रद्धावान् स तं देवं प्रतिष्ठापयेत् ॥ १७ ॥

टीका—यः पुरुषो यस्य देवस्य श्रद्धावान् स तं देवं प्रतिष्ठापयेत् ।

तथा च भागुरिः—

यस्योपरि भवेद्भक्तिर्विबुधस्य नृणामिह ।

स देवस्तैः प्रतिष्ठाप्यो नान्यः स्याच्छ्रेयसे यतः ॥ १ ॥

अथाभक्त्या पूजितो देवो यत्करोति तदाह—

अभक्त्या पूजोपचारः सद्यः शापाय ॥ १८ ॥

टीका—भार्त्तिकं विना कृतोपचारः कृतपूजितविधानो देवः सद्यः

तत्क्षणात् शापायानिष्टप्रदो भवति । तथा च बादरायणः—

अमलपा पूजितो देवस्तत्तमणे विप्रमाचरेत् ।

तस्माच्छृद्ध्यासमोपेतैः पूज्यो भक्त्या..... ॥ १ ॥

अथ सर्वोन्नमवर्णानां यद्वक्त्या प्रापक्षितविशुद्धिर्भवति तदाह—

वर्णाभ्रमाणां स्वाचारप्रच्यवने प्रयीतो विशुद्धिः ॥ १९ ॥

टीका—वर्णा ब्राह्मणक्षत्रियविद्वद्भ्यः, आश्रमा मक्षचारिगृहस्थ-
वानप्रस्थपतयस्तेषामेकतमस्यापि प्रच्यवने ज्यान्यादिकविनाशो जाते
प्रयीतो वेदप्रयोक्तवचनेनात् विशुद्धिर्भवति वेदोक्तप्रापक्षिते कृते । तथा
च चारायणः—

वर्णाभ्रमाणां नाशो तु जाते जातिपूर्वके ।

वेदत्रयोलकयाक्येन तेषां शुद्धिः प्रजायते ॥ १ ॥

अथ प्रजानां भूपतेश्च त्रिवर्गप्राप्तिर्यथा भवति तथाह—

स्वधर्मासंकरः प्रजानां राजानं त्रिवर्गेणोपसन्धत्ते ॥ २० ॥

टीका—असंकरोऽत्रिवर्गः, केया ? स्वधर्माणा । कासा ? प्रजानां ।
उपसन्धत्ते नियोजयति । कः राजानं । केन त्रिवर्गेण धर्माधिकामशब्देन ।
तथा च नारदः—

न भूपाद्यत्र देशे तु प्रजानां वर्णसंकरः ।

तत्र धर्मोर्ध्वकामं च भूपतेः सम्प्रजायते ॥ १ ॥

अथ राज्ञो राजन्वं यथा न भवति तदाह—

म किं राजा यो न रक्षति प्रजाः ॥ २१ ॥

टीका—म किं राजा कुम्भितो राजा, म किंविशिष्टः स्यात् ? यो न
रक्षति पाटयति का प्रजा लोकान् । तथा च व्यासः—

यो न राजा प्रजा सम्यग्भोगामकः प्ररक्षति ।

स राजा नैव राजा स्यात् स च कारुर्यः स्मृतः ॥ १ ॥

अथ स्वधर्ममतिक्रामतां पार्थिवो गुरुस्त्विह—

स्वधर्ममतिक्रामतां सर्वेषां पार्थिवो गुरुः ॥ २२ ॥

टीका—स्वधर्ममतिक्रामतां परित्यजतां सर्वेषां वर्णाश्रमाणां पार्थिवो गुरु राजा निषेधयिता यथोचितधर्मेण । तथा च भृगुः—

उन्मेत्तं यथा नाम महामन्तो निवारयेत् ।

उन्मार्गेण प्रगच्छन्तं तद्वच्चैव जनं नृपः ॥ १ ॥

अथ पार्थिवस्य धर्मं परिपालयतो यद्व्रजति तदाह—

परिपालको हि राजा सर्वेषां धर्मपट्टांशमवाप्नोति ॥ २३ ॥

टीका—यो राजा धर्मविप्लवं रक्षति स सर्वेषां वर्णाश्रमाणां धर्मस्य पट्टांशं प्राप्नोति । तथा च मनुः—

वर्णाश्रमाणां यो धर्मं नश्यन्तं च प्ररक्षति ।

पट्टांशं तस्य धर्मस्य स प्राप्नोति न संशयः ॥ १ ॥

अथ भूयोऽपि राज्ञः परिपालनविषये प्राह—

उच्छृणुष्वङ्गागप्रदानेन तपस्विनोऽपि राजानं संमार्चयन्ति । २४।

टीका—ये तपस्विनो वनवासिनो भवन्ति शिरोऽञ्जल्युपा जीवन्ति तेऽपि यद्भागं भूपतेः प्रयच्छन्ति, कस्मात् ! यतस्तेऽपि शिरोऽञ्जल्युपा कुर्वाणाः सुश्रमजीवानां स्वेदजानां वधे कुर्वन्ति ततः यद्भागं स्वधर्मस्य भूपतेः प्रयच्छन्ति तेन च तेषां स दोषो न भवति एवं तेषां यदुग-
प्रदानं तेन भूपते रक्षा भवति । तथा च पाराशरः—

यद्भागं योऽत्र गृह्णाति कर्षुकीणां तपस्विनाम् ।

तात्र पालयते यश्च स तेषां पापभागमयेत् ॥ १ ॥

१ गत्र । २ इतिवद् । (मदावनेति) ३ “ उच्छृणुष्वङ्गागप्रदाने ” पर्वणार-
ण्यारिषु प्रतिनिवेदनस्वामिहानिरिनेषु भूभागेषु यद्गीतमस्येषु क्षेत्रेषु अग्निहोत्र-
आद्येषु यत्र यत्र कर्णोपलब्धिः स्वात्तत्र तत्र कर्णशममुत्पन्नं उच्छृणुष्व-
ङ्गागप्रदानेन । ४ वधंयन्ति ।

अथ स्नातेन यत्कर्तव्यं तदाह—

स्नात्वा प्राग्देवोपासनान्न कंचन स्पृशेत् ॥ २८ ॥

टीका—स्नानं कृत्वा गृहस्थेनाभीष्टं मुक्त्वा नान्यत्किञ्चित्प्रष्टव्यं यतोऽनिष्टस्पर्शनात् श्रेयो नश्यति । तथा वर्गः—

स्नात्वा स्वभ्यर्चयेद्देवान् ध्यानरमतः परं ।

ततो दानं यथाशक्त्या दत्त्वा भोजनमाचरेत् ॥ १ ॥

अथ देवाश्रयगतेन गृहस्थेन यत्कर्तव्यं तदाह—

देवागारे गतः सर्वान् यतीनात्मसम्बन्धिनीर्जरीः पश्येत् ॥ २९ ॥

टीका—देवागारं देवायतनं तत्र गतो गृहस्थस्तत्रस्थान् सर्वान् यतीन् स्तापसान् पश्येत् प्रणमेदित्यर्थः । आत्मसम्बन्धिनीर्यां जरतांर्द्धात्रियस्ताः प्रणमेत् । तथा च हारीतः—

देवायतने गत्वा सर्वान् पश्येत् स्वमकितः ।

तत्राश्रितान् यतीन् पश्चात्ततो वृद्धाः कुलस्त्रियः ॥१॥

देवाकारोपेतः पापाणोऽपि नाबमन्येत तत्किं पुनर्मनुष्यैः, राजशासनस्य मृत्तिकायामिव लिङ्गिषु को नाम विचारो यतः स्वयं मलिनो खलः प्रवर्धयत्येव क्षीरं धेनूनां, न खलु परेषामाचारः स्वस्य पुण्यमारभते किन्तु मनोविशुद्धिः ॥ ३० ॥

गतार्थमेतत् ।

अथ विप्रादीनां स्वभावमाह—

दीना प्रकृतिः प्रायेण ब्राह्मणानाम् ॥ ३१ ॥

बलात्कारस्वभावः क्षत्रियाणाम् ॥ ३२ ॥

१ यतः देवाकारे प्रापितः पापाणोऽपि नाबमन्यते जनैः इति शेषः किं पुनर्मनुष्यो अबमन्तव्य इति वक्तव्यमपि तु नेत्यर्थः । २ राजाज्ञायाः मृत्तिकायामिव ।

निसर्गतः शाठ्यं किरातानाम् ॥ ३३ ॥

क्रुवक्रशीलता सहजा कृपीबलानाम् ॥ ३४ ॥

गतार्थमेतत् ।

अथ विप्रादीनां यथा कोपोपशमो भवति तथाह—

दानावसानः कोपो ब्राह्मणानाम् ॥ ३५ ॥

प्रणामावसानः कोपो गुरुणाम् ॥ ३६ ॥

प्राणावसानः कोपो क्षत्रियाणाम् ॥ ३७ ॥

प्रियवचनावसानः कोपो षणिगजनानाम् ॥ ३८ ॥

विश्वस्तः सह व्यवहारो षणिजां निधिः ॥ ३९ ॥

टीका—ब्राह्मणानां यः कोपः स दानावसानः प्रमुपितस्यापि विप्रस्य यदि भोजनाय कोपार्हं किञ्चित्प्रदीयते तस्य कोपो विनश्यति । तथा च गर्तः—

सूर्योदये यथा मार्गं तमः नद्यः प्रयागपलम् ।

तथा दानेन लब्धस्य कोपो विप्रस्य गच्छति ॥ १ ॥

दुर्जने गुरुतं यद्वाक्यं याति च सर्वस्य ।

तद्वत्कोपो गुरुणां स प्रणामेन प्रणश्यति ॥ २ ॥

उत्तुम्बकपायानां च यद्वाक्यं प्रणश्यति ।

फालेन सदितं तद्वत्कोपो भूपस्य तात्त्वमा ॥ ३ ॥

यथा प्रियेण हृदये नश्यति इवाधिर्ययोगजः ।

प्रियापापेन तद्वद्विजा नश्यति भूयः ॥ ४ ॥

विश्वस्तमिन्निवर्तीत्यप्यवहारस्तु यो भवेत् ।

षणिजां स निधिः प्रोक्तः शुद्धदममयो यदा ॥ ५ ॥

य च बलभदेवः—

हे मानेऽर्भाहृद्यानिज्य मार्गिणं पश्यतोऽष्टिम् ।

निशेवा कयमिषा च विजिजा निधयाऽत्र यदा ॥ ६ ॥

पूर्णा पूर्णमाने परिचितजनक्रयो मिथ्या ।
 घणिगजनो विक्रोदीशः कुरुते नात्र संदेहः ॥ २ ॥
 निक्षेपे गृहपतिते श्रेष्ठी स्तीर्तातीष्टदेवतां नित्यं ।
 निक्षेपोऽसौ म्रियते तुभ्यं दास्यामि चामीष्टं ॥ ३ ॥
 गोष्ठिकर्मणि युक्तः श्रेष्ठी चिन्तयति चेतसा हृष्टः ।
 वसुधा वसुसम्पूर्णा मयाद्य लब्धा किमन्येन ॥ ४ ॥
 पण्यानां गांधिकं पण्यं किमन्यैः काञ्चनादिभिः ।
 श्रेष्ठा प्रोवाच पुत्राणां यत्रैकेन शते भवेत् ॥ ५ ॥

अथ वैश्यानां यथा कोपोपशमो भवति तथाह—

वैश्यानां समुद्धारकप्रदानेन कोपोपशमः ॥ ४० ॥

टीका—वैश्यानां कर्षकाणां उद्धारकदानं कोपोपशमाय । तथा

च मृगुः—

अपि चेतर्पात्रको घैरो विशां कोपं प्रजायते ।

उद्धारकप्रलाभेन निःशेषो विलस्यं प्रजेत् ॥ १ ॥

अथ नीचजात्यानां यथा कोपोपशमो भवति तदाह—

दण्डभयोपधिभिर्वशीकरणं नीचजात्यानाम् ॥ ४१ ॥

टीका—नीचजात्यानां चतुर्वर्ण्यधिःस्थितानां रजकादीनां कोपो-

पशमाय, किं ! वशीकरणं दण्डभयं रौद्रभयं । तथा च गर्गः—

सर्वेषां नीचजात्यानां पापघ्नो दर्शयेद्भयं ।

तावन्तो यशमायान्ति दर्शनीयं ततो भयम् ॥ १ ॥

इति त्रयोनमुद्देशः ।

८ वार्ता-समुद्देशः ।



अथ वार्तासमुद्देशो लिख्यते तत्रादावेव वार्तास्वरूपमाह—

कृपिः पशुपालन वणिज्या च वार्ता वैश्यानाम् ॥ १ ॥

टीका—यत्कृषिकर्म तथा पशुपालनं च वणिज्या च वणिजिक्रिया सा वार्ता कथ्यते । गतार्थमेतत् ।

अथ वार्ताया वृद्धिं गतायां राज्ञो देशे यद्वचति तदाह—

वार्तासमृद्धौ सर्वाः समृद्धयो राज्ञः ॥ २ ॥

टीका—यत्र राष्ट्रे कृषिकर्म प्रवर्तते शारदम्रम्भिकं तथा पशवः चतुष्पादायाः पुष्टिं यान्ति न चौरादिभिः हिन्यन्ते । तथा वणिजा व्यवहारो विघ्नरहितः प्रवर्तते तत्र भूपतेर्हस्त्यदवहिरण्यादिकमसंख्यं भवति तस्य भावात्सर्वाः समृद्धयो धर्मार्थकामलक्षणा भवन्ति । तथा च शुकः—

एषिद्वयं वणिज्याश्च यस्य राष्ट्रे भवन्त्यमी ।

धर्मार्थकामा भूपस्य तस्य स्युः संख्यया विना ॥ ३ ॥

अथ गृहस्यस्य संसारमुखं यथा भवति तथाह—

तस्य खलु संसारमुखं यस्य कृषिर्धेनवः शाकवाटः सघ्न्युद-
पानं च ॥ ३ ॥

टीका—तस्य गृहस्यस्य खलु निधयेन मुखं भवति । यस्य किं, यस्य गृहे सदैव कृषिकर्म क्रियते तथा धेनवो महिष्यो भवन्ति शाकवाटो व्यञ्जनार्थं भवन्ति तथा उदपानं कृषिका स्यात् । तथा च शुकः—

कृषिगोशाकवाटाश्च जलाधयसमन्विताः ।

गृहे यस्य भवन्त्येते स्वर्गलोकेन तस्य किम् ॥ ४ ॥

अथ विसाध्यराज्ञो यद्व्रवति तदाह—

विसाध्यराज्ञस्तंत्रपोषणे नियोगिनामुत्सवो महान् कोश-
क्षयः ॥ ४ ॥

टीका—यो राजा तंत्रपोषणे नित्यं विसाधनं करोति तस्य नियो-
गिनां कर्माधिष्ठितानां महानुत्सवं वृद्धापनकं भवति यतस्ते वित्तं भक्ष-
यन्ति तस्य राज्ञः पुनः कोशक्षयो भवति । तथा च नारदः—

ग्रीष्मे शरदि यो नाश्रं संगृह्णाति महीपतिः ।

नित्यं मूल्येन गृह्णाति तस्य कोशक्षयो भवेत् ॥ १ ॥

अथ तस्य भूपतेर्नित्यं व्ययेनागतिं विना यथा कोशक्षयो भवति
तदाह—

नित्यं हिरण्यव्ययेन मेरुरपि क्षीयते ॥ ५ ॥

टीका—यो नित्यं व्ययं करोति न किंचिदुपार्जयति तस्य सुमहा-
नपि कोशः शनैः शनैः क्षयं याति । आस्तां तावत्कोशो मेरुरपि नित्यं
हिरण्यव्ययेन स्वरूपेणापि क्षयं याति तस्मादायानुसूपो व्ययः कार्यः ।
तथा च शुकः—

आगमे यस्य चत्वारि निर्गमे सार्धपंचमः ।

स दरिद्रत्यमाप्नोति विसेशोऽपि स्वयं यदि ॥ १ ॥

अथ राज्ञो विसार्धनव्ययस्य यद्व्रवति तदाह—

तत्र सदैव दुर्मिश्रं यत्र राजा विमार्धयति ॥ ६ ॥

टीका—यत्र राजा नित्यमेवान्नं विसाधयति तत्र सदैव दुर्मिश्रं
यतः प्रभूतेनान्नं तत्र पोषणं भवति ततो दुर्मिश्रं जायते तस्माद्दु-
सुखा प्रभूतो धान्यमप्रदः कार्यः । तथा च नारदः—

दुर्भिक्षेऽपि समुत्पन्ने यत्र राजा प्रयच्छति ।

निजार्घ्येण निजं सस्यं तदा लोको न पीडयते ॥ १ ॥

अथ राज्ञोऽर्घ्यतुष्टेर्वद्भवति तदाह—

समुद्रस्य पिपासायां कुतो जगति जलानि ॥ ७ ॥

टीका—एतत् किञ्च श्रूयते समुद्रे नवनदीशतः सह गंगा प्रविशति
तथा सिन्धुश्च । एवं सोऽष्टादशभिः शतैर्नदीनां गतपिपासो न
भवति यदा तु तस्याभ्यधिका वृद्ध भवति तदा कुतोऽन्यानि (अन्यत्र)
जलानि विद्यन्ते तदर्थः । एवं राज्ञापि यदा तु पद्भगाभ्यधिको वृष्टिः
करोति तदा कुतो राष्ट्रे वित्तानि तदर्थेण राष्ट्रे प्रणश्यति ततो राज्यं
च । तथा च शुकः—

पद्भगाभ्यधिको दण्डो यस्य राज्ञः प्रतुष्टये ।

तस्य राष्ट्रं क्षयं याति राज्यं च तदनन्तरम् ॥ १ ॥

अथ राज्ञः स्वयं जीवधनमपश्यतो यद्भवति तदाह—

स्वयं जीवधनमपश्यतो महती हानिर्भनस्तापश्च क्षुत्पिपासा-
प्रतीकारात्पापं च ॥ ८ ॥

टीका—जीवधनशब्देन गोमहिष्यादिकं कथ्यते । तत्क्षयमपश्यतः
स्वामिनो महती हानिर्भवति तथा मृतेर्भनस्तापो भवति तेषां सुमुखा-
पिपासाप्रतीकारात् तस्य पापं भवति ततः स्वामिना जीवधने स्वयं
निरीक्षणीयः । तथा च शुकः—

क्षतुष्पदादिकं सर्वं स स्वयं यो न पश्यति ।

तस्य तदाशमभ्येति ततः पापमयामुवान् ॥ १ ॥

अथ स्वामिना यः कर्तव्यः तदाह—

वृद्धबालव्याधितर्हीणान् यशन् बान्धवानिव पोषयेत् ॥ ९ ॥

टीका—वृद्धाननाथान्, बालान् मातृपितृविहीनान्, व्याधिप्रस्तान्-
शरणान् तथा क्षीणान् दुर्बलान् पशून् दृष्ट्वा सुबान्धवानि च पोषयेत्
स्वर्गार्ये । तथा च व्यासः—

अनाथान् विकलान् दीनान् क्षुत्परीतान् पशूनपि ।

दयावान् पोषयेद्यस्तु स स्वर्गे मोदते चिरम् ॥ १ ॥

अथ पशूनामकालमरणं यथा भवति तदाह—

अतिमारो महान् मार्गश्च पशूनामकाले मरणकारणम् ॥ १० ॥

टीका—पशूना वृषाश्वगजानां योऽसौ प्रभूतो मारः प्रभूतमार्ग-
गमनं च अकालेऽप्रस्तावेऽवेलायां तेषां मृत्युकारणं मृत्युसमयः । तथा
च हारीतः—

अतिमारो महान् मार्गः पशूनां मृत्युकारणं ।

तस्मादर्हभावेन मार्गेणापि प्रयोजयेत् ॥ १ ॥

अथ देशान्तराद्भाण्डानि यथा नागच्छन्ति तदाह—

शुल्कवृद्धिर्बलात्पण्यग्रहणं च देशान्तरभाण्डानामप्रवेशे
हेतुः ॥ ११ ॥

टीका—यत्र स्थाने शुल्कवृद्धिः प्रभूतदानग्रहणं तथा च बलात्कारे-
णात्पण्यं दत्त्वा भांडं गृह्यते तत्र भाण्डं देशान्तरान्न प्रविशति ।
तथा च शुक्रः—

यत्र गृह्णन्ति शुल्कानि पुरुषा भूपयोजिताः ।

अर्थहार्ति च कुर्वन्ति तत्र नायाति विक्रया ॥ १ ॥

भूयोऽपि भाण्डं नागच्छति तन्निर्दर्शनमाह—

काष्ठपात्र्यामेकदैव पदार्थो रक्ष्यते ॥ १२ ॥

टीका—काष्ठपात्रां काष्ठदण्डिका या भवति तस्यामेकः पदार्थो
रक्ष्यते न द्वितीयः । एवं यत्र स्थानेऽधिकं शुल्कं गृह्यते । तथा बला-

त्कारणार्थहानिः क्रियते राजपुरैस्तत्र भाण्डविक्रेता भूयो न स आग-
च्छति । तथा च शुक्रः—

शुल्कवृद्धिर्भवेद्यत्र बलाम्बुख्यं निपात्यते ।

स्यमेऽपि तत्र न स्थाने प्रविदोद् भाण्डविक्रयी ॥ १ ॥

अथ स्थाने व्यवहारदूषणं यथा भवति तदाह—

तुलामानयोरव्यवस्था व्यवहारं दूषयति ॥ १३ ॥

टीका—तुला प्रसिद्धा, मानं कुण्डवादि तयोरव्यवस्था अपयो-
चितकरणं, गुरुत्पुत्रेण यत्र पाणिज्यं करोति तत्र व्यवहारः साधूनां
नश्यति । तथा च बर्गः—

गुरुत्वं च लघुत्वं च तुलामानसमुद्भवम् ।

द्विप्रकारं भवेद्यत्र पाणिज्यं तत्र नो भवेत् ॥ १ ॥

अथ पाणिग्जनकृतस्पर्धस्य यद्भवति तदाह—

पाणिग्जनकृतोऽर्थः स्थितानागन्तुकान् पीडयति ॥ १४ ॥

टीका—स्थितान् तत्स्थाननिवासिनः आगन्तुकान् यतोऽप्यगतान्
सर्वान् पीडयति निर्भान् करोति । कोऽसौ ! अर्थः । किंविशिष्टः ! पाणि-
ग्जनकृतः । यथैवं तर्हि किं क्रियते देशकालभांडापेक्षया नृपपंचकुल-
कृतोऽन्यस्थानामागन्तुकानां निरपवादो भवति । तथा च हारीतः—

पाणिग्जनकृतो योऽर्थोऽनुज्ञातश्च नियोगिभिः ।

भूपस्य पीडयेत्सोऽत्र तत्स्थानागन्तुकानपि ॥ १ ॥

अथ अर्थविपये नियममाह—

देशकालभांडापेक्षया यो वाऽर्थो भवेत् ॥ १५ ॥

टीका—देशापेक्षया तत्र देशे तस्य भाण्डस्योत्पत्तिर्जाता न वेति,
कालशब्देनाव समय. कथ्यते स ज्ञेय, अत्र समये चास्य

प्रवेशो देशान्तराज्जातो न वेति एषा देशकालापेक्षया अनया वार्थ-
साम्यता ।

अथ पण्यतुलामानविषये वणिग्जनस्य भूमुजा यत् कृत्यं तदाह—
पण्यतुलामानवृद्धौ राजा स्वयं जागृयात् ॥ १६ ॥

टीका—पण्यशब्देन भांडविषयेन कथ्यते (!) । तत्र वणिजो वि-
कृतिं कुर्वन्ति स्वल्पमूल्ये तत्सदृशं भांडं मिश्रतां नयन्ति । तथा तुलाद्वयं
कुर्वन्ति मानद्वयं च तत्सर्वं राजा तेषां बोद्धव्यं । तथा च शुकः—

भाण्डसंगात्तुलामानाद्धीनाधिक्याद्वणिग्जनाः ।

यंचयन्ति जनं मुग्धं तद्विक्षेपं महीभुजा ॥ १ ॥

अथ भूमुजा वणिग्जनस्य यतः सावधानो न भवितव्यं तदर्थमाह—
न वणिग्भ्यः सन्ति परे पश्यतो हराः ॥ १७ ॥

टीका—वणिग्भ्यः, किराटेभ्यः, परे अन्ये न सन्ति न विद्यन्ते, के
ते ! पश्यतो हराध्वीराः । ये सत्यध्वीरा भवन्ति ते परोक्षं हरन्ति एते पुनः
किराटाध्वीराः प्रत्यक्षं प्रेक्षमाणस्य कूटमानतुलामिष्याक्रियादिभिर्हरन्ति ।
तथा च बल्लभो देवः—

मानेन किञ्चिन्मूल्येन किञ्चि—

तुलयापि किञ्चित्कलयापि किञ्चित् ।

किञ्चिच्च किञ्चिच्च गृहीतुकामाः

प्रत्यक्षर्चारा वणिजो नराणां ॥ १ ॥

अथ स्पर्धया परस्परं यत्र किराटा मूल्यवृद्धिं कुर्वन्ति तदाह—

स्पर्धया मूल्यवृद्धिर्भांडेषु राज्ञो यथोचितं मूल्यं विक्रेतुः ॥ १८ ॥

टीका—यत्र भाण्डे विक्रयार्थमागता वणिग्जनाः स्पर्धयाधिकं मूल्यं
कुर्वन्ति तत्र प्रसिद्धमूल्यार्थव्यधिकं भवति सद्रूपतेः प्रसिद्धमूल्यं च
विक्रेतुः । तथा च दारोतः—

स्पर्धया विदितो मूल्यो भाण्डस्याप्यधिकं च यत् ।

मूल्यं भवति तद्भाण्डो विक्रेतुर्धर्ममानकम् ॥ १ ॥

अथाल्पमूल्येन भाण्डं गृह्णतो यद्वदति तदाह—

अल्पद्रव्येण महामाण्डं गृह्णतो मूल्याविनाशेन तद्भाण्डं
राशः ॥ १९ ॥

टीका—महामाण्डमुत्तमं यस्तु चीराद्यैर्मुग्धैर्वा स्वल्पमूल्येन यत्तं
तद्भाण्डं भूषस्य भवति परं यन्मूल्यं केनचिदत्तं तस्याविनाशः, कोऽप्यं ।
तत्तस्य देयमित्यर्थः । तथा च नारदः—

भाण्डं चीरादिभिर्दत्तं मुग्धैर्बाल्यधनेन यत् ।

तद्भाण्डं भूषतेः कृत्स्नं गृहीतुर्मूल्यमेष च ॥ १ ॥

अथान्यायमुपेक्षमाणस्य नृपतेर्यद्वदति तदाह—

अन्यायोपेक्षा सर्वं विनाशयति ॥ २० ॥

टीका—यो राजान्यायान् वर्तमानान् उपेक्षतेऽन्यायकारिणा निग्रहं
न करोति तस्य सर्वं राज्यं विनश्यति । तथा च शुक्रः—

अन्यायान् भूमिपो यत्र न निषेधयति क्षमी ।

तस्य राज्यं क्षयं याति यद्यपि स्यात् क्रमागतम् ॥ १ ॥

अथ राष्ट्रस्य ये दात्रवो भवन्ति तानाह—

धौरचरटमक्षपधमनराजवल्लभाटविकतलाराक्षशालिकनियो-
गिग्रामहृद्वार्द्धपिका हि राष्ट्रस्य कण्टकाः ॥ २१ ॥

टीका—धौरः प्रसिद्धा, चरगा ये भू-नुजा नि मारिणा, मज्जपा
मापकारका, धमना प्रादकभाडपनेर्मुन्य निर्णयकारका, राजवल्लभाः
प्रसिद्धा, आट्रिका अरण्यनिरामिन, ललाग स्थानरक्षाया नियोजिता,
अभुशालिका कटकशाण्डिका नियोगिका राजाकारिका, ग्रामहृता

बलाधिकाः, वार्द्धुपिका येऽन्नसंग्रहं कृत्वा दुर्भिर्शं वाञ्छन्ति, एते सर्वे राष्ट्रस्य कण्टका देशस्य शत्रुभूताः सामादिभिरुपायै राष्ट्रमुपद्रवन्ति तस्माद्भुजा नोपेक्षितव्याः । तथा च गुरुः—

चौरादिकेभ्यो दृष्टेभ्यो यो न राष्ट्रं प्ररक्षति ।

तस्य तन्नाशमायाति यदि स्यात्पितृपैतृकम् ॥ १ ॥

अथ यादृक्षे राज्ञि राष्ट्रकण्टका न भवन्ति तदाह—

प्रतापवति राज्ञि निष्ठुरे सति न भवन्ति राष्ट्रकण्टकाः ॥ २२ ॥

टीका—यत्र राष्ट्रे राजा प्रतापी बहुपुण्यो भवति तथाज्ञया निष्ठुरो नीतिकर्ता च तत्रैते राष्ट्रकण्टका न भवन्ति । तथा च व्यासः—

यथोक्तनीतिनिपुणो यत्र देशे मवेष्ट्रपः ।

सप्रतापो विशेषेण चौराद्यैर्न स पीड्यते ॥ १ ॥

अयान्यायवृद्ध्या वार्द्धुपिका [न] भवन्ति देशस्य यत्कुर्वन्ति तदाह—

अन्यायवृद्धितो वार्द्धुपिकास्तत्र देशं च नाशयन्ति ॥ २३ ॥

टीका—वार्द्धुपिकाः पूर्वोक्ताधानीतिवृद्धितः श्रिताः सन्तः तत्रै राज्ञधनुष्पदादिकं तथा देशं नाशयन्ति तेषामन्यायवृद्धिः पार्थिवेन रक्षणीयाः । तथा च भृगुः—

यत्र वार्द्धुपिका देशं अनीत्या वृद्धिमाययुः ।

सर्वलोकक्षयस्तत्र तिरश्चां च विशेषतः ॥ १ ॥

अथ तेषां दाक्षिण्यरहितानां यद्भवति तदाह—

कार्याकार्ययोर्नास्ति दाक्षिण्यं वार्द्धुपिकानाम् ॥ २४ ॥

टीका—नास्ति न विद्यते, किं तत् ? दाक्षिण्यं लजास्पदं, कयोर्ऋषये ? कृत्याकृत्ययोः । यदि तदर्थं कृत्यं वस्तु क्रियते उपकारलक्षणं तदपि

१ प्रतापवति कण्टकशोधनाधिकरणते राज्ञि न प्रभवन्ति इति पाठो मुद्रित-
पुस्तके । २ तेषु सर्वे अन्यायवृद्धयो वार्द्धुपिकास्तत्रै कोशं देशं च विनाशयन्ति
इति मूले मुद्रितपुस्तके ।

दाक्षिण्यं न कुर्वन्ति । अथवा तदर्थमकृत्यं क्रियते तदपि दाक्षिण्यं न कुर्वन्ति । तथा च हारीतः—

पार्श्वदिकस्य दाक्षिण्यं विद्यते न कार्यञ्चन ।

हस्याकृत्यं तदर्थं च कृतैः संस्पृष्टिर्वाञ्छितैः ॥ १ ॥

अथ पुराणं स्वशरीरक्षार्थं कृत्यं तदाह—

अप्रियमप्यापधं पीयते ॥ २५ ॥

टीका—किञ्चिदर्थं प्रायारिकं यद्यपि भवति कटुकं तथापि पीयते येनारोग्ये शरीरे भवति तथान्यैरपि पदार्थैर्धर्मार्थकामादिभिर्-
र्यया शरीरस्वारोग्यता भवति तथा कार्यं । तथा च वर्गः—

धर्मार्थकामपूर्वैश्च भेषजैर्विषिधैरपि ।

यथा मीढ्यादिकं पश्येत्तथा कार्यं विपश्चिता ॥ १ ॥

अथ तस्यैव पूर्वगुत्रस्य प्रतिष्ठामाह—

अहिदष्टा स्वाङ्गुलिरपि च्छिद्यते ॥ २६ ॥

टीका—यतो निर्गन्धोपधैर्महाधैः (!) गृह्णति अर्थज्ञयो भवति ।
निद्राया अमन्तोयो भवति । तथा धर्मार्थकामैरनुगतैरपि वित्तज्ञयो
भवति तथा मनसोऽमन्तोयो भवति । तत्कस्मादेतत्कृतं तदत्र विषये
हृष्टान्तमाह—यथाहिदष्टाङ्गुलिः शरीरक्षार्थं व्यवधामप्यधिकां करोति
तथापि च्छिद्यते त्यज्यते । एवं शरीरक्षार्थेऽप्यस्य मृण्या न कार्यं
शरीरेण विद्यमानेन भूयोऽप्यर्थमभ्यस्यति भवति तथ हिदष्टाङ्गुलिन्याताङ्गुली
भवति । तर्ज. च—

शरीरार्थे न मृण्या च प्रकलेऽप्य विवक्षणे ।

शरीरेण यता वित्तं गृह्यते न तु लज्जे ॥ १ ॥

१ दण्डनीति-समुद्देशः ।

अथ दण्डनीतिरारम्भ्यते । तत्र तावदण्डमाहात्म्यमाह—

चिकित्सागम इव दोषविशुद्धिहेतुर्दण्डः ॥ १ ॥

टीका—योऽसौ अपराधिनां दण्डः क्रियते, स किंविशिष्टः ? दोषविशुद्धिहेतुः कारणं । एतदुक्तं भवति—योऽसौ राजा चौरजारादीनां निग्रहं करोति, स निग्रहः किंविशिष्टः ? सर्वदोषविशुद्धिहेतुः । फ इव ! चिकित्सागम इव, यथा चिकित्सागमो वैद्यकं सर्वदोषसन्निपातादीनां विनाशहेतुर्भवति तथा दण्डः । तथा च गर्गः—

अपराधिषु यो दण्डः स राष्ट्रस्य विशुद्धये ।

विना येन च सन्देशो मारुत्यो म्यायः प्रयसते ॥ १ ॥

अथ दण्डनीतेः स्वरूपमाह—

यथादोषं दण्डप्रणयनं दण्डनीतिः ॥ २ ॥

टीका—यथादोषं यन्प्रमाणापराधस्य दण्डं प्रणयनं दण्डप्रवृत्तिः सा दण्डनीतिः, न मानहर्म्य (१) द्विशतमात्रो दण्डः । तथा हस्तपाद-
च्छेदाहर्म्य न शिरः (२) कार्यः । तथा निग्रहस्य न क्षत्रियदण्डः ।
न क्षत्रियस्य वैश्यवत् । न वैश्यस्य शूद्रवत् । न शूद्रमात्रयजवत् । एते
सर्वेऽपि दण्डाः भूभुक्ता धर्माकरणे । धर्माधिकरणेन धर्मकारणे वा)
निश्चेतव्याः । तथा च गुरुः—

कमृत्युक्तवचनैर्दण्डं हीनार्थिभिर्यं प्रयातयन् ।

अपराधकृतापेन लिप्यते न विशुद्धयति ॥ २ ॥

अथ यन्निमित्तं राजा दण्डं करोति तदह—

प्रजापालनाय राज्ञा दण्डः प्रणीयते न धनार्थम् ॥ ३ ॥

टीका—योऽसौ राज्ञा दण्डः प्रणीयते कृतापराधेभ्यो दीयते स प्रजापालनाय देशविद्वद्भ्यः न धनार्थं तस्माद्गुणा धनलोभो न कर्तव्यः । तथा च गुरुः—

यो राजा धनलोभेन दानाधिककरप्रियः ।

तस्य राष्ट्रं प्रजेभ्यो न स्यात्परमपुष्टिमम् ॥ १ ॥

अथ राज्ञो वैद्यस्य वा छिद्रान्वेषणपरस्य यद्वदति तदाह—

स किं राजा वैद्यो वा यः स्वजीवनाय प्रजाम् दोषमन्वेषयति ॥ ४ ॥

टीका—स किं राजा यः प्रजाम् विषये दोषमन्वेषयति छिद्रान्वेषणपरो भवति स कण्टकः शत्रुः । कामा ! प्रजानां । यतः कलिकाले कामक्रोध-लोभादयो दोषाः प्रायेण संभवन्ति तेन सर्वं छिद्रमयं जगत् एवं ज्ञात्वा परिभूतपुरुषस्य तच्छत्रो यपाहो दण्डः कार्यः न परवाक्येन स्वजीवनाय निर्वहणनिमित्तं । तथा च गुरुः—

यो राजा परपाक्येन प्रजादण्डं प्रयच्छति ।

तस्य राज्यं क्षयं याति तस्माज्ज्ञात्वा प्रदण्डयेत् ॥ १ ॥

अपि च—

छिद्रान्वेषणचित्तेन नृपस्तत्र न पापयेत् ।

तस्य तद्भाशमभ्येति तस्मात्तद्वद्भाजनारिता १ ॥ २ ॥

तथा च वैद्यः स्वजीवनाय प्रजाम् दोषमन्वेषयति रोगवृद्धि-काणि भयजनानि प्रयच्छति धनिना न वैद्यो न भवति सोऽपि प्रजाकण्टकः । तथा च गुरुः—

प्रत्युपे प्रोत्थिता धैर्याः कृतायदयकसत्क्रियाः ।
 धैर्यनाथं हृदि स्थाप्य श्लोकमेनं पठन्ति च ॥ १ ॥
 यातपित्तादिका रोगा ये चाजीर्णसमुद्भवाः ।
 ते सर्वे धनिनां सन्तु धैर्यनाथ तवाज्ञया ॥ २ ॥

अथ राजा न यानि द्रव्याणि स्वयमुपयुञ्जीत तानि कथ्यन्ते—

दण्ड-घृत मृत विस्मृत-चौर-पारदारिक-प्रजाविप्लवजानि द्र-
 व्याणि न राजा स्वयमुपयुञ्जीत ॥ ५ ॥

टीका—दण्डवित्तमयराजिजनोद्भूतं, घृते जितं, तथा संप्राप्ते, मृतस्य
 तथा विस्मृतं यज्जानानि रितं, तथा चौराद्यप्राप्तं, (पारदारिकाद्यप्राप्तं)
 तथा प्रजाविप्लवान् परचक्रभयत्रासात् प्रजाभिः परित्यक्तं। (अथ यदि)
 तेनो द्रव्याणि न राजा स्वयं गृह्णीयात् यदि गृह्यन्ते तेन कस्मात्कार-
 णात्, तदथमुच्यन्ते तानि भूभुजा धर्मार्थं विप्रादीनां देवानि न च
 कोशे क्षेमव्यानि यनां दूष्यणीतानि द्रव्याणि सर्वाणि। तथा च शुकः—
 दूष्यणीतानि द्रव्याणि कोशे शिष्यति यो नृपः ।
 स यानि धनं गृह्यगृहाद्यंश्च निधिर्यथा ? ॥ १ ॥

अथ दूष्यणीतदण्डेन कोशक्षिप्तेन यद्ववति तदाह—

दूष्यणीतो हि दण्डः कामक्रोधाभ्यामज्ञानाद्वा सर्वमिदं
 कमेति ॥ ६ ॥

टीका—नेनो ॥ १ ॥ न ना वा दण्डः स दूष्यणीतः पापदण्डः स
 स्वयं मुञ्चानस्य नृपतः ॥ २ ॥ कमेति मरणादौ कमेति, अन्यस्यापि शुभा-
 द्दैन्ये ॥ कमेति मरणात् । कामक्रोधाभ्यामज्ञानाद्वा सर्वमिदं । तथा
 च शुकः—

१ दूष्यणीतः स्वयं नृपतः ॥ २ ॥ कमेति मरणादौ कमेति, अन्यस्यापि शुभा-
 द्दैन्ये ॥ कमेति मरणात् । कामक्रोधाभ्यामज्ञानाद्वा सर्वमिदं । तथा
 च शुकः—

यथा कुमित्रसंगेन नर्यं शीलं विनश्यति ।
तथा पापोरधदण्डेन मिथं नश्यति तद्वत् । ॥ १ ॥
किञ्चित्कामेन प्रोधेन किञ्चिन्किञ्चिच्च जाह्नतः ।
तस्माद्दूरेण स्वत्याज्यं पापयित्तं कुमित्रयन् ॥ २ ॥

अथ दुष्प्रणीतदण्डभीतस्य राज्ञो राष्ट्रे यद्भवति तदाह—

अप्रणीतो दण्डो मात्स्यन्यायमुत्पादयति मर्त्यानामर्बलं प्रमति
ति मात्स्यन्यायः) ॥ ७ ॥

टीका—अप्रणीतोऽदृष्टोऽपराधिना भूभुजा दण्डो (मात्स्यन्याय-
मुत्पादयति मर्त्यानां पुरुषोऽवर्बलं निर्बलं प्रमतीति मात्स्यन्यायः तस्मान्)
भुजा दण्डो प्रादाः परं कोशे न निक्षेप्यः । तथा च शुभः—

दण्डयं दण्डयति सो यः पापदण्डस्त्वमपि न ।
तस्य राष्ट्रे न भवेद्दो मात्स्यो म्यायः प्रकीर्तितः ॥ १ ॥
इति दण्डनीतिसमुद्देशः ।

१० मंत्रि-समुद्देशः ।



अथ मंत्रिसमुद्देश आरभ्यते । तत्रादायैव राजा यथा आहार्यबुद्धि-
र्भवति तदाह—

मंत्रिपुरोहितसेनापतीनां यो युक्तमुक्तं करोति सं आहार्य-
बुद्धिः ॥ १ ॥

टीका—यो राजा मंत्रिपुरोहितसेनापतीनां युक्तं धर्मार्थलक्षणं कथितं
करोति स आहार्यबुद्धिः कथ्यते तस्माद्भुजा श्रवाणामप्येतेषां वचनं
कार्यं राश्वतिवृद्धये । तथा च गुरुः—

यो राजा मन्त्रिपूर्वोणां न करोति दितं वचः ।

न क्षीय नाशमायाति यथा दुर्वोधनो नृपः ॥ १ ॥

अथ भूपतेर्महापुरुषवत्त्वं कुर्याणम्य यद्वचति तदाह—

अमुगन्धमपि मूर्धं कुमुमसंयोगान् किन्नारोहति देवशि-
रमि ॥ २ ॥

टीका—यन्मया राज्यं करोति मया राजा प्रधानो बहुमतिः परं
पादगुण्य विन्त्यमानसः । विद्यामामकचेतसो बुद्धिधर्मो भवति अमा-
त्यादीनां पुनश्च तस्य राज्यं विन्त्यमानानां बुद्धिरिकासो भवति
तेन ते द्रष्टव्याः । ते पृष्ठे विद्यमयुक्तापि मतिः तद्बुद्धिः मिथ्या सती
संख्या भवति । के. के. व. पुष्पेतिथ्या मूलतन्त्रिभिः यथा पुष्पेतिथ्या
मूलतन्त्रिदेवैरिति निर्णयानि विगमिष्यामीति एवं भूपत्याडपि बुद्धिर्-

छासासक्तस्य नद्यापि सती प्रश्नात् प्रकटा भवतीति । तथा च बहुभो देवः—

उत्तमानां प्रसंगेन लघयो यान्ति गौरवम् ।

पुष्पमालाप्रसंगेन सूत्रं शिरसि धार्यते ॥ १ ॥

अथाप्रेसरमूत्रेणामुमेवार्थं दृढीकुर्वन्नाह—

महद्भिः पुरुषैः प्रतिष्ठितोऽस्मापि भवति देवः किं पुनर्मनुष्यः ॥ ३ ॥

टीका—ये महापुरुषा उत्तमपुरुषा भवन्ति तैः प्रतिष्ठितोऽस्मापि पायाणोऽपि देवो भवति किं पुनर्मनुष्यः । तस्माद्राज्ञा महापुरुषाः प्रष्टव्यास्तेषां वाक्ये कर्तव्यमिति । तथा च हारीतः—

पायाणोऽपि च विंशुधः स्थापितो येः प्रजायते ।

उत्तमैः पुरुषैस्तैस्तु किञ्च स्यान्मानुषोऽपरः ॥ १ ॥

अथ तमेवार्थं दृढीकुर्वन्नाह—

तथा चानुभूयते विष्णुगुप्तानुग्रहादनधिकृतोऽपि किल चन्द्रगुप्तः साम्राज्यपदमवापेति ॥ ४ ॥

टीका—विष्णुगुप्तमन्थानिश्यन्तस्यानुग्रहात् प्रसादान्मतिमत्तोऽनधिकृतोऽपि अनविकार्यपि मौरिककुलोत्पन्नोऽपि मन्दराजो साम्राज्यपदमवाप । तथा च शुकः—

महामार्य धरो राजा निर्विकल्प करोति यः ।

एकेशोऽपि महो लोभे दीनोऽपि बृहलो यथा ॥ १ ॥

अथ राजा पाण्डुरोऽभात्य कर्तव्यस्तस्य लभ्यतेमाह—

भक्षण इव । यथा विदेण भक्षितेन सर्वे शरीरजा गुणा नाशं यान्ति
तद्वद्देशपक्षपातादिकाः सर्वे गुणा नश्यन्ति तस्मादुराचारो मंत्री न
कर्तव्यः । तथा चात्रिः—

दुराचारममात्यं यः कुचते पृथिवीपतिः ।

भूपादास्तस्य मंत्रेण गुणान् सर्वान् प्रणाशयेत् ॥ १ ॥

अपाकुलीनस्य स्वरूपमाह—

दुष्परिजनी मोहेन कुतोऽप्यपकृत्य न जुगुप्सते ॥ ८ ॥

टीका—दुष्परिजनरान्देनाकुलीनः कप्यते, दुष्परिजनो मंत्री, कुतः
कस्मात् जुगुप्सते लज्जा करोति । किं कृत्वा ! अपकृत्य द्रोहं कृत्वा, कस्य
राज्ञोऽपि तु न लज्जते । यतः कुलीनस्य लज्जा भवति नाकुलीनस्य ।
तथा च यमः—

अकुलीनस्य नो लज्जा स्यामिद्रोहे कृते सति ।

मंत्रिण कुलीनस्य तस्माद्विद्रोहं कारयेत् ॥ १ ॥

अथ सव्यमनस्य स्वरूपमाह—

मव्यसनमचिवो राजाऽन्वडव्यालग्न इव नामुलभोऽप्ययः ॥ ९ ॥

टीका—यो राजा सव्यमनसचिवो दूतस्त्रीपानव्यमनाभिभूतेन मंत्रि
णा सह वर्तते, तस्य किं स्यात् । नामुलभोऽपि तु मुलभं शीघ्रं स्यात्
कोमौ । अग्रायो विनाशः क इव । आन्वडव्यालग्न इव योऽपि व्यालं
दुष्टगणे आग्राहणं करोति सोऽपि शीघ्रं नश्यतीति । तथा च नारदः—

युत यो यमदृताभ हाता हातादलोपमा ।

पदयनः कारोपमानुशरान राजाणे । स्यान्त्य मन्त्रयिभू ॥ १० ॥

अथ राजावग्राहणं मन्त्रिणः ॥ १० ॥

किं तेन देनापि यो विपदि नापतिष्टने ॥ १० ॥

टीका—किं तेन केनापि मंत्रिणान्येनापि सामान्येन यः स्वामिनो नोपतिष्ठते नागच्छति व्यभिचरतीत्यर्थः । कस्यां ? आपदि । तथा च शुक्रः—

किं तेन मंत्रिणा योऽत्र व्यसने समुपस्थिते ।

व्यभिचारं करोत्येव गुणैः सर्वैर्युतोऽपि वा ॥ १ ॥

अथ तमेवार्थं समर्थयन्नाह—

भोज्येऽसम्मतोऽपि हि सुलभो लोकः ॥ ११ ॥

टीका—भोज्ये भोजनकालेऽसम्मतोऽपि यः समागच्छति स सुलभः सुखेन लभ्यते प्रभूत इत्यर्थः । असंमतोऽप्यूर्वोऽपि यो व्यसने साहाय्यं करोति स मेत्री सामान्योऽपि । हिशब्दो यस्मादर्थे स्फुटार्थः । तथा च वट्टभो देव —

समृद्धिकाले संप्राप्ते वरोऽपि व्यञ्जनायते ।

अकुर्यान्नोऽपि चामात्यो दुर्लभः स मदीमुताम् ॥ १ ॥

अथाधीनायाऽव्यवहारस्य शुभकस्य मंत्रिणो दूरगमाह—

किं तस्य मत्स्या यो न वेत्ति म्यामिनो हितोपायमहित-
प्रतीकारं वा ॥ १२ ॥

टीका—यो न वेत्ति न चिन्तयति । किं ? हितोपायं येन राज्ञो हृदिर्भवति । तथाऽस्तिप्रतीकारं सन्तुष्टार्थं । तथा च शुक्रः—

किं तस्य व्ययद्वाराधैर्यिज्ज्ञानं शुभकरणि ।

यो न चिन्तयते राज्ञा धनापाय विपुश्य ॥ १ ॥

अथानुद्वयं वाक्यादौपम्यात्

किं तेन महायेनागञ्जनं मंत्रिणा यस्यान्मरुक्षणेऽप्यसं न
भवति ॥ १३ ॥

टीका—अथानुद्वयं वाक्यादौपम्यात् । अथ महाय इति । किं तेन महायेना-
गञ्जेन मंत्रिणा सङ्गबाधद्विशङ्कान्ननेन य आ मनो स्थगं न करोति स
दृष्टोऽप्युद्वयः । तथा च शुक्रः—

मार्गघोषां च यो वेदशास्त्रविद्यांकुदीरयि ।

स मंत्री पूजितो राजा योऽन्यः शस्त्रात्मकः ॥ १ ॥

अथोपधास्वरूपमाह—

धर्मार्थकाममयेषु व्याजेन परचित्तपरीक्षणमुपधा ॥ १४ ॥

टीका—या (उपधा) सा किंविशिष्टा ! परचित्तपरीक्षणकारी परशत्रुस्तस्य ज्ञायते चित्तं यथा, केन कृत्वा ? व्याजेन कपटेन । वैः, गुप्तचरैः । येषु पदार्थेषु ! धर्मार्थकाममयेषु । पधात्परीक्ष्य सन्निविष्टो वा स्वामिनो मंत्रिणा कारापनीयः । तत्र धर्मवेत्ता गुप्तचरः प्रेष्यस्तत्परीक्ष-
सा सह मित्रत्वे नियोक्तव्यः, स तद्दारेण धर्मशुद्धिं यथा वेति कार्यं किं बाह्यमधर्मः त्वया ज्ञात्वा मम वाच्यः । ततश्च यदि कृत्वं धर्मो भवति स ततः स्वामिविग्रहे तेन सह नियोग्यः अहम्यमधर्मो भवति तत्तमधेयः यतो धर्मस्ततो जयः इति च ज्ञात्वा । अपवाधोपधा बहुभाहं नियोग्यः प्रेष्यः स गत्वा कोशयेन सह मैत्रीभावेन नियोक्तव्यः तद्दारेण यथा कोशशुद्धिं वेति यस्तथा वाच्यः । स कंचुकिना सह मैत्री कृत्वा कामशुद्धिं वेति द्यूतखीज्यसनेन जितः तद्योद्धव्यः, अपवा सन्धेयः । मयोपधा यथा तत्र यं दूरं स प्रहेतव्यं स च मेलापतिना सह मैत्री विधाय समर्थं निर्भयं वेति तददि ममयन्तशोद्धव्योऽयं सन्धेयः । एतादृशम् उपधा इति । तथा च शुक्र —

साया सर्वयः कश्चिन्नोऽर्तिगम्यः

धर्मोपहीना विषया सुमीर

पुराहिताधाधिपने नवाशान्

स्वीकृतकाममन्त्रपत म वाये ।

अथाकुलीनेषु मंत्रिषु पृथक् १ ॥ १५ ॥

अकुलीनेषु नाम्न्यपरदात्रयम् ॥ १५ ॥

टीका—नास्ति न विद्यते । किं तत् ? भयं । केपु ? अकुलीनेषु कस्मात् ? अपवादात् अपकीर्तः । तथा च बह्वभदेवः—

कथंचिदपवादस्य न वेत्ति कुलवर्जितः ।

तस्मात्तु भूमुजा कार्यो मंत्री न कुलवर्जितः ॥ १ ॥

अथ भूयोऽप्यकुलीनानां मंत्रिणां स्वरूपमाह—

अलर्कविषवत् कालं प्राप्य विकुर्वते विजातयः ॥ १६ ॥

टीका—ये मंत्रिणो विजातयः कुलहीना भवन्ति ते कालमापलुब्धं दृष्ट्वा प्राप्य भूपतेरपकुर्वन्ति विरुद्धा भवन्ति । कथं ? अलर्कविषवत् अलर्क-शब्देन वाताभिभूतः इवा प्रोच्यते तस्य दंष्ट्राविषमपि प्राप्ते काले प्राश्रयि भूयोपि दंष्ट्राप्रखण्डव्रणमपि नूतनं करोति । तद्वादिजातयो मंत्रिणः कथमप्यपराधं भूपालकारितं प्रशान्तमपि प्रकटतां नयन्तीति । तस्मादि-जातयो मंत्रिणस्त्याज्याः । तथा च बादरायणः—

अमात्या कुलहीना ये पार्थिवस्य भवन्ति ते ।

आपत्काले विरुध्यन्ते स्मरन्तः पूर्वंदुष्कृतं ॥ १ ॥

अथ कुलीनानां मंत्रिणां स्वरूपमाह—

तदमृतस्य विषत्वं यः कुलीनेषु दोषसम्भवः ॥ १७ ॥

टीका—दोषसंभव दुर्जेनाः कथयन्ति । किं तदमृतस्य विषत्वं कदाचित्तेषां न भवति खलु निधयेन । तथा च रैभ्यः—

यदि स्याच्छीतलो घन्दिः सोऽगस्तु रजनीपतिः ।

अमृतं च विषं भावि तत्कुलीनेषु विक्रिया ॥ १ ॥

अथ ज्ञानिनो मंत्रिणां ज्ञानं यथा वृथा स्यात्तदाह—

घटप्रदीपवत्तज्ज्ञानं मंत्रिणो यत्र न परप्रतिबोधः ॥ १८ ॥

यो न प्रहरति स तेन न बध्यते । तथा शास्त्रं पठमानो यो वादिने न प्रत्युत्तरं प्रयच्छति तुष्णीमास्ते स लघुतां याति । यथा च नारदः—

शत्रोर्वा वादिनो वापि शास्त्रेणैवायुधेन वा ।

विद्यमानं न हन्याद्यो धेगं स लघुतां व्रजेत् ॥ १ ॥

अथ कापुरुषस्य मूर्खस्य सुखं यद्व्यति तदाह—

न हि गलिर्वलीवदो भारकर्मणि केनापि युज्यते ॥ २१ ॥

टीका—यः कापुरुषो भवति शस्त्रं न गृह्णाति तथा मूर्खो भवति तं कश्चित्स्वामी युद्धाय न प्रेरयति मूर्खे च वादाय (न) नियोजयति । तथात्र दृष्टान्तेन तदर्थं प्रतिपादयति—न हि गलिर्वलीवदो भारकर्मणि युज्यते नारोपितः सुखी स्यात् । तथा च बलभेदेवः—

गुणानामेव दीर्घम्याद धुरि धुर्यो नियुज्यते ।

असञ्जातकिरणस्कन्धः सुखं याति गोर्गलिः ॥ १ ॥

अथ भूपतीनां कार्पारम्भो यादृग्भवति तमाह—

मंत्रपूर्वैः सर्वोप्यारंभः क्षितिपतीनाम् ॥ २२ ॥

टीका—क्षितिपतीनां राज्ञां यः प्रयोजनारम्भः यादृगुण्यलक्षणः स मंत्रपूर्वैः प्रथमं मंत्रिभिः सह मंत्रपित्वा ततः सर्वैः प्रारम्भ्यते न मंत्र-वाद्यः । तथा च शुकः—

अमंत्रसन्धिर्वा सार्वं यः कार्यं कुरुते नृपः ।

तस्य तन्निष्फलं भावि पण्डस्य सुरतं यथा ॥ १ ॥

मंत्रस्य यन्माध्य तदाह—

अनुपलब्धस्य ज्ञानमुपलब्धस्य निधयो निधितस्य बलापान-
मर्थद्वयस्य संगपच्छेदनमेकदेशदृष्ट्याशेषोपलब्धिरिति मंत्र-
माध्यमेतत् ॥ २३ ॥

टीका—एतत् पचपदार्थलक्षणं मृपतीनां मंत्रसाध्यं मंत्र विना न सिद्धयतीत्यर्थः । तत्र तावदनुपलब्धस्याज्ञातस्य पदार्थस्य ज्ञानं यच्छत्रमप्य न ज्ञायतेऽन्यस्य वा कस्यचित् गुदवस्तुनि तन्मन्त्रेण ज्ञायते गुप्तचरैः शोष्यते ततो ज्ञायते । ज्ञातस्य निश्चयो निश्चितस्य बलागम तस्य क्रमेणार्थद्वैधस्य सशयपरिच्छेदः । पदेको गुप्तचरो वदति तदज्ञां(न्मो)ऽन्यथा मूने स द्वैधभावी भवति । तृतीय प्रेषयित्वा निःसन्देहं यथा भवति तथा कार्यं । तथा एकदेशदृष्टस्य चोः सर्वस्योप-
लब्धिः कार्या । तथा च गुरुः—

अज्ञातं ज्ञातुमन्यं च चरन्त्यं विपश्चिता ।

तस्य विज्ञातमप्यस्य कार्यं सिद्धं न वेति च ॥ १ ॥

अथ मंत्रिणां लक्षणमाह—

अहृतास्ममान्वस्याप्यनुष्ठानमनुष्ठितविशेषं विनियोगस-
म्पर्दं च ये कुर्गुस्ते मन्त्रिणः ॥ २४ ॥

टीका—अहृतस्य पदार्थस्य ये मंत्रगत्याग्मि कुर्गुः, तयास्त्व-
स्यानुष्ठानं कर्मवृद्धिः, अनुष्ठितस्य विशेषं, विनियोगसम्पर्दं च कर्म
कुर्गुस्ते मन्त्रिणः कथ्यन्ते । तथा च गुरुः—

दर्शयन्ति विशेषं ये सर्वकर्मसु भूषणेः ।

स्वाधिकारप्रसायं च मन्त्रिणस्तंऽन्यथा पदे ॥ १ ॥

अथ मन्त्रस्य लक्षणमाह—

कर्मणामाग्मोपायः पुरुषद्रव्यसम्पदेशकालविभागो विनि-
पतनप्रतीकारः कार्यसिद्धिर्धत्ति पंचांगो मंत्रः ॥ २५ ॥

टीका—मन्त्रस्य कृत्यानां तावदुपाय सामभेदोपप्रदानलक्षण-
विनियोगः अनेनोपायेनेन कृत्वा सिद्धिं यास्यतीति । उक्तं च यत् —

कार्यारंभेषु नोपायं तस्मिन्मद्ये च चिन्तयेन् ।

यः पृथं तस्य नो सिद्धिं तत्कार्यं याति कर्तुमिन् ॥ १ ॥

तथा पुरुषद्रव्यमभ्यन्तर्नीया । सम्पष्टब्देन सामर्थ्यमुच्यतेऽने
पुरुषेणेतेन द्रव्येणैतत्कार्यं मिद्वयति । उक्तं च यतः—

ममर्घं पुरुषं कृत्ये तदहं च तथा धनम् ।

योजयेद्यां न कृत्येषु तस्मिद्धि तस्य नो प्रजेन् ॥ १ ॥

तथा च देशकालविभागो मूमुजा चिन्तनीयः, अस्मिन् देशे
यावनसैन्धवे ! अस्मिन् काले वसन्तशरत्क्षणे मम यात्रामिद्धिर्भवि-
ष्यतीति । उक्तं च यतः—

यथात्र सैन्धवस्तोयस्थले मरस्यो विनश्यति ।

शीघ्रं तथा महीपालः कुदेशं प्राप्य सिद्धिं ॥ १ ॥

यथा काको निशाकाले कीशिकश्च दिवा चरन् ।

स विनश्यति कालेन तथा भूषो न संशयः ॥ २ ॥

तथा विनिपातप्रतीकारश्चिन्तनीयः विनिपातशब्देनापदनिघीयते
तस्याः प्रतीकार उपशमश्चिन्तनीयः कथमेवायास्यति । उक्तं च यतः—

आपत्काले तु सम्प्राप्ते यो न मोहं प्रगच्छति ।

उद्यमं कुरुते शक्त्या स तं नाशयति ध्रुवं ॥ १ ॥

तथा कार्यसिद्धिश्चिन्तनीया ।

सामादिभि (रूपाय) यौ कार्यसिद्धिं प्रचिन्तयेत्

न निर्वेगं ह्यचिद्याति तस्य तत्सिद्धयति ध्रुवं ॥ १ ॥

अथ यत्र स्थाने मंत्रं कुर्यात्तदाह—

आकाशे प्रतिशब्दवति चाश्रये मंत्रं न कुर्यात् ॥ २६ ॥

टीका—आकाशे आश्रयरहिते न मंत्रः कार्यः । तथा प्रतिशब्दवति

चाश्रये यत्राश्रये स्थाने प्रतिशब्दः सञ्जायते तत्रापि मंत्रो न कार्यः ।

कदाचित्कश्चिद्गुप्तस्तत्र स्थित्वा आकर्णयति । तथा च गुरुः—

निराथपप्रदेशे तु मंत्रः कार्यो न भूमुक्ता ।

प्रतिशब्दो न यत्र स्वात्मसिद्धिं प्रयाच्छता ॥ १ ॥

अथाकार्येयं विचक्षणो मंत्रो ज्ञायते तदाह—

मुखविकारकराभिनयाभ्यां प्रतिध्वानेन वा मनःस्थमप्यर्थ-
मभ्युद्यन्ति विचक्षणाः ॥ २७ ॥

टीका—यदि किंचिद्गदति राजा तदपि मुखविकारं दृष्ट्वा विच-
क्षणो दूतः समागतः तन्मंत्रं हृदि स्थितं जानाति । तथा कराभिनयेन
हस्तचलनेन जानाति । प्रतिध्वानेन प्रतिशब्देन जानातीति तथा एते
विकारा दूताग्रे रक्षणीयाः । तथा च बह्वभेदेव—

आकारैरिगितर्गत्या श्रेण्या भाषणेन च ।

नेत्रयश्च विकारेण दृष्टतेऽन्तर्गतं मनः ॥ १ ॥

अथ यथा रक्षितव्यो मंत्रस्तदाह—

आ कार्यसिद्धे रक्षितव्यो मंत्रः ॥ २८ ॥

टीका—आह पर्यन्तवाचकः यावन्मंत्रं कृता कार्यस्य सिद्धिर्न भवति
तावद्रक्षितव्यः । तथा च विदुरः—

एकं त्रिषतेसो ? दन्ति शस्त्रेणैकस्य यथ्यते ।

सदाष्टं सप्रजं दन्ति राजानं धर्मविराटः ॥ १ ॥

अथापरीक्ष्य मंत्रप्रमाणस्य यद्भवति तदाह—

दिवा नक्तं वापरीक्ष्य मंत्रप्रमाणस्याभिमतः प्रच्छन्नो वा
भिनन्ति मंत्रम् ॥ २९ ॥

टीका—नत्रमेवमेवात् दिवा नक्तं च परीक्ष्य पश्चात् नत्रं कुर्यात्
यत् अभिमतं प्रच्छन्नं भिनन्ति आत्मीयं राजा नित्यं नत्रं नक्तं च
परीक्ष्येऽपि । तथा च वृत्तान्तः—

धृषते किल गजव्या वृष्टवृष्टे प्रच्छन्नो वरुचिग्रशिमेनि
विशारेभ्यो वृत्तान्तमुपधुस्य चतुरधर्गयः पादं श्लोकं चकारेति ।

टीका—यन्मंत्रभेदाद्याद्यस्य सनं जायते तदुपप्रतिविधेयं दुःखेन तस्य प्रतिविधानं नाशः क्रियते [अ] प्रतिविधानं तस्य व्यसनस्य फटेनावि न याति तस्मान्मंत्रभेदो रक्षितव्यः । तथा च गार्गः—

मंत्रभेदाद्य भूपस्य व्यसनं संश्रज्जायते ।

तत्कृच्छ्राप्राप्तमभ्येति कृच्छ्रेणाप्यध्या न वा ॥ १ ॥

अथ मंत्रभेदस्य यानि कारणानि भवन्ति तान्याह—

इक्षितमाकारो मदः प्रमादो निद्रा च मंत्रभेदकारणानि ॥ ३५ ॥

इक्षितमन्यथाश्रुतिः ॥ ३६ ॥

कोपप्रसादजनितौ शारीरी विकृतिराकारः ॥ ३७ ॥

पानस्त्रीसंगादिजनितो हर्षो मदः ॥ ३८ ॥

प्रमादो गोत्रस्पर्शनादिहेतुः ॥ ३९ ॥

अन्यथा चिकीर्षतो न्यथाश्रुतिर्वा प्रमादः ॥ ४० ॥

निद्रान्तरितः ॥ ४१ ॥

टीका—एतानि पञ्च मंत्रभेदस्य निमित्तान्युपपन्त्ये । प्रथमयिगितं सावत्, मंत्रे मंत्रिते इगितं चेष्टितं यद्भवति राजस्तेन गुणचरा मंत्रमर्षं जानन्तीति । तथा ऽऽकारः शरीरस्य रीदत्वेन सौम्यत्वेन वा, तेन मंत्रमर्षं जानन्तीति । तथा मदेन, यतो मदेन पानेन हृदयस्थमुद्रि-रति । तथा प्रमादेन क्षतेन, (गोत्रभवात्तेन । यन्मंत्रमन्य, दृशोति । तथा निद्रायमाणो निद्रान्तरित पुमान् हृदयस्थमुद्रिगति । तथा च वशिष्ठ —

मन्त्रयिष्या मर्हादेन कर्तव्यं शुभवेष्टितम् ।

आकारश्च शुभ कार्यस्याजया निद्रामदादभ्या ॥ १ ॥

आचार्येणैगितादीनां विशेषेण “ इद्वितमन्ययावृत्तिः ” इत्यादिभिः सूत्रैर्लक्षणं प्रोक्तं तद्वतार्थत्वान्नोच्यते ।

अथ मंत्रे मंत्रिते नृपेण यत्कर्तव्यं तदाह—

उद्धृतमंत्रो न दीर्घमूत्रः स्यात् ॥ ४२ ॥

टीका—यदोद्धृतः कृतो मंत्रस्तदर्थं न दीर्घमूत्रः स्यात् न विलम्बः कार्यस्तत्क्षणादेवानुष्ठीयत इति । तथा च शुकः—

यो मंत्रं मंत्रयित्वा तु नानुष्ठानं करोति च ।

तत्क्षणात्तस्य मंत्रस्य जायते नात्र संशयः ॥ १ ॥

अथ मंत्रे कृते तत्क्षणान्नानुष्ठिते यद्ववति तदाह—

अननुष्ठाने छात्रवर्त्तिकं मंत्रेण ॥ ४३ ॥

टीका—यथा छात्रः शिष्य उपाध्यायसकाशान्मंत्रं गृहीत्वा तदर्ह-
मनुष्ठानं जपादिकं न करोति किं तस्यापि तेन मंत्रेण व्यर्थेनेति ।
तथा च शुकः—

यो मंत्रं मंत्रयित्वा तु नानुष्ठानं करोति च ।

स तस्य व्यर्थतां याति वृद्धात्रस्येव प्रमादिनः ॥ १ ॥

अथ मंत्रस्याननुष्ठितस्य दृष्टान्तमाह—

न ह्यौषधिपरिज्ञानादेव व्याधिप्रशमः ॥ ४४ ॥

टीका—न मंत्रेण मंत्रितेनानुष्ठानरहितेन कार्यसिद्धिर्भवति यथा
व्याधिप्रशमस्य भेषजपरिज्ञानेन केवलेन न सिद्धिर्भवति भक्षणं विना
तथा मंत्रेणाप्यनुष्ठानवर्जितेन । तथा च नारदः—

विज्ञाते भेषजे यद्वत् विना भक्षं न नश्यति ।

व्याधिस्तथा च मंत्रेऽपि न सिद्धिः कृत्यवर्जिते ॥ १ ॥

अन्यो द्वितीयः प्राणिना यः शत्रुस्तमाह—

नास्त्यविवेकात्परः प्राणिनां शत्रुः ॥ ४५ ॥

टीका—अधिवेकादव्यवहाराद् द्वितीयो मनुष्याणां शत्रुर्नास्ति स एव
यतः शत्रुवधवन्धार्थं करोति । तथा च गुरुः—

अधिवेकः शरीररूपो मनुष्याणां महारिपुः ।

यथानुष्ठानमात्रोऽपि करोति यधवन्धनम् ॥ १ ॥

अथात्मसाध्यमन्यसकाशात्साधयितुर्वद्भवति तदाह—

आत्मसाध्यमन्येन कारयन्पथमूल्यादिव व्याधिं चिकि-
त्सति ॥ ४६ ॥

टीका—यो मूर्ख आत्मसाध्यं प्रयोजने अन्यस्य पार्श्वार्त् कारयेत् ।
स किं करोति ! भेषजमूलेन व्याधिचिकित्सा करोति वैद्यकं ! औषधस्य
यत्किञ्चिन्मूल्यं भवति तेनान्यदृहीत्वा भक्षयति । समर्थ ! यदि तेन तस्य
व्याधिश्चो भवति तदन्यस्यापि पार्श्वार्त्कारिते प्रयोजने सिद्धिर्भवति
तस्मादात्मसाध्यमान्मेव क्रियते नान्यस्य पार्श्वार्त्कारापणीयमिति । तथा
च भृगुः—

आत्मसाध्यं तु यत्कार्यं योऽन्यपार्श्वार्त्मुमुक्षुर्धीः ।

कारापयति स व्याधिं नयेद्भेषजमूल्यतः ॥ १ ॥

अथ भृत्यस्वामिनोर्वद्भवति तदाह—

यो यत्प्रतिबद्धः स तेन महोदयन्यपी ॥ ४७ ॥

टीका—यो यस्मिन् स्वामिनि भृत्यः प्रतिबद्धः स्वामिनोभ्युदयेन
तस्याभ्युदयः, व्ययेन नाशो विनाश इति । तथा च भागुरि —

स्वस्तोमममो राजा भृत्यः पद्माकरोपम ।

तद्वृक्षश्चा वृद्धिमन्योर्न तद्भिनाशो विनश्यति ॥ १ ॥

अथ स्वाभ्याश्रितस्य वद्भवति तदाह

स्वामिनाधिष्ठितो भेषोऽपि मिहायते ॥ ४८ ॥

टीका—स्वामिनाधिकृतं कार्यं भेषोऽपि मिहायते । तथा

म मंत्री शत्रुयो नृपेच्छयाकार्यमपि कार्यरूपतयानुशास्ति । ५२ ॥

टीका—स मंत्री न भवति स शत्रुः सचिवरूपेण । यः किं कुर्यात् ?
नृपेच्छया स्वच्छन्देनाकार्यमप्यह्यमपि फार्पतया कृत्यव्या अनु-
शास्ति तत्तस्य कथयति । तथा च भागुरिः—

अकृत्यं (कृत्य) कृतं च मम्यं चाकृत्यमंशितां ।

निषेदयति भूपस्य स घरी मंत्रिरुपधृक् ॥ १ ॥

अथ भूपस्य कृत्याकृत्यनिषेदने यथा मंत्रिणा भाव्यं तदाह—

वरं स्यामिनो दुःखं न पुनरकार्योपदेशेन तद्विनाशः ॥ ५३ ॥

टीका—मंत्रिणा नृपस्य वरं कटोरवचनैर्दुःखमुत्पादितं यत्परिणामे
नुखावहं न पुनः कर्णास्त्रादिकं परिणामविनाशकारि वक्तव्यं । तथा
च नारदः—

वरं पीडाकरं पाक्यं परिणामरुपायदं ।

मंत्रिणा भूमिपालस्य न मृष्टं यद्भयानकम् ॥ १ ॥

अथ बलान्काणेऽपि नृपस्य यत्क्रियते तदाह दृष्टान्तद्वारेण—

पीयूषमपि पयो घालस्य किं न क्रियते कपोलहननं ॥ ५४ ॥

टीका—पीयूषं स्तनदुग्धं यो न पिबति तस्य किं जननी न कुरुते
कपोलहननं तद्विनाशः । एवं मंत्रिणापि नृपनिहिताय कठोरमपि वाध्यम् ।
तथा च शर्मा —

जननीं घालकं यद्दुःखं स्तस्य प्रपाययेत् ।

यत्पुण्यमार्गो राजा धार्यते मंत्रिणा पथि ॥ १ ॥

अथ मंत्रिर्भयकृत्यं तदाह —

मंत्रिणो राजद्वितीयहृदयत्यागं केनचित्सह संमर्गं कुर्युः ॥ ५५ ॥

टीका—न कस्यचित्तैर्मिलनीयं । तथा च शुक्रः—

मंत्रिणः पार्थिवैश्चागां विनीयं हृदयं ततः ।
ततोऽप्येन न र्गमर्गैर्नैः कार्यो नृपपुत्रये ॥ १ ॥

तथा राज्ञो मंत्रिणा सह यद्भवति तदाम्—

राज्ञोऽनुग्रहविग्रहायेर मंत्रिणामनुग्रहविग्रहो ॥ ५६ ॥

टीका—यो राज्ञोऽनुग्रहः समृद्धिभावः स मंत्रिणामप्यनुग्रहः समृद्धि-
वृद्धयः । यद्यपि पुनरा राज्ञो विग्रहो व्यमनं तन्मंत्रिणामपि । तथा च
हारीतः—

राजः पुष्ट्या भवेत्पुष्टिः सचिधानां मदसरा ।
व्यमनं व्यमनेनापि तेन तस्य हिताय ये ॥ १ ॥

अथ मंत्रिणा नृपकार्योत्तानां यत्कार्यं न सिद्धयति तदर्थमाह—

स दैवम्यापराधो न मंत्रिणां यत्सुषट्ठितमपि कार्यं न घटते
॥ ५७ ॥

टीका—पूर्वोक्तमूत्रार्थेन मंत्रिणः सदैव नृपकृत्ये सावधाना भवन्ति
यत्सावधानानामपि तेषां न सिद्धयति स दैवस्य प्राक्तनकर्मणो दोषः,
न तेषां, ते पुनः सावधाना नृपकृत्येषु । तथा च भार्गवः—

मंत्रिणां सावधानानां यत्कार्यं न प्रसिद्धयति ।
तत्स दैवस्य दोषः स्यान्न तेषां सुहितैपिणाम् ॥ १ ॥

अथ राज्ञः स्वरूपमाह—

स खलु नो राजा यो मंत्रिणोऽतिक्रम्य वर्तेत ॥ ५८ ॥

टीका—यो राजा मंत्रिभिरुक्तानि वचनानि न करोति तान्यतिक्रा-
मति स खलु निश्चयेन राजा न भवति नश्यतीत्यर्थः । तथा च भारद्वाजः—

यो राजा मंत्रिणा चाक्षयं न करोति हितैपिणां ।
न स तिष्ठेच्चिरं राज्ये पितृपैतामहेऽपि च ॥ १ ॥

अथ भूयोऽपि मंत्र माहात्म्यमाह—

तुदिदेविनाम्भ्राज्ययेव कार्येतिद्विरेदि वामिनो न
[गम्यत इत्यादि ॥ ५९ ॥

टीका—यदि वामिनो वृत्तय न दृष्टव्यो दृष्ट एवमपि वृत्तय ।
तुदिदेविनाम्भ्राज्ययेव कार्येतिद्विरेदि वामिनो न निश्चयेन । तस्य
न भवितुमशक्यम् —

कार्येतिद्विरेदि वामिनो वृत्तय न दृष्टव्यो दृष्ट एवमपि वृत्तय ।

यदि वामिनो वृत्तय न दृष्टव्यो दृष्ट एवमपि वृत्तय ॥ ६० ॥

कार्येतिद्विरेदि वामिनो वृत्तय न दृष्टव्यो दृष्ट एवमपि वृत्तय —

अदिममनो वामिनो वृत्तय न दृष्टव्यो दृष्ट एवमपि वृत्तय ॥ ६१ ॥

टीका—यथा वामिनो वृत्तय न दृष्टव्यो दृष्ट एवमपि वृत्तय ।
अदिममनो वामिनो वृत्तय न दृष्टव्यो दृष्ट एवमपि वृत्तय —

यदि वामिनो वृत्तय न दृष्टव्यो दृष्ट एवमपि वृत्तय ।

न नन वामिनो वृत्तय न दृष्टव्यो दृष्ट एवमपि वृत्तय ॥ ६२ ॥

कार्येतिद्विरेदि वामिनो वृत्तय न दृष्टव्यो दृष्ट एवमपि वृत्तय —

नितिरेवामिनो वृत्तय न दृष्टव्यो दृष्ट एवमपि वृत्तय ॥ ६३ ॥

टीका—नितिरेवामिनो वृत्तय न दृष्टव्यो दृष्ट एवमपि वृत्तय ।
नितिरेवामिनो वृत्तय न दृष्टव्यो दृष्ट एवमपि वृत्तय —

यदि वामिनो वृत्तय न दृष्टव्यो दृष्ट एवमपि वृत्तय ।

नितिरेवामिनो वृत्तय न दृष्टव्यो दृष्ट एवमपि वृत्तय ॥ ६४ ॥

कार्येतिद्विरेदि वामिनो वृत्तय न दृष्टव्यो दृष्ट एवमपि वृत्तय —

नितिरेवामिनो वृत्तय न दृष्टव्यो दृष्ट एवमपि वृत्तय ॥ ६५ ॥

टीका—नितिरेवामिनो वृत्तय न दृष्टव्यो दृष्ट एवमपि वृत्तय ।
नितिरेवामिनो वृत्तय न दृष्टव्यो दृष्ट एवमपि वृत्तय —
नितिरेवामिनो वृत्तय न दृष्टव्यो दृष्ट एवमपि वृत्तय ।
नितिरेवामिनो वृत्तय न दृष्टव्यो दृष्ट एवमपि वृत्तय —

टीका—कि बहूना बाबा धनदुर्गा काय भवति लकार्ये । पुन-
रपि विदितम् । अमरावहूर्त्त अमारी विनाशः न अमरावहूर्त्त
अमरावहूर्त्त बहूनामपुन विनाशः । अथा अत्रैतिमिः—

वसुधैकुटुम्भकं कुरुते नमस्तस्मै मदीमुजा ।

शोणपातो भवेत्तत्र शतं विपुलमिदं ॥ १ ॥

ਅੰਤ ਵਿਚ ਇਹ ਸਮਝਣਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ—

तदेव हृष्यते पदेव पण्डितमिति ॥ ७६ ॥

၇၂၈။—ဤအပိုင်းအစသည်။

अथ यादव वंशिनो दंतो म ह्यनु समाह—

दधोत्तगुणगमरादिन्येकस्मिन् सुगन्धे वा मंश्रिणि न कोऽपि
दोषः ॥ ७७ ॥

टीका—यदपि प्राग्बो मंत्री निषिद्धो द्वावपि निषिद्धौ तथापि यदे-
कस्मिन् गुणले वा यद्येतद्गुणमवहाविनि, कोऽर्थः । गुणे तत्र बोद्धवि-
शेषः कार्य इति ।

अथ स्वर्गा मंत्रिणां गृह्णाणां निदेशे एतान्तमाह—

न हि महानप्यन्यगमुदायो रूपमुपलभेत् ॥ ७८ ॥

टीका—इ पावाकाणान् महानपि श्रोत्रोऽपि जन्मसमुदायो
मिश्रकौ न त्वमुपलभेत् आनार्त्तानि ।

अथ भिक्षुगाम्भ्य दीवपरिहासार्थं दृष्टान्तमाह—

अवार्यवीर्यो धुर्यो विप्र मरुति भारं नियुज्यते ॥ ७९ ॥

शिवः अत्रापि अमरस्य वीर्यं दत्तं यद्येभ्यो अत्रापि वीर्यं नौ दत्तं वि-
द्वि- निपु- यत् । कश्चिन्म- महति नात्र । ॥ ८ ॥ मणिर्णो द्वावपि यथोक्त-
माणमनरायिनी द्वावपि सत्रयाम्याश्रित्य ॥

अ० अदमहाय गतिं यद्भवति तदाह —

बहुसहाये राज्ञि प्रसीदन्ति सर्वे एव मनोरथाः ॥ ८० ॥

टीका—यो बहुसहायो राजा भवति तस्य सर्वे मनोरथा इदं स्थिता अभीष्टाः पदार्थाः प्रसीदन्ति सिद्धिं यान्ति । तथा च वर्गः—

मदह्वीनो यथा नागो दंष्ट्राह्वीनो यथोरगः ।

असहायस्तथा राजा तत्कार्ये यद्व्यथ्य ते ॥ १ ॥

यथैकस्य मंत्रिणो यद्वचति तदाह—

एको हि पुरुषो केषु नाम कार्येष्वत्मानं विमज्जते ॥ ८१ ॥

टीका—हि यस्मात्कारणादेको नामाहो केषु कार्येषु आत्मानं विमज्जते आत्मानं निपोजयति यतो भूपतीनां बहूनि कार्याणि भवन्ति तस्मादज्ञा बहवो मंत्रिणः कार्या । तथा च जैमिनिः—

एवं यः कुरुते राजा मंत्रिणं मन्दबुद्धिमात् ।

तस्य भूमीणि कार्याणि स्वीदन्ति च तदाधयात् ॥ १ ॥

अथेकमाख्या । तत्रैव गये दृश्यन्तमाह—

किमेकशास्यस्य शासिनी महती भवति च्छाया ॥ ८२ ॥

टीका—महाशूरोऽपि यदेकशास्यो भवति तत्र किं तस्य च्छाया महती भवति, अपि तु न भवतीत्यर्थः । एवं मंत्रिणाप्येकेन कार्यं न सिद्धयतीत्यर्थः । तथा चात्रिः—

यदेकशास्यशूरास्य नैव च्छाया प्रजायते ।

तथैकमंत्रिणः राज्ञः सिद्धिः कल्पेण नो भवेत् ॥ १ ॥

अथ कार्ये समुपने महावसमुदायो पादम्भरानि तदाह—

कार्यकाले दुर्लभः पुरुषममुदायः ॥ ८३ ॥

टीका—कार्यकालेऽत्र भाग्यवशात् दुर्लभः पुरुषममुदायमप्युपमायुज्यते । महाया कर्तव्या । इति च—

अग्रे अग्रे प्रकर्तव्याः सदायाः सुविधेकिभिः ।
आपन्नाशाय ते यस्माद्दुर्लभा व्यसने स्थिते ॥ १ ॥

अथानागतैर्न कृतैः सहायैर्यद्भवति तदाह—
दीप्ते गृहे कीदृशं कूपखननम् ॥ ८४ ॥

टीका—यदा गृहं प्रदीप्तं भवति तदा तोयार्थं कूपखननं न युक्तं
किं तत्काले कूपो भवति । एवं यः सहायान् पूर्वं न करोति तस्याप-
त्काले न भवन्ति तस्मान्महायाः पूर्वमेव कार्याः । तथा च चाणिक्यः—
विपदानां प्रतीकारं पूर्वमेव प्रचिन्तयेत् ।
न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते सदसा गृहे ॥ १ ॥

अथ पुरुषधनाभ्यां विशेषमाह—
न धनं पुरुषसंप्रदादद्गु मन्तव्यं ॥ ८५ ॥

टीका—न बहु मन्तव्यं नोऽष्टे ज्ञेयं । किं तन् धनं । कस्मात् ?
पुरुषसंग्रहमकाशात् । तस्माद्नार्थिभिः पुरुषसंग्रहो भूयैः कार्यः । तथा
च शुक्रः—

न बाधं पुरुषेन्द्राणां धनं भूपस्य जायते ।
तस्माद्नार्थिना कार्यः सर्वदा धीरसंप्रदः ॥ १ ॥

अथ संपुण्ये दत्ते धने यद्भवति तदाह—
सत्क्षेत्रे बीजमिव पुरुषेष्टं कार्यं दत्तशः फलति ॥ ८६ ॥

टीका—अनेकधा फले प्रयच्छति । किं तन् कार्यं प्रयोजनं । किं
शिष्टं ? उक्तं क्षिप्तं । केपु ? संपुण्येषु । किमिव ? बीजमिव । किंविशिष्टं
उक्तं । कः ? स क्षेत्रे उत्तमभूभागे यथा सान्यया हीनमज्ञ भवति
प्रयोजनं वनलक्षणं तथा फलति । तथा च जैमिनि—
सम्पन्ने योजितं कार्यं धनं च दत्तं भाग्यम् ।
सम्पन्नस्य तद्भद्रमजायम् ॥ १ ॥

बुद्धावर्ये बुद्धे च ये सहायास्ते कार्यपुरुषाः ॥ ८७ ॥

टीका—ये बुद्धौ बुद्धिं प्रयच्छन्ति, तथाऽर्थेऽर्थं कृत्ये जाते धनं प्रयच्छन्ति, तथा बुद्धे शत्रुभिः सजाते सहायत्वं कुर्वन्ति ते कार्यपुरुषा उच्यन्ते । तथा च शौनकः—

भोद्धे यच्छन्ति ये बुद्धिमर्थे कच्छन्तं तथा धनं ।

धैरिसंघे सहायत्वं ते कार्यपुरुषा मताः ॥ १ ॥

अथ यस्मिन् काले यः सहायो भवति तदर्थमाह—

खादनवारायां को नाम न महायः ॥ ८८ ॥

टीका—खादनवारायां भोजनसमये को नाम अहो न सहायः । यदा सम्पद्भवति तदा सर्वोऽपि जनः महायः स्यात् । तथा च वर्गः—

यदा स्यान्मंदिरे लक्ष्मीस्तदान्योऽपि सुदृढवेत् ।

वित्तक्षये तथा यन्धुस्तन्भ्रणाद्भर्जनायते ॥ २ ॥

अथ यादृक् पुरुषस्य नाधिकारो भवति तमाह—

श्राद्ध इवाश्रोत्रियस्य न मंत्रे मूर्खस्याधिकारोऽस्ति ॥ ८९ ॥

टीका—(मंत्रे^१ मूर्खस्य मन्त्रिणो नाधिकारोऽस्ति । किमिव !) श्राद्धे अश्रोत्रियस्येव । एतदुक्तं भवति, यथा ब्रह्मानुष्ठानवर्जितस्य ब्राह्मणस्य श्राद्धकर्मणि अनर्हत्वं तथा मंत्रे मूर्खो मंत्री महीभृता ।

अथ मूर्खमन्त्रिणां दोषमाह—

किं नामान्धः पश्येत् ॥ ९० ॥

टीका—नामान्धो जनः किमन्धभक्षुर्विकलः पश्येत् निरीक्ष्यते, अपि तु न किञ्चित् । एतदुक्तं भवति, अन्धेन मृगो मूर्खो भवति तद्यदि घटपट्टादीनन्धः पश्यति तन्मूर्खो मंत्री मन्त्र । तथा च शौनकः—

१ इदं सूत्रं पुस्तकेऽपूर्णं तच्च सुश्रितपुस्तकात् पूणाकृत्यं प्रयोञ्जितम् । २ बंसस्थः पाठः पुस्तके न विद्यते परं वञ्जितोऽस्ति ।

यद्यन्धो धीक्ष्यते किञ्चिद् घटं वा पटमेव च ।

तदा मूर्खोऽपि यो मंत्रो मंत्रं पश्येत्स भूभृताम् ॥ १ ॥

अथ मूर्खनृपतेर्मूर्खमंत्रिणो यद्वदति तदाह—

किमन्धेनाकृष्यमाणोन्धः समं पन्थानं प्रतिपद्यते ॥ ९१ ॥

टीका—किं प्रतिपद्यते किं पश्यति । कं ' पन्थानं मार्गं । किञ्चि-
दिष्टं ? समं गर्तपाषाणादिगृहीतं । कोमावन्धः । किञ्चिदिष्टः ? आकृष्य-
माणो नीयमानः । केन ' अन्धेन । यदि मूर्खो गजा मूर्खेण मन्त्रिणा सह
मेवं करोति तर्हि मन्त्रसाध्यानि प्रयोजनानि जानातीत्यर्थः । तथा
च शुकः—

अन्धेनाकृष्यमाणोऽथ चेदन्धो मार्गधीक्षकः ।

भवेत्सन्मूर्खभूपोऽपि मंत्रं चेत्त्यक्तमंत्रिणः ॥ १ ॥

अथ मूर्खमन्त्रिणः सकाशात् कार्यमिद्विद्याद्वक् भवति तदाह—

तदन्धवर्तकीयं काकतालीयं वा यन्मूर्खमन्त्रात्कार्य-
मिद्धिः ॥ ९२ ॥

टीका—मूर्खमन्त्रादि तावत्कार्यमिद्धिर्भवति न यदि कथंचित्पुनर्भ-
वति तदन्धवर्तकीयं, कोऽर्थः ' वर्तमानाद्वेन चटिकाभिधीयते, मा
अन्धस्य दिगमि पतति तां सोऽपि भुजाम्यां गृह्णाति किमेतन्मम
दिगमि पतितमिति मया यथा तस्य तस्या ग्रहणमन्धस्यापि तथाच-
क्षुष्मन्, तथा मूर्खमन्त्रस्यापि दैवयोगात्कार्यसिद्धिः । अथवा काकता-
लीयं यन्मूर्खमन्त्रात्कार्यमिद्धिः । कोऽर्थः ' तावत्प्रभृत्य तावद्वर्तमानेन कलै
भवति काकश्च सर्वेषां पक्षिणां मन्त्राणादनीशान्निवासी भवति स तस्या-
धो गच्छन् तत्फलं पतन्ना पटि हन्यते न-मूर्खमन्त्रात्सिद्धिमिति । तथा
च शुकः—

अन्धवर्तयमर्थेनन् काकतालीयमेव च ।

अथ मूर्खमंत्रिणोऽपि यन्मंत्रपरिज्ञानं तत्स्वरूपमाह—

स घुणाक्षरन्यायो यन्मूर्खेषु मंत्रपरिज्ञानम् ॥ ९३ ॥

टीका—घुणः कृमिविशेषः स शनैः काष्ठे भक्षयति तेन तस्य भक्ष्य-
माणस्य विचित्रा रेखा भवन्ति तासां मध्याकाचिदेखाऽक्षगकारा भवति ।
एवं मूर्खेभ्यः मंत्रपरिज्ञानं घुणाक्षरन्यायवत् कदाचिन्निदिदि याति । तथा
च गुरुः—

यन्मूर्खेषु परिज्ञानं जायते मंत्रसम्भयम् ।

न हि घुणाक्षर न्यायो न तज्ज्ञानं प्रकीर्तितं ॥ १ ॥

अथ शास्त्रग्रहितस्य मनसो यद्वदति तदाह—

अनालोकं लोचनमिवाशाश्रमं मनः कियत्पश्येत् ॥ ९४ ॥

टीका—अशाश्रमे यन्मनो भवति जडात्मके सन्मनः कियत्पश्यति न
कविदति मशोपय । । किमिव 'लोचनमिव' नेत्रमिव । किमितिष्टे ?
अशाश्रमस्ति 'आनीश' इति व्युत्पत्त्या यथा न पश्यति तस्माच्छास्त्रमंत्रिणः
तथा । तथा च गुरुः—

आलोकरहितं नेत्रं यथा किञ्चित् पश्यति ।

तथा शास्त्रविहीनं यन्मनो मंत्रं न पश्यति ॥ १ ॥

अथ मंत्रिणामन्येषां वा यः सम्पदं जनयति तदाह—

स्यामित्रमादः सम्पदं जनयति न पुनरभिजात्यं पादिर्यं

॥ ९५ ॥

टीका—मंत्रिणामन्येषां स्यामित्रमादः सम्पदं जनयति नाभिजात्ये
स्त्रीत्या न पादिर्यं बहुभुवन । एतदुक्तं नानि यन्मन्त्रमादः सभा
तेजसि जनं पुत्रां करोति येनने । मन्त्रे विद्वन्मित्रादिर्यं सभाया
मन्त्रे । न कुटीरस्य पादिर्यस्य वा कश्चिपुत्रां करोति । तथा

गुरुः—

मंत्रिसमुदेशः ।

कुलीना पण्डिता दुःस्था हृदयन्ते बहवो जनाः ।

मूर्खाः कुलविहीनाश्च घनादया राजवल्लभाः ॥ १ ॥

अथ मूर्खमन्त्रिणः स्वरूपमाह—

हरकण्ठलघोऽपि कालकूटः काल एव ॥ १६ ॥

टीका—यद्यपि महेश्वरस्य फण्टे श्वेततरे लग्नन्तथापि कालकूटः
विपत्संज्ञः काल एव कृत(ष्ण)व्यात् पुन शुक्रव्य न जनयति । एवं यद्यपि
मूर्खो मंत्री भूमेन गुरस्वानं निरूपितमनथापि मूर्ख एव विद्वान् भवति
तस्मान्मूर्खो मंत्री न कार्यः । तथा च सुन्दरसेन —

स्वभावेनोपदेशेन शक्यते कर्तुमन्यथा ।

सुतप्तान्यपि तोयानि पुनर्गच्छन्ति क्षीतानां ॥ १ ॥

अथ मूर्खमन्त्रिषु राज्यभारेणार्पितेन यद्भवति तदाह—

स्वधाय कृत्योत्थापनमिव मूर्खेषु राज्यमारारोपणम् ॥ १७ ॥

टीका—यद्गुणेन मूर्खमन्त्रिषु राज्यकारभारः समर्प्यते तत्कृत्योत्थापनं
कृत्याशब्देनाप्यवर्णमन्त्रैः पावके होमविधानेन कृतेन पुराणो यो निष्क्रा-
मति स कर्तुं शत्रुं व्यापादयति यदि वा शत्रुर्बलवान् भवति जपहोम-
दानैस्तदा सा येनोत्थापिता तमेव विनाशयति तद्यथा तस्याः कृत्यायाः
स्वधायाम्बधायोत्थापनं क्रियते तथा मूर्खमन्त्रिषु राज्यभारावरोपणं ।
तथा च शुक्र —

मूर्खमन्त्रिषु यो भारं राज्ञोऽथ संश्रयच्छति । ?

आत्मनाशाय कृत्या न उरथापयति भूमिपः ॥ १ ॥

अथाकार्षवेदिनां भूपस्य यज्ञाय तदाह —

अकार्षवेदिनः किं बहुना शस्त्रेण ॥ १८ ॥

टीका—यं राजाकार्षवेदीं स्यात् न कार्यं वेदिं तस्य किं प्रभूतेनापि
निराकार्षवेदिनां भूपस्य यज्ञाय तदाह —

न कार्यं यो निजं वेत्ति शास्त्राभ्यासेन तस्य किं ।

यदुनापि वृद्धात्थेण ? यथा भस्महुतेन च ॥ १ ॥

अथ गुणहीनस्य राज्ञो यद्भवति तदाह —

गुणहीनं धनुः पिंजनादपि कष्टम् ॥ ९९ ॥

टीका—गुणशब्देन व्याभिधीयते । यस्मिन् धनुषि ज्या न भवति तर्पिजनादपि व्यर्थं कष्टमिति एवं राजापि यः शारीरिकगुणैर्युक्तो न भवति स कापुरुषवत् कष्टो व्यर्थमित्यर्थः । तथा च जैमिनिः—

गुणहीनश्च यो राजा स व्यर्थश्चाप्यपिचत् ।

यथा कापुरुष.....राभूमेः परं पदे ॥ १ ॥

अथ मंत्रिणः स्वरूपमाह—

चक्षुष इव मंत्रिणोऽपि यथार्थदर्शनसेवात्मगौरवहेतुः ॥ १०० ॥

टीका—मंत्रिणोऽमात्यस्य किं आत्मनो गुल्ये हेतुः कारणं यथार्थ-दर्शनं प्रयोजनविषये यथार्थदर्शनं कार्यसाधिका मंत्रिदृष्टिः तदा नृपश्रेष्ठो भवति । कस्येव गौरवहेतुर्भवति ! लोचनस्येव यथा पुष्पो यथार्थदर्शनं पदार्थस्य । तथा च गुरुः—

सूक्ष्मालोकस्य नेत्रस्य यथा शंसा प्रजायते ।

मंत्रिणोऽपि सुमंत्रस्य तथा सा नृपसंभवा ॥ १ ॥

अथ यादृशो मंत्रिणः कार्यस्तानाह—

शस्त्राधिकारिणो न मंत्राधिकारिणः स्युः ॥ १०१ ॥

टीका—न स्युर्न भवेयुः, के ? एते शस्त्राधिकारिणः क्षत्रियाः । किं विशिष्टा न स्युः ? मंत्राधिकारिणो मंत्रस्थानिनो । तथा च जैमिनिः—

मंत्रस्थाने न कर्तव्याः क्षत्रियाः पृथिव्याभुजा ।

यतस्ते केचलं मंत्रं प्रपश्यन्ति रणोद्भयम् ॥ १ ॥

अथ क्षत्रियो येन कारणेन मंत्री न क्रियते तदाह—

क्षत्रियस्य परिहरतोऽप्यायात्युपरि भंडनं ॥ १०२ ॥

टीका—यः शत्रियो भवति तस्य परिहृतोऽपि त्यजतोऽपि अवश्यं निधितं आपात्प्राप्यति, किं तत् भंडनं कलहमिति । एतेन कारणेन शत्रिया मंत्रिणो न कार्याः । तथा च वर्गः—

प्रियमाणमपि प्रापः क्षात्रं तेजो विपर्यते ।

युद्धार्थं तेन संत्याज्यः शत्रियो मंत्रकर्मणि ॥ १ ॥

अथ शत्रोपजीविनां स्वरूपमाह—

शत्रोपजीविनां कलहमन्तरेण भक्तमपि भुक्तं न जीर्यति ॥ १०३ ॥

टीका—तस्मात्ते मंत्रिणो न कार्या एतन्नात्पर्यमिति । तथा च भागुरिः—

शत्रोपजीविनामभ्रमुदरस्थं न जीर्यति ।

पापत्वेनापि नो युद्धे म्नाधुनापि समं भवेत् ॥ १ ॥

अथ पुण्यास्य ये पदार्थां गर्वं जनयन्ति तानाह—

मंत्राधिकारः स्वामिप्रसादः शत्रोपजीवनं चेत्पेकैकमपि पुरपमुत्संकयति किं पुनर्न समुदायः ॥ १०४ ॥

टीका—मंत्राधिकारः स्वामिप्रसादः शत्रोपजीवनं एतेषां त्रयाणां एकोऽपि पदार्थः संज्ञातः, पुरपं उत्संकयति सगर्वं करोति किं पुनः सर्वेषां ममयापो मेलापको नोऽमेकयति । तथा च शुक्रः—

जुषप्रसादो मंत्रित्वं शत्रोपजीव्यं स्मर्यं क्रियात् ।

एकैकोऽपि नरम्यात्र किं पुनर्पत्र ते त्रयः ॥ १ ॥

अथाधिकारिणां स्वरूपमाह—

नालम्पटोधिकारी ॥ १०५ ॥

टीका—योऽलम्पटो भवति नि मूढः स्यात् मंडाधिकारः न करोति तथा च बह्मदेव—

निःस्पृहो नाधिकारी स्यान्नाकामी मण्डनप्रियः ।

नाधिदग्धः प्रियं द्रुयात्स्फुटयक्ता न चंचकः ॥ १ ॥

अथ मंत्रिणि अर्थलुब्धे यद्वाज्ञो भवति तदाह—

मंत्रिणोऽर्थग्रहणलालसायां मर्तौ न राज्ञः कार्यमर्थो
वा ॥ १०६ ॥

टीका—मंत्रिणः सचिवस्य यस्म्यर्थग्रहणलालसा लम्पटा मतिर्भवति
तदा तस्य यो राजा तस्य कार्यसिद्धिर्न भवति अर्थो न भवति । तथा
च गुरुः—

यस्य संजायते मंत्री वित्तग्रहणलालसः ।

तस्य कार्यं न सिध्येत् भूमिपस्य कुतो धनं ॥ १ ॥

अथ भूयोऽपि वित्तग्रहणलालसस्य मंत्रिणः स्वस्वम् निरूपयन्नाह
दृष्टान्तद्वारेण—

वरणार्थं प्रेषित इव यदि कन्यां परिणयति तदा वरयितुस्तप
एव शरणम् ॥ १०७ ॥

टीका—यदि कन्यावरणार्थं प्रेषितो दूतः स्वयमेव कन्यां परिणयति
तदा परिणयितुर्येन प्रेषितमन्त्र्य तपधरणं शरणं स्थानं यतः कलत्रं
विना तपः कार्यं । एवं यदि मंत्री ग्रहणलालसो भवति तत्पार्थिवस्यापि
तपधरणं शरणं यतो वित्तवाशी राज्यं न भवति वित्तं पुनर्मन्त्रीद्वारेण
स्यात् । तथा च शुकः—

निदण्डि सतां मार्गे स्वयमाश्रित्य शंकितः ।

दयाकारः मन्त्रियो यस्य तस्य राज्यस्थितिः कुतः ॥ १ ॥

पुनरपि मन्त्र्यस्वयमदृष्टान्तेनाह—

स्यात्येव मत्तं चेन्मयमभ्रानि कुतो भोऽर्तुमुक्तिः ॥ १०८ ॥

टीका—म्यादीशब्देन उता ! उच्यते सापि मत्तमत्र स्वयं अदनाति
मश्न्यति तद्भोऽर्तुभोऽत्रनादिनः कुतो भुक्तिः भोऽत्रने भवतीत्यर्थः । एवं यो

येनैव राज्यं पश्यन् भवति तस्य क्यामिनः कुतो राज्यं हृत्वा निभुः ।
तथा च विदुः—

दुग्धमात्रस्य चान्येन पीतं घन्नेन गां यदा ।

तदा तत्रां कुतस्तस्याः क्यामिनः कुतये भवेत् ॥ १ ॥

अथ पुण्याणां मन्त्रमाह—

तावत्सर्वोऽपि शुचिर्निःस्पृहो यावत् परवरसीदर्शनमर्थागमो
वा ॥ १०९ ॥

टीका—सर्वोऽपि जनः तावत्शुचिर्निर्गुणो निस्पृहो यावत्परवरनारी
नावलोकयति, तावत् निस्पृहो यावत्परित न पश्यति । तथा च वार्ताः—

तावच्छुचिरशोभः क्यान् यावत्प्रेक्षेत्परस्वियं ।

धितं च दर्शनात्ताभ्यां द्विर्तायं तत्पश्यत्यति ॥ १ ॥

अथादुष्टस्य दूषणेन कृतेन यद्व्यति तदाह—

अदुष्टस्य दूषणं मुष्टज्वालप्रबोधनमिव ॥ ११० ॥

टीका—दोषरहितस्य पुण्यस्य यन्मूर्खेण दूषणे दीयते । तन्निमित्तम् !
मुष्टज्वालप्रबोधनमिव मुष्टस्य मर्मस्य व्याघ्रस्य वा बोधनं बोधयितुः मर-
णाय भवति । तथा च गुरु—

मुष्टमुष्टमर्दि मुक्तो ह्याप्तं वा घः प्रपांचयेत् ।

स स्वाधोर्दूषणं दद्याद्विद्वोऽप्यस्यान्मृगयये ॥ १ ॥

अथ वेद कृत्वा वेदिणा मह मन्त्रान् करोति तस्य यद्व्यति तदाह—

मकृद्विषटितं येनः स्फटिकवलयमिव कः मन्धात्

श्वरः ॥ १११ ॥

टीका—क ईश्वरः कः समर्थो भवति । किं कर्तुं ? सन्धातुं । किं तत् ? चेतः मनः सकृद्विघटित । किमिव ? स्फटिकवलयमिव पापाणकंकणमिव यथा पापाणवलयस्य भग्नस्य मन्विर्न भवति । तथा च जैमिनिः—

पापाणघटितस्यात्र संधिर्भग्नस्य नो यथा ।

कंकणस्येव चित्तस्य तथा वै दूषितस्य च ॥ १ ॥

अथ चित्तविरागो महान् यथा भवति तदाह—

न महताप्युपकारेण चित्तस्य तथानुरागो यथा विरागो भवत्यल्पेनाप्युपकारेण ॥ ११२ ॥

टीका—चित्तस्य मनसस्तथा महताप्युपकारेण दानादिनानुरागः स्नेहो न भवति यथा स्वल्पेनाप्युपकारेण विरुद्धेन कृतेन विरागः स्नेहनाशो भवति । विरुद्धं स्वल्पमपि कस्यापि (न) चा (च) रणीयं । तथा च वादरायणः—

न तथा जायते स्नेहः प्रभूतैः सुकृतेर्वहुः ।

स्वल्पेनाप्युपकारेण यथा वैरं प्रजायते ॥ १ ॥

सूचीमुखसर्प इव नापकृत्य विरमन्त्यपराधाः ॥ ११३ ॥

टीका—न विरमन्ति न तिष्ठन्ति । के ? अपराधाः । किं कृत्वापकृत्य यावन्न वैरनिर्गमः कृतः । क इव ? सूचीमुखसर्प इव । सूचीमुखा दृष्टिविषाः । तथा च भृगुः—

यो दृष्टिविषः सर्पो दृष्टस्तु चिकृति भजेत् ।

तथापराधिनः सर्वे न स्युर्विकृतिवर्जिताः ॥ १ ॥

अथातिवृद्धस्य कामस्य स्वरूपमाह—

अतिवृद्धः कामस्तन्नास्ति यन्न करोति ॥ ११४ ॥

टीका—कामः कामदेवः शरीरजतिवृद्धि गतः सन् तन्नास्त्यकृत्य यन्न करोति—अपि तु सर्वं करोतीत्यर्थः ।

भूयते हि किल कामपरवशः प्रजापतिरात्मदुहितरि, हरिर्गो-
पवधूपु, हरः शान्तनुकलत्रेषु, सुरपतिर्गातमभार्यायां, चन्द्रश्च
पृहस्पतिपत्न्या मनश्चकारेति ॥ ११५ ॥

टीका—एतकामचेष्टितं देवानां पुराणेषु श्रुतमिति ।

अथ पुण्याः साभिलाषा यथा भवन्ति तथाह—

अर्थेषूपभोगरहितास्तरवोऽपि साभिलाषाः किं पुनर्मनुष्याः ॥

टीका—अर्थेषु धनेषु साभिलाषा सातन्दास्तरवोऽपि वृक्षा अपि
भवन्ति येषामुपभोगो विलासो न भवति किं पुनर्मनुष्या ये विला-
सज्ञाः । कथं तरवोऽर्थेषु साभिलाषा भवन्ति, उक्तं च यतो यातशास्त्रे
विश्वकर्मणा—

पित्यादर्शपलास्ताद्वा निधानं चेदधो भवेत् ।

अधोमुखाः प्रतोदाः स्युर्नाभ्यां गच्छन्ति तत्र यत् ॥ १ ॥

तथा च जमिनिः—

अर्थे तेऽपि च याच्छन्ति ये वृक्षा भात्मचेतसा ।

उपभोगः परित्यक्तः किं पुनर्मनुष्याश्च ये ॥ १ ॥

तथा लोभस्य रूपमाह—

कस्य न धनलाभालोभः प्रवर्तते ॥ ११७ ॥

टीका—कस्य न धनलाभसक्तानालोभो भवति, अपि तु सर्वस्यापि
जनस्य भवतीत्यर्थः । तथा च वर्गः—

तापश्च जायते लोभो यापयामो न विद्यते ।

मुनिर्यदि यत्कथोऽपि क्षान् वृद्धानि ज्ञान्यथा ॥ १ ॥

च. १४१। ३। यो यापयामो न विद्यते —

स यत्तु प्रत्यक्षं दैवं यस्य परस्वेष्टिब परम्यापु नि स्पृह
येतः ॥ ११८ ॥



कार्यक्षोभान् विविच्यन्तो मत्ताः कापुरुषाः स्वयम् ।

शुभ्रं भाग्याम्यपि वचना न कृत्यानि प्रचक्षतुः ॥ ११ ॥

अथ भूयोऽपि कापुरुषानुदिरवात्मीयदेवेन शृण्वयमाह—

मृगाः मन्तानि किं कृषिर्न क्रियते ॥ १२२ ॥

अजीर्णमयात् किं भोजनं परित्यज्यते ॥ १२३ ॥

टीका—मत्तापेक्षतः ।

अथ कार्यारम्भमुदित्य श्रोष्यते—

म गन्तु कोऽर्पाहाभूदग्निं भविष्यति वा यस्य कार्यारम्भेषु
प्रत्यवाया न भवन्ति ॥ १२४ ॥

टीका—अपि भवन्तीति निश्चयः । तथा च भागुरिः—

यस्योद्यमो भवति तं समुपैति लक्ष्मी-

र्द्धेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति ।

द्वयं निदस्य पुनः पौन्यमायदाभ्यसा

यजेते कृते यदि न सिद्धयति कोऽत्र दोषः ॥ १ ॥

अथ दृष्टादयानां कार्यारम्भो यादवः भवति तथाह—

आत्मसंशयेन कार्यारम्भो प्यालं हृदयानाम् ॥ १२५ ॥

टीका—ये व्यालहृदया भवन्ति व्यालौ श्वापदभुजंगौ । तौ स्वमा-

धेन दृष्टौ भवतन्नाम्नां सद्गता हृदयं यस्य सः । आत्मसन्देहेन कार्य-

ारम्भो भवति । एवमुक्तः, सर्वे श्वापदा शुधानां भयं त्यक्त्वा मुग्धित-

मपि पदार्थं भक्षयन्ति ततः वदन्ति चिद्व्याप्यान्तु । एवमन्येऽपि ये दृष्ट-

हृदया भवन्ति तानि वदन्ति चिद्व्याप्यान्तु भवन्ति ये । (या) व्यापाना-

मित्रात्मसन्देहो भवति । तथा च शुक्रः —

मधुरः शर्षान् सदपानयि, मधुस्तस्यशायति तथा शक्नोति मधुरः
सदपानयि शरूतानयति । तथा च शुक्रः—

यो राजा मृदुवाक्यः श्यामश्चर्षातपि विद्विषः ।

न निर्दंति न सन्देहो मयूते भुजगानिष ॥ १ ॥

अथ महानुभावा यदा स्वहृदयं न प्रकाशयन्ति तथाह—

नावित्राय परेषामर्थमनर्थं वा स्वहृदयं प्रकाशयन्ति महा-
नुभावाः ॥ १२९ ॥

टीका—ये महानुभावा उत्तमं पुण्याभवन्ति ते न प्रकाशयन्ति ।
किं तन् ? आत्मीयहृदयं । किं कृत्वा ? अविज्ञाय अज्ञात्वा । के ? अर्थ
प्रयोजनं अनर्थं वा । केन ? परेषामन्यलोकाणां । तथा च भृगुः—

अत्राप्या परस्कार्यं च शुभं वा यदि याशुभं ।

अन्येषां न प्रकाशयुः सन्तो नयं निजाशयं ॥ १ ॥

अथ महापुरुषाणामाद्यापो याद्यभवति तादृगाह—

क्षीरवृक्षवत् फलसम्पादनमेव महतामालापः ॥ १३० ॥

टीका—महता महापुरुषाणां योऽर्था आलापः स फलसम्पादनं
करोति । क इव ? क्षीरवृक्ष इव । यथा क्षीरवृक्षः फलसम्पादनं करोति
तथा महापुरुषाणामालापा एव । तथा च वगैः—

आलापः आधुलोक्तार्ता फलदः स्यादर्थदायकम् ।

अक्षिरेणैव फलेन क्षीरवृक्षो यथा तथा ॥ १ ॥

अथ नीचप्रवृत्ते स्वल्पमाह—

दुरारोहपादप इव दण्डाभियोगेन फलप्रदो भवति नीच-
प्रवृत्तिः ॥ १३१ ॥

टीका—नीचा निवृष्टा प्रवृत्तिः स्वभावो यस्यासी नीचप्रवृत्तिः
स फलप्रदो भवति दण्डाभियोगेन लघुद्वारेण । क इव ? दुरारोह-

वृषालापैर्न भाष्यं न (ष) भूमिपालः पदाचन ।

यथा शरद्वना कुर्वुस्तोयवृष्टिविचर्जिताः ॥ १ ॥

अथ मुन्दरामुन्दरं यद्वस्तु भवति तदाह—

न स्वभावेन किमपि वस्तु मुन्दरममुन्दरं वा यस्य यदेव
प्रतिभाति तस्य तदेव मुन्दरम् ॥ १३५ ॥

टीका—अस्मिन् किमपि वस्तु स्वभावेन मुन्दरमुत्तमं नास्ति अमु-
न्दरं निरुष्ट वा नास्ति किन्तु यदेव प्रतिभाति तदेव तस्य मुन्दरं तनि-
रुष्टमपि, यन्न मनसि प्रतिभाति तस्य मुन्दरमपि निरुष्टे । तथा च जैमिनिः—

मुन्दरामुन्दरं लोके न किञ्चिदपि विद्यते ।

निरुष्टमपि तच्छ्रेष्ठं मनसः प्रतिभाति यत् ॥ १ ॥

अथोक्तमूत्रापेक्षया दृष्टान्तमाह—

न तथा कर्पूरेण प्रीतिः केतकीनां यथामेध्येन ॥ १३६ ॥

टीका—केतकीनां पुष्पजातिविशेषाणां तथा प्रीतिर्हृदिर्न भवति
यथा अमेध्येन दोहदेन दत्तेन । गतार्थमेतत् ।

अथातिक्रोधनस्य यद्वयति तदाह—

अतिक्रोधनस्य प्रभुत्वमग्रां पतितं लवणमिव शतधा विशी-
र्यते । १३७ ॥

टीका—अतिक्रोधनस्य पुण्यस्य प्रभुत्वं ऐश्वर्यं, किञ्चिन्निष्ठं भवति ।
शीर्यते विनाशो यानि । कथं ? शतधा अनेकधा । किमिव ? लवणमिव ।
किञ्चिन्निष्ठं ? पतितं अग्रां वेद्वानं । यथा वेद्वानं पतितं लवणं शतधा
विनाशमुपवर्ति । तथा चर्म्मिगुणः —

अतिक्रोधो महीपालः प्रभुत्वस्य विनाशकः ।

लवणस्य यथा चर्म्मिर्मध्ये निपतितस्य च ॥ १ ॥

तस्माद्विनाशो न कार्यः ।

अथ सर्वान् गुणान् यथा पुण्यो निहतो तदाह—

मानन्दः पादाग्रेण भूमिमग्नन् । अथ तस्य एततः केनापि प्राक्
तत्स्थाने स्थापितः राज्ञः प्रकटीभूतः स तेन पथिकेन शम्भुरहितेन तमेव
राजमादाय छागो व्यापादितो भक्षितश्चेत्तदजाहृपाणीयं । अन्योऽपि यो
छान्यान् शत्रोर्दिश्वामं गच्छति स केनाप्युपायेन तेन हन्यते तस्माद्वि-
श्रामः शत्रोर्न कार्यः । तथा च चाणक्यः—

न विभ्यसेदविभ्यस्ते विभ्यस्तेऽपि न विभ्यसेत् ।

विभ्यासाङ्गयमुन्पथ मूलादपि निहंतति ॥ १ ॥

अथ क्षणिकचित्तस्य यद्भवति तदाह—

क्षणिकचित्तः किञ्चिदपि न साधयति ॥ १४१ ॥

टीका—क्षणिक चित्तं यस्यामां क्षणिकचित्तं सदैव चञ्चित इत्यर्थः ।

न पुन्य किञ्चिदपि स्तोत्रमापि प्रयोजनं न साधयति । तस्य कि-
ञ्चिप्रयोजनं सिद्धिं न गच्छतीत्यर्थः । तथा च हारीतः—

चलचित्तस्य नो किञ्चित् कार्यं किञ्चिन्प्रमिद्वयति ।

सुसूक्ष्मपि तत्तस्मान्निश्चितं कार्यं यदोर्धिभिः ॥ १ ॥

अथ स्वतंत्रस्य राज्ञो यद्भवति तदाह—

स्वतंत्रः महमाकारित्वान् सर्वं विनाशयति ॥ १४२ ॥

टीका—यो राजा स्वतंत्रः केवलं भवति सचिवान् न करोति स मह-

माकारित्वादात्माह कृत्वा कुर्वाणोऽनर्हाणि, सर्वं राज्यं विनाशयति ।
तस्माद्राजा भवन्तरेण न भाव्यन् । तथा च नारदः—

यः स्वतंत्रो भवेद्राजा सर्विषाश्च नृच्छति ।

स्वयं कृत्यानि कुवाण स राज्यं नादायेंद्रुधुयम् ॥ १ ॥

अथाऽयमसमेलन्य यतोभ्य तदाह—

अलमः सर्वकर्मणामनधिकारी ॥ १४३ ॥

टीका—यः पुण्यः मरिचान्द्रोदयो भवति सा मरिच कृते रात्रि
मन्त्रिकाग्नी अग्नेयः स्नात् सन्ध्याधिकारः मृगमोऽपि न दीप्यते इति ।
तदा यः राजपुत्रः—

मालम्ब्योदितान् योऽत्र विरुध्वाण्डधिकारिणः ।

मृगभोज्येति च कृतेषु न मित्रपेक्षानि तद्वत् ति ॥ १ ॥

अथ प्रमादितो न्यायः पट्टाणि तदा—

प्रमादितान् मरुत्यवत्तं विडिषी पयः ॥ १४४ ॥

टीका—यो राजा कृतेषु प्रमादितान् भवति सोऽप्यने निधयेन
वश्यो भवति । अथाऽऽद्यात्तं इत्यादि । तस्माद्भूमता मृगभोज्ये कृतेषु
विडिषी न कर्तव्यं । अथाऽऽद्यात्तं इत्यादि ।

मृगभोज्येति कृतेषु विडिषी पयः कृतेषु पयः ।

यः राजा विडिषी पयः कृतेषु पयः कृतेषु पयः इति ॥ १ ॥

अथ पट्टाणि तदा—

कर्मण्यग्निनोऽभुङ्क्ते श्रितिरुते न कुर्यात् ॥ १४५ ॥

टीका—कर्मण्यग्निनोऽभुङ्क्ते श्रितिरुते न कुर्यात् । अथ पट्टाणि तदा—
कर्मण्यग्निनोऽभुङ्क्ते श्रितिरुते न कुर्यात् ।

श्रितिरुते न कुर्यात् । अथ पट्टाणि तदा—

यः मृगमोऽपि मृगमोऽपि मृगमोऽपि मृगमोऽपि मृगमोऽपि ॥ १ ॥

अथ पट्टाणि तदा—

प्रमादितान् मरुत्यवत्तं विडिषी पयः ॥ १४६ ॥

यः राजा कृतेषु प्रमादितान् भवति सोऽप्यने निधयेन वश्यो भवति । अथाऽऽद्यात्तं इत्यादि । तस्माद्भूमता मृगभोज्ये कृतेषु विडिषी न कर्तव्यं । अथाऽऽद्यात्तं इत्यादि ।

टीका—अथ प्रत्यवायशब्देन गुह्यमुच्यते तदुक्तं प्राणादपि जीवि-
तव्यादपि रक्षणीयं यतः सूक्ष्ममपि रिद्धं रिद्धाय शत्रवः प्रविशन्ति
तस्मात्तद्रक्षणीयं । तथा च भागुरि—

आत्मच्छिद्रं प्ररक्षेत जीवादपि मदीयतिः ।

यतस्तेन प्रलब्धेन प्रविश्य भ्रान्ति शत्रवः ॥ १ ॥

आत्मशक्तिमजानतो विग्रहः क्षयकाले कीटिकानां पक्षोत्थान-
मिव ॥ १४७ ॥

टीका—आत्मशक्ति अजानन् यो विग्रहं करोति स आत्मशुभं
करोति । किमिदं ? कीटिकानां पक्षोत्थानमिव । कस्मिन् ? क्षयकाले
विनाशकाले । यथा कीटिकानां क्षयो भवति तथा पक्षोत्थाने सम्भवति ।
पार्थिवस्यापि क्षयकालो यदा भवति तदा बलवता सह विग्रहं करोति ।
तथा च गुरु—

अच्युतं प्रोक्षतं योऽत्र रिपुं यानि यथाचलम् ।

शीर्णोन्मो नित्यतेन स यथा मत्तधारणः ॥ १ ॥

अथापद्रुस्तेन भृशुजा यकर्तव्यं तदाह—

कालमलभमानोऽपकर्तरि मापु वनेत ॥ १४८ ॥

टीका—कालं राश्वनमवलक्षणं कर्तुमलभमानोऽपकर्तरि शत्रौ साधु
वर्तेत षड्छन्दानुव्रति पतयेति । यदा शत्रुगमनं सकाशात् बलवान्
भरति तदा तस्योपचारं काय । तथा च भागुरि—

बलवन्तं रिपुं हृष्टा तस्य षड्छन्दानुव्रतयेत् ।

पलाय्या स पुनस्तत्र भिन्नाय कुभ्रमियाश्मना ॥ १ ॥

अथ शत्रोरुपचारविपर्ययः ॥ १५१ ॥

किन्तु मृत्यु लोको न वहति मृर्भा दग्धमिन्धनं ॥ १४९ ॥

टीका—किन्तु वि. १५१ न यदुपचारः ॥ १५१ ॥ तदाह—

एतज्ज्ञानेन न दृश्यते । किन्तु अतो ज्ञानं न निधयेन न वह

उपायान्) जानाति तस्य शत्रुविनाशं कुर्वतो नाल्पं न स्तोकं, न महद्वा प्रभूतं वा, सर्वमपि उपायी (उपायेन) व्यापादयति । तथा च गुरुः—

यधोपायान् विजानाति शत्रूणां वृथिर्थापतिः ।

तस्याग्रे च महान् शत्रुस्तिष्ठते न कुतो गच्छे ॥ १ ॥

अथ यधोपायस्य नृपतेर्दृष्टान्तमाह—

नदीपूरः सममेवोन्मूलयति तीरजनृणां हिमान् ॥ १५३ ॥

टीका—नदीवेगं समामपत सम एककालमुन्मूलयति नाशयति ।

कान् ! तीरजनृणां हिमान् । एव राजापि बहुपायेन शत्रून् हनून् गुरुनपि नाशयति । तथा च गुरुः—

पार्थिवो मृदुषास्पर्शः शत्रूनालपयेन्मुधीः ।

नार्जं भयेच्छनस्तांश्च तीरजान् सिन्धुपूरयन् ॥ १ ॥

अन्यदपि भूमिजा यत्कर्तव्यं तदाह—

युक्तमुक्तं वचो बालादपि गृहीयात् ॥ १५४ ॥

टीका—मात्रं, किं तत् ? युक्तं उक्तं व्यापगर्भं वचः । कस्मात् ? बाला-

दपि शिशोरपि । एतदुक्तं भवति, बालोऽपि यदि युक्तं व्याहरति तद्व्यापं न च बालप्रलपितमिति तद्वचम्यास्य । तथा च विदुरः—

सृष्टुं मत्स्यां प्रलापितं बालाद्यापि विशेषतः ।

यत्स्मात् भवति तद्वाह्यं शिष्याद्यामी शिष्यं यथा ॥ १ ॥

अथैतदपि प्रलापितं गणितद्वारांश्च दृष्टवन्माह—

स्वेगविषये किञ्च दीपः प्रकाशयति ॥ १५५ ॥

टीका—स्वेरादि यस्याविषये मूर्ध्निभूतिं किं न प्रकाशयति प्रकटी-

करोति । कोऽसौ ? दीपः ज्योतिष्कः । अनेन गणनेन बालेनापि युक्तमुक्तं गृहीयात् । तथा च बट्टभट्टेव —

नेत्रस्या स्वप्रयुक्तस्यानेनार्सा ? नापि सिद्धयति ।

कार्यं सूर्यं प्रणष्टं तु ज्योतिष्केन यथा निर्दिष्टं ॥ १ ॥

अथाश्रोतुः पुरतो वदन् यथा पुरतो जनैर्मन्यते तदाह—

स खलु पिशाचकी वातकी वा यः परेऽनर्थिनि वाचमूही-
रयति ॥ १५९ ॥

टीका—परे जनजनार्थिनि अश्रोतुकामे य उदीरयति वदति । वा ?
वाचं वाणी । स किमिदिष्टो जनैर्मन्यते । खलु निधयेन पिशाचकी
संजातभूतग्रहः, वातरा वा सन्निपातयुक्तो वा, तस्मादश्रोतु पुरतो
विदुषा न वक्तव्ये । तथा च भागुरि —

अश्रोतुः पुरतो वास्यं यो वदेदविच्छरणः ।

अरण्यरहितं सोऽथ कुरुते नात्र संशयः ॥ १ ॥

अथ नयहीनस्य या वृद्धिस्तस्या स्वरूपमाह—

विध्यायतः प्रदीपस्येव नयहीनस्य वृद्धिः ॥ १६० ॥

टीका—नयहीनस्य पुरस्य चौर्यादिभिरुत्थं वृद्धिर्भवति । सा कि-
मिदिष्टा ! प्रदीपस्येव । किमिदिष्टस्य । विध्यायतो विनाशो गच्छतः ।
यथा दीपस्य विनाशकादेऽविष्टा वृद्धिर्भवति तथा पुरस्याप्यन्यायोगा
जिता समृद्धिः । तथा च नारद —

चौर्यादिभिः समृद्धिर्वा पुरघातां प्रजायते ।

ज्योतिष्कस्यैव सा भूतिर्नाशकाश्च उपस्थिते ॥ १ ॥

अथ स्वामिपदमभिलप्यता नृपानां वदति तदाह—

जीवोन्मग्नः स्वामिपदमभिलप्यतामेव ॥ १६१ ॥

टीका—स्वामिन एव स्वामिपदमभिलप्यता नृपानां वदति तदाह—

विनाश एव तस्मात्स्वामिन एव नृपानां वदति तदाह—

स्वामिस्थानेन यः यो मुक्तो यादृशति स्वयमृद्धये

न शत्रुमुपशृङ्खति गन्धमयतनी यथा ॥ १ ॥

सायां सवत्सरात् गोमेन विविदिताः तथा सामा विगमयाम्णे न कार्ये
देन विगमो भवतीति । तथा च वसिष्ठः—

हव्यो गोमो विगमश्च प्रकृतीनां न दास्यते ।

यत्प्रकृत्यां प्रदीयेत् सान्ध्यापूजिः प्रजापते ॥ १ ॥

अथ प्रहर्षाणां दोषो दाहभरति तदाह—

मपेक्षोपेभ्यः प्रकृतिदोषो गरीयान् ॥ १६५ ॥

टीका—ये सान्ध्या दोषा दाहभरतिनां मकानान् प्रकृतिकोषो
गरीयान् वा (क) एतयः । तथा च राजपुर —

राजां छिद्राणि शर्याणि विदुः प्रकृतयः सदा ।

निषेद्य तानि दाहभ्यस्ततो नादां भयन्ति तम् ॥ १ ॥

अथ ये दोषे कृतेऽप्यवप्याग्नेरां यदिपते तदाह—

अधिकित्पदोषदुष्टान् एनिदुर्गमेतुबन्धासक्तकर्मन्तिरेषु हेतु-
येन् ॥ १६६ ॥

टीका—येरां दोषा अपराधा अधिकित्पदा यथमन्धवज्रितास्तेन
(तै.) दोषेण (दोषै.) ये दुष्टा द्रोहिताः, तेषां किं कार्यं ? तान्
हेतुयेन् व्यसनाभिभूतान् कारयेत् । केदु ? एनिदुर्गमेतुबन्धासक्तकर्मन्ति-
रेषु एनिदुर्गमेन तदागादिगतमुच्यते, दुर्गं प्रसिद्धं, सेतुबन्धो नदीरू-
पः, आकाशे धातुनामुपनिष्ठाने एतेषां यानि कर्माणि तेषां मध्ये
नियोजयेत् तत्र स्थिता द्रोहिदिक न कुर्वन्ति । तथा च शुक्रः—

अवस्थां ज्ञातयो ये च बहुदोषा भवन्ति च ।

कर्मन्तिरेषु नियोज्यास्ते येन क्युद्व्यसनास्थिताः ॥ २ ॥

अथ ये गुरुगार्हा गुरव न कुर्यान्नाह —

अपगर्ध्वरपगर्ध्वकश्च मह गोष्ठी न कुर्यात् ॥ १६७ ॥

टीका—य पुर्या अपग या भवन्ति यथा अपगया वायन्ति ।

कथा गोष्ठी न कुर्यात् । तथा च नारदः —

अप्रतिविधातुरागमनाद्वरमनागमनम् ॥ १७१ ॥

टीका—अप्रतिविधातुरकार्यसाधकस्य पुरुरस्य यद्वृत्तागमने तद्वरम-
नागमने वरमसमायातः केवलमुपक्षयः स्यात् । तथा च भारद्वाजः—

प्रयोजनार्थमानीतो यः कार्यं तन्न साधयेत् ।

आनीतेनापि किं तेन व्यर्थोपक्षयकारिणा ॥ १ ॥

इति मंत्रिसमुदेशः ।

११ पुरोहित-समुद्देशः ।



अथ पुरोहितसमुद्देशः, तत्र पुरोहितलक्षणमाह —

पुरोहितमुदितोदितकुलशीलं षडंगवेदे दैवे निमित्ते दंडनी-
स्याममिविनीतमापदां दैवीनां मानुषीणां च प्रतिकर्तारं
कुर्वति ॥ १ ॥

टीका—कुशलः (१), कस्मिन् षडंगे वेदे तथा दैवे उच्यतेः शास्त्रे,
निमित्ते उपातदर्शने, तथा दंडनीत्या च, इत्यभूतं पुरोहितं कुर्वति ।
तथा च गुरु —

दिव्यान्तरिक्षभामानामुत्पानानां प्रशान्तये ।

तथा सर्वापदां चैव कार्यो भूयः पुरोदिताः ॥ १ ॥

अथ राज्ञा मन्त्रि-पुरोहिताभ्यां यच्छत्ये तदह —

राज्ञो हि मन्त्रिपुरोहितां मातापितरौ, अतस्मां न केचुचिद्रा-
ञ्छितेषु विस्तरयेत् ॥ २ ॥

टीका—न निगतां कार्यो । केचुः । चाञ्छितेषु । किञ्चिदेषु ।
केचुचिन् समानेभ्यः । हि—यस्मात्सौ मातापितरौ, अतस्मां नानिच्छते ।
तथा च गुरु —

सर्मा मातृपितृभ्यां राज्ञो मन्त्रिपुरोहिता ।

अतस्मां चाञ्छितार्थेन कथंचिच्छिस्तयेत् ॥ १ ॥

अथ दैवीनां मानुषीणां चापदां स्वरूपमाह —

अमानुष्योऽश्विषमनिषमं मर्का दृमिधं मरसोपपानो जंतु-
सर्गो व्याधिभूतविश्वनाकिनीमर्षव्याजमूतकाभेत्यादः ॥ ३ ॥

टीका—अमानुष्योऽभिर्दिगुपातः, अदृश्यतिदृष्टी प्रसिद्धः, मरकः प्रचुरजनमृत्युः, दुर्भिक्षः, सस्योपघातः शलभादिजन्तूस्सर्गः, मानुष-
विक्रयः, व्याधिप्राचुर्यं, भूतप्राचुर्यं विनाशप्राचुर्यं, शाकिनीप्राचुदे,
व्यालानां नखायुधानां च प्राचुर्यं, मूर्खप्राचुर्यं, एता जनम्यापदा
देहिता मानुष्यर्थे ।

अथ कुमाते राजा यथा कार्यस्तथाह—

शिक्षालापक्रियाधूमो राजपुत्रः सर्वान् लिपिषु प्रमंख्याने
पदप्रमाणप्रयोगकर्मणि नीत्यागमेषु रत्नपरीक्षायां सम्भोगप्रह-
रणोपवाद्यविद्यासु च साधु विनेतव्यः ॥ ४ ॥

टीका—सम्यक् शिक्षापणीयः शिक्षालापक्रियासु जनसमाकर्मसु
क्षमः समर्थः पूर्वं कृत्या ततो राजपुत्रः पश्चात्सर्वान् लिपिषु शिक्षापणीयः
तथा प्रमंख्याने गणितविषये, तथा पदप्रमाणप्रयोगकर्मणि पदकर्म साहित्यं,
प्रमाणकर्म तर्कः प्रोच्यते, प्रयोगकर्म शब्दव्युत्पत्तिः कथ्यते, तथा नीत्या-
गमेषु नीतिशास्त्रेषु, तथा सम्भोगे वात्स्यायनादिवु, प्रहण्ये शस्त्रविद्यायां,
उपवाद्ये हस्तपदवाहनविद्यासु शिक्षापणीय इति । तथा च राजपुत्रः—

कुमाते यस्य धूर्तः स्यात्त विद्यासु विचक्षणः ।

तस्य राज्यं विनश्येत्तदप्राप्त्या नाथ स्वराजः ॥ १ ॥

अथ शिष्येण गुरोर्यथा वर्णितव्यं तदाह—

अस्वेतान्द्र्यमुक्तकारिण्यं नियमो विनीतता च गुरुपासन-
कारणानि ॥ ५ ॥

टीका—गुरुणामुपासनं गुरोरेव न च शिष्यगृहस्थेन उक्तकारिण्यं
आदेशः कार्यं, नियमो व्रतचर्या, विनीतता नमः एवम् । गुरुमन्त्रणेन
शिष्यस्य कारणानि । तथा च ॥ ५ ॥

युक्तमयुक्तं वा गुरुरेव जानाति यदि न शिष्यः प्रत्यर्थवादी १०
 गुरुजनरोपेऽनुत्तरदानमभ्युपपत्तिर्धौपधम् ॥ ११ ॥
 शत्रूणाममिमुखः पुण्यः स्नाथ्यो न पुनर्गुरुणाम् ॥ १२ ॥
 आराध्यं न प्रकोपयेद्यमावाधितेषु कल्याणशंसी ॥ १३ ॥
 बहुमिरुतं नातिक्रमिष्यं यदि नैहिकामुत्रिकफलविलोपः
 ॥ १४ ॥

सन्दिहानो गुरुमकोपयन्नापृच्छेत् ॥ १५ ॥
 गुरुणा पुरतो यथेष्टमासितेज्यम् ॥ १६ ॥
 अथ शिष्येणोपाध्यायसक्ताशय्या विद्याग्रहणं कर्तव्यं तदाह—
 नानभिवाद्योपाध्यायाद्विद्यामाददीतं ॥ १७ ॥
 टीका—नाददीतं न गृहीयात् । कां ! विद्यां । किं कृत्या ! अन-
 भिवाद्य अनमस्कारं कृत्वा । कस्मान्न गृहीयात् ! उपाध्यायात् सक्ता-
 शान् । यदा विद्याग्रहणं कियते ततोपाध्यायनमस्कारः कर्तव्यः । तदा
 च वशिष्ठः—

नमस्कारं विना शिष्यो यो विद्याग्रहणं क्रियात् ।
 गुरोः न सां न चाप्रोति शूद्रो येदभुनि यथा ॥ १ ॥
 अथ शिष्येणाभ्ययनकाले यत्कर्तव्यं तदाह—
 अध्ययनकाले व्यामहं पारिव्रजमन्यमनस्वतां च न
 भजेत् ॥ १८ ॥

१ गुरुवचनानुवचनं हनुमाह — । २ 'श्रवणं शरीरं वा दयात्' मुनिम
 पुरतः । ३ गुरुजनानां रोपं सति उपाध्यायः । ४ यथा । ५ 'क-दानमासी
 सति' मुनिपुत्रके । ६ गुरुनिदयः सु-पुत्रके । ७ मुनियुक्तं पु-पुत्रके ।
 ८ पृच्छेत् पु-पुत्रके । ९ आमाह्वयं पत्रेन वा सात्त्विकं प्रायः तद्वत् प्रक-यत् ।
 १० आमाह्वये यदागि जर्जनं वा वाजं विप्रस्य मम नरकं वा 'हृदयिक
 पाठं मूलं पुत्रके । ११ द्वादश पुत्रके पाठः । १२ आ-यद्वनकालेऽप्यस्य सु

टीका—न भजेत् न सेवेत । किं तत् ? व्यासं अन्यकृत्यं तं
 परिहृत्य चांचल्यं तथान्यमनस्कतामन्यचिततां । कस्मिन् ? अव्यय-
 काले पाठसमये । तस्मान् पठनसमये अन्यकृत्यं चापल्यं अन्यचिततां
 न कुर्यात् । तथा च गौतमः—

अन्यकार्यं च चापल्यं तथा चैवान्यचिततां ।

प्रस्तावे पठनस्यात्र यः करोति जडो भवेत् ॥ १ ॥

अथ शिष्येण सहाध्यायिषु यः कर्तव्यं तदाह—

सहाध्यायिषु बुद्ध्यतिशयेन नाभिभूयेत ॥ १९ ॥

टीका—नाभिभूयेत न पराभवं कुर्यात् । केपु ? सहाध्यायिषु सती-
 र्थेषु । केन ? बुद्ध्यतिशयेन मतिबाहुल्येन यदि पठनात्तस्य बुद्धि-
 यिका भवति अन्यच्छात्राणां सकाशात्तदा तद्रतौंश्छात्रान् न पुराभवेत्
 न पराभवयुक्तान् कुर्यात् । तथा च गुरुः—

न सहाध्यायिनः कुर्यात्पराभवसमन्वितान् ।

स्वबुद्ध्यतिशयेनात्र यो विद्यां याञ्छति प्रभोः ॥ १ ॥

अथ छात्रेण गुरोर्यत्कृत्यं तदाह—

प्रज्ञयातिशयानो न गुरुमवज्ञायेत ॥ २० ॥

टीका—नावज्ञायेत नाज्ञालोपेनायुक्तं गुरुं कुर्यात् । छात्रः ।

कं ? गुरुं । किमिति ? प्रज्ञयातिशयानं गुरोः ।

अबुद्धिः

संजातः सन्, यदि कश्चिद्गुरोः सकाशाच्छात्रस्य यः

बुद्धि-

भवति तदा तथा गुरोर्नावलेपः कार्यः । तथा च भू-

बुद्ध्यधिकस्तु यच्छात्रो गुरुं पश्येद्वा

स प्रेत्य नरकं याति पाप्यतामिह भू-

अथ यो मातृपितृभ्यामुपरि पुत्रः शरो भवति स

ह—

टीका — ग शिष्यो ब्रह्मचारिणि गुरुपुत्रे बान्धव इव स्निजेत् स्नेहं
 पुणः । यथा बान्धवो भ्राता भ्रातुः स्नेहं करोति तथा शिष्योऽपि
 ब्रह्मचारिणः । तथा च मनुः—

यथा छातुः प्रकर्तव्यः स्नेहोऽत्र निषण्धन्त ।

तथा स्नेहः प्रकर्तव्यः शिष्येण ब्रह्मचारिणः ॥ १ ॥

अथ ब्रह्मचारिण्युपमाह—

ब्रह्मचर्यमापोदशाद्वर्षान्ततो गोदानपूर्वकं दारकर्म चास्या ॥ २८ ॥

समविर्धः महार्घान् सर्वदाभ्यस्येत् ॥ २९ ॥

गृहदाः मित्यमागन्तुकानां पुरतो न प्रकाशयेत् ॥ ३० ॥

परगृहे सर्वोऽपि विक्रमादित्याषते ॥ ३१ ॥

म सन्तु महान् यः स्वकार्येष्विव परकार्येषुत्महते ॥ ३२ ॥

परकार्येषु को नाम न शीलः ॥ ३३ ॥

राजामसः को नाम न माधुः ॥ ३४ ॥

अर्थपरेष्वनुनयः केवलं दैन्याय ॥ ३५ ॥

को नामार्थार्थी प्रणमिन तुप्यति ॥ ३६ ॥

आश्रितेषु कार्यतो विशेषकरुणं प्रियदर्शनालापनाभ्यां सर्वत्र

ममभूतिमन्त्रं वर्धयत्यनुरञ्जयति च ॥ ३७ ॥

तनुंधनादर्थग्रहणं मृतमाग्नमिव ॥ ३८ ॥

अप्रतिविधानरि कार्यनिवेदनमरण्यरुदितमिव ॥ ३९ ॥

१ श्रीवाङ्मय मनुस्मृती नास्ति । २ म ताक्षप्रमिताऽय द्वितीय पादः,
 अष्टादशवर्षाणि । ३ ततो गोदान । नित्यं बान्धव ममविने इत्यादि पाठः
 सु-पुस्तक । ४ विक्रमादित्यो नाम प्रसिद्धा राजा लङ्कावसति । ५ 'स्वकार्येष्विव'
 सु-पुस्तक नास्ति । ६ स्वकार्येषु सु-पुस्तक । ७ नेति त्रिलोकमूल-पुस्तके
 नास्ति । ८ प्रणयेन सु-पुस्तक । ९ 'विशेषकारणोऽपि दर्शनप्रियालापनाभ्यां'
 सु-पुस्तक । १० अरुणधनात् दृष्टिद्विगुणं ।

१२ सेनापति-समुद्देशः ।

अभिज्ञानाचारप्रदानुसंगमत्यन्तान्वयार्थमप्यस्यः प्रभारान्
 यद्व्याप्यपरिवारो निरिलनयोपायप्रयोगनिष्ठः समभ्यस्तम-
 मन्तवाटनापुपुदन्तिपिभाषात्मपरंस्थितिः सकलतं प्रमामन्नामि-
 मतः संप्राप्तिकामिगमिषाकारशरीरं भर्तुरभ्युदयदेशदिनशृतिषु
 निर्विकल्पः स्यामिनात्ममन्मानार्थप्रतिपत्तिराजचिह्नः संभावितः
 गर्भेनापागमदः स्वः परंभाष्यप्रकृतिरिति सेनापतिगुणाः
 ॥ १ ॥

स्वाजितत्वमाद्यत्वं व्यमनिता धृष्यपप्रसामोपहतत्वं तत्रा-
 प्रतीकाः गर्भः मह वैरविरोधो परपरिवादः पर्यभाषित्व-
 भनुचितप्रतीतिविभाषित्वं स्यात्तंभ्यात्मसंभावनोपहतत्वं स्वामिका-
 र्यव्यमनोपेक्षा महकारिभूतसार्पचिनागो राजदिनशृतिषु चर्यो
 सुव्यवमिति सेनापतिदोषाः ॥ २ ॥

स चिरं जीरी राजपुरुषो यो नगरनापित ह्वानुशृतिपरः
 सर्वागु प्रकृतिषु ॥ ३ ॥

इति सेनापतिमुद्देशः ।

१ सत्यशब्दो मु-पुस्तके नास्ति । २ पराजानमिति मु-पुस्तके । ३ भर्तुरादे-
 षानुदय मु-पुस्तके । ४ इतिषु । अस्यापूके 'अप्रभाववान्' इति पाठ
 मु-पुस्तके । ५ वैर शब्दो नास्ति मु-पुस्तके । ६ न मु-पुस्तके । ७ आत्मनः-
 मु-पुस्तके । ८ 'चर्योऽत्र' मु-पुस्तके ।

स्वयमग्रतः परेणोक्तमनिष्टं सहेतु ॥ १० ॥

गुरुषु स्वामिषु वा परिवर्दि नास्ति धान्तिः ॥ ११ ॥

स्थित्वापि यास्यतोऽवस्थापनं केवलमपक्षपहेतुः ॥ १२ ॥

धीगुरुषुपरिवारितः शूरगुरुषुपान्तरितान् परदूतान् पश्येत् ॥ १३ ॥

श्रूयते हि किञ्च चाणस्यस्तीक्ष्णदूतप्रयोगेणैकं नन्दं जघा-
नेति ॥ १४ ॥

शत्रुप्रहितं शासनमुपायनं च स्वैरपरीक्षितं नोपाददीत ॥ १५ ॥

श्रूयते हि स्पर्शविषयामिताद्भुतवस्त्रोपायनेन करहाटपतिः
कण्टभो वसुनामानं राजानमाशीविषविषधरोपेतगल्नकरंडकप्राभृ-
तेन च कर्वालः करालं जघानेति ॥ १६ ॥

महत्पपकारेऽपि न दूतमुपहन्यान् ॥ १७ ॥

उद्धृतेष्वपि शस्त्रेषु दूतमुरा व गजानः ॥ १८ ॥

तेषामन्त्यावसायिनोऽप्यवध्याः किमङ्ग ! पुनर्ब्राह्मणः ॥ १९ ॥

वध्यांभावाद्भूताः सर्वमेवं जल्पन्ति ॥ २० ॥

कः सुधीर्दूतवचनात्परोत्कर्षं स्वात्मापकर्षं च मन्येत ॥ २१ ॥

तद्दाशपरहस्यपरिव्रानार्थं परदूतः श्रीमिरुभयपेतनैस्तद्गुणा-
चाग्शीलानुवर्तिमिवा प्रणिधानव्यः ॥ २२ ॥

चन्वारि घेष्टनानि गङ्गमुद्रा च प्रतिपक्षलेग्यानाम् ॥ २३ ॥

इति ५१ समुरेशः ।

१ परिवर्दि सु । २ महत्पपकारे दूतमपि इत्येतत् सु पुनरुक्ते ।—

३ चाण्डाला अपि दूतयेनायताधिदक्षता । ४ अवस्थापनादप्य-
मु-पुनरुक्ते । ५ वध्यामावादिनि सु पुनरुक्ते । ६ भवव्रजस्य इति पठ्यते सु-
७ वध्यामावादिनाम् सु पुनरुक्ते ।

- परमर्मज्ञः प्रगल्भश्चात्रः कापटिकः ॥ ९ ॥
 यं कंचन समयमास्थाय प्रतिपन्नाचार्याभिप्रेतः प्रभूतान्तेवासी
 प्रज्ञातिशययुक्तो राजपरिकल्पितवृत्तिरुदास्थितः ॥ १० ॥
 गृहपतिर्वदेदिको ग्रामकूटश्रेष्ठिर्ना ॥ ११ ॥
 बांशप्रतविद्याभ्यां लोकदंभहंतुस्तापसः ॥ १२ ॥
 कितवो घृतकारः ॥ १३ ॥
 अल्पाखिलशरीरावयवः किरातः ॥ १४ ॥
 रमपट्टिको गलत्रोटिकः ॥ १५ ॥
 अद्वितुंगिकः सर्पक्रीडाप्रसरः ॥ १६ ॥
 शौंडिकः कल्पपार्लः ॥ १७ ॥
 शौमिकः क्षपायां कांडपटावरणेन नानारूपदर्शी ॥ १८ ॥
 पाट्यारथोरो र्बन्दिकारो वा ॥ १९ ॥
 व्यसनिनां प्रेयणाज्जीवी विटः ॥ २० ॥
 सर्वेषां प्रहसनपात्रं विदूषकः ॥ २१ ॥
 कामशास्त्राचार्यः पीठमर्दकः ॥ २२ ॥
 * गीताङ्गपटप्रावरणेन वृत्त्यवृत्याज्जीवी नर्तको नाटिकामि-
 नयगङ्गनर्तको वा ॥ २३ ॥
 रूपाज्जीवावृत्त्युपदेष्टा गायकः ॥ २४ ॥

१ प्रत्येक शब्दानां परिभाषामाह । २ राज्ञा मु—पुस्तके । ३ जिह्मवत् मु—
 पुस्तके । ४ पटमेनेन पटविषया क । ५ अधिशातिकसमपट्टिको दृढाग्रविशुद्ध
 विप्रपट्टदणो मुद्रित पुस्तके पाठ । ६ सूत्रमिदं लिखित-मूल पुस्तके नास्ति ।
 ७ मण्डपद्वय रक्षामो 'दलार' इति भाषायां । ८ नानाविधनामरूपदर्शी
 मु—पुस्तके । ९ बन्धिकारो वा मु—पुस्तके । १० बन्धिकारो वा मु—पुस्तके ।
 ११ प्रेयणाज्जीवी मु पुस्तके । १२ पुष्पमध्यगत नि सूत्राणि लिखित मूल पुस्तके
 न उचित मुद्रित पुस्तकाख्ययोजितानि । १३ वेदवा ।

१५ विचार-समुद्देशः ।



नाविचार्य किमपि कार्यं कुर्यात् ॥ १ ॥

प्रत्यक्षानुमानागमैर्यथास्थितवस्तुव्यवस्थापनहेतुर्विचारः । २ ।

स्वयं दृष्टं प्रत्यक्षं ॥ ३ ॥

न ज्ञानमात्रात्प्रेक्षावता प्रवृत्तिर्निवृत्तिर्या ॥ ४ ॥

मयं दृष्टेऽपि मनिर्मुपति संशये विपर्यस्यति वा किं पुनर्न
परोपदिष्टे ॥ ५ ॥

स सत्तु विचारज्ञो यः प्रत्यक्षेणोपलब्धमपि गांधु परीक्षानु-
तिष्ठति ॥ ६ ॥

अतिरम्भात् कृतानि कार्याणि कं नामानमनर्थं न जन-
येति ॥ ७ ॥

अविचार्याचरिते कर्मणि पश्चात्प्रतिविधानं गतोदरे संतुल्य-
नमिव ॥ ८ ॥

कर्मणु कृतेनाकृतावेक्षणमनुमान ॥ ९ ॥

संभारितकदशां निपुन दद्यात् ॥ १० ॥

१ प्रमाणं तु पुनः २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

१६ व्यसन-समुद्देशः ।



व्यसनीत्यागतसत्येनं पुरुषं श्रेयस इति व्यसनं ॥ १ ॥

पुनर्न द्विविधं महज्जमाहार्यं च ॥ २ ॥

गहजं प्यमने धर्मसंभूताद्भुताद्भुदयहेतुभिर्गर्भजनितमहा-
प्रत्यवायप्रतिपादनरूपाग्न्यान्तर्यामिण्युत्पन्नं प्रशमयेत् ॥ ३ ॥

शिष्टसंगमदुर्जनासंगगाभ्यां पुगन्तनमहापुरुषचरितोत्थिता-
मिध कथाभिगदायं प्यमनं प्रतिबन्धीयात् ॥ ४ ॥

श्रियमनिमज्जमाने भवत्परम्यं तृतीया प्रकृतिः ॥ ५ ॥

गौम्यधातुक्षयः सर्वधातुक्षयं करोति ॥ ६ ॥

पानशोण्डश्चित्तध्रमात्मातग्न्यभिगच्छति ॥ ७ ॥

मृगयाम्निः स्नेनव्यालद्विषदायादानामामिपं पुरुषं करोति
॥ ८ ॥

नाम्यहृत्यं मृतामक्तस्य मातर्यपि हि मृतायां दीव्यत्येव
 कितरः ॥ ९ ॥

पिशुनः भवेत्पामविश्रामं जनयति ॥ १० ॥

द्विवाक्यापः गुणव्याधिव्यालानामुत्थापनदंडः मकलकार्या-
न्तगयथ ॥ ११ ॥

न पश्यन्निवादान्तरा गर्वादिद्वेषणभेषजमस्मि ॥ १७ ॥

तैर्यत्रिकामक्तिः कं नाम न प्राणार्थमानविजयने ॥ १३ ॥

मप्राधान्यविधायकमप्यनर्थं विगमयति ॥ १४ ॥

१ सुखिर्मादु पुरुष । २ दण्ड । ३ मणिर्मन्त्रमभ्यासः । मु-पुस्तके ।

* पुरषमिति सू-पुस्तके नास्ति । * अथ सूत्रस्य स्थान इदं सूत्रं सू-पुस्तके

‘इथादृशा नाविधाय कस्यचनर्थं विमेन यतावधानम्’ ।

अतीवेर्प्यालुं स्त्रियस्त्यजन्ति निमन्ति वा पुण्यं ॥ १५ ॥

परपरिग्रहोभिगमः कन्यादूषणं वा साहसं दशमुखदाण्डि-
विनाशहेतुः सुप्रसिद्धमेव ॥ १६ ॥

यत्र नाहमित्यव्यवसायः साहसं ॥ १७ ॥

अर्थदूषणः कुबेरोऽपि भवति मिथ्यामाजनं ॥ १८ ॥

अतिव्ययोऽपात्रव्ययश्चार्थस्य दूषणं ॥ १९ ॥

हर्षामर्षाभ्यामकारणं तृणाङ्कुरमपि नोपहन्यात् किं पुन-
र्मनुष्यं ॥ २० ॥

श्रूयते हि निष्कारणं भूतायमानिनां वातापिरिल्विश्रासुरा-
पगस्त्यस्यात्यासादनादिनेशतुरिति ॥ २१ ॥

यथादोषं कोटिरपि गृहीता न दुःखायते ॥ २२ ॥

अन्यायेन तृणशलाकापि गृहीता प्रजा भेदयति ॥ २३ ॥

तरुच्छेदेन फलोपभोगः सकृदेव ॥ २४ ॥

प्रजाविभवो हि स्वामिनो द्वितीयं भाण्डागारमनो युक्ति-
स्तैमुपयुञ्जीत ॥ २५ ॥

गर्जा परिगृहीतं तृणमपि [गृहीतं परेण] काञ्चनीभवति
जायते च पूर्वमंचितस्यार्थस्यापहायः ॥ २६ ॥

१ परिग्रहोभिगमः मू—पुस्तके । २ साहसं सुप्रसिद्धमेव दशमुखदाण्डि-
विनाशहेतुः गु—पुस्तके पाठः । ३ अर्थदूषणं मू—पुस्तके । ४ अकारणं परं
गु—पुस्तके नास्ति । ५ नोपहन्यात् मू—पुस्तके । ६ भेदयति मू—पुस्तके ।
७ तमपि मुञ्जीत मू—पुस्तके । ८ राजपरिगृहीतं तृणमपि काञ्चनीभवति मू—
पुस्तके इत्येव सूत्रं । ९ कस्यस्य पाठः पुस्तकस्य एव । नेदं मूत्रं मू—पुस्तके
अस्य सूत्रस्य स्थाने ' येन हृदयसन्तापो जायते तद्वचनं हि वाक्यार्थः ' ।

वाक्पारुष्यं शस्त्रपातादपि विनिष्यते ॥ २७ ॥

शान्तियोग्यवृत्तविद्याविभवानुचितं हि वचनं वाक्पारुष्यं ॥ २८ ॥

स्त्रियमपत्यं भृत्यं वा तथोक्त्या विनयेन ग्राहयेद्यथा हृदयप्र-
विष्टाच्छत्यादिव वचनतो न ते दुर्मनायन्ते ॥ २९ ॥

ययः परित्यक्तोऽर्थहरणं वा क्रमेण दंडपारुष्यं ॥ ३० ॥

एकेनापि व्यसनेनोपहतधत्तुर्गङ्गवानपि राजा विनश्यति किं
पुनर्नाष्टादशमिः ॥ ३१ ॥

इति व्यसन-समुद्देशः ।



राजाज्ञावरूढस्य तदाज्ञाप्रतिदाने उत्तमः साहसदण्डः ॥२८॥

सम्बन्धाभावे तदातुश्च ॥ २९ ॥

परमर्मस्पर्शकरमश्रद्धेयमसत्यमतिमात्रं च न भाषेत ॥३०॥

वैपमाचारं वानभिज्ञातं न भजेत् ॥ ३१ ॥

प्रभो विकारिणि को नाम न विकुस्ते ॥ ३२ ॥

अधर्मपरे राज्ञि को नाम नाधर्मपरः ॥ ३३ ॥

राज्ञावज्ञातो यः स सर्वैरवज्ञायते ॥ ३४ ॥

पूजितं हि पूजयन्ति लोकाः ॥ ३५ ॥

प्रजाकार्यं स्वयमेव पश्येत् ॥ ३६ ॥

यथावसरमप्रतीहारसंगं द्वारं कारयेत् ॥ ३७ ॥

दुर्दर्शो हि राजा कार्याकार्यविपर्ययासमासन्नः कार्यतेऽतिसंवी-
यते च द्विपद्भिः ॥ ३८ ॥

वैद्येषु श्रीमतां व्याधिवर्धनादिव नियोगिषु भर्तुर्व्यसनवर्धना-
दपरो नास्ति जीवनोपायः ॥ ३९ ॥

कार्यार्थिनो लंघो लुञ्चति ॥ ४० ॥

निशाचैरगणां भूतबलिं न कुर्यात् ॥ ४१ ॥

लंघो हि सर्वपातकानामागमनद्वारम् ॥ ४२ ॥

- १ दानेन मु—पुस्तके । २ उत्तमसाहसो दण्डः मु—पुस्तके । ३ दण्डपस्य अपराधसम्बन्धाभावे । ४ वानभिज्ञातु मु—पुस्तके । 'वैपं समाचारे वानभि-
ज्ञानप्र तं भजेत्' मु—पुस्तके । ५ प्रभवो विकारिणो नाम न विकुस्ते मु—
पुस्तके । ६ सर्वैरवज्ञायते मु—पुस्तके । ७ 'पूजितं हि' नि-मु—पुस्तके
नास्ति । ८ यथावसरमसंगद्वारं मु—पुस्तके । ९ कार्यविपर्ययास मु—पुस्तके ।
१० कार्यार्थिनः लंघलुञ्च मु—पुस्तके । ११ लंघवरो मुद्रित-पुस्तके ।

मातुः स्नानमपि कुर्वन्ति लंघोपजीविनः ॥ ४३ ॥

लंघेन कार्यकारिभिर्गर्भयन्त्यामी विक्रीयते ॥ ४४ ॥

प्रामादविध्वंसनेन लोडकीलकलाम इव लंघेन राजोर्ज्ज्वलार्भः
॥ ४५ ॥

राज्ञो लंघेन कार्यकरणं कस्य नाम कल्याणम् ॥ ४६ ॥

देवतापि यदि चोरेषु मिरति कुतः प्रजानां कुशलम् ॥ ४७ ॥

लंघेनार्थोपायं दर्शयन् देशं कोशं मित्रं तंत्रं च भक्षयति ४८

राज्ञोऽन्यायकरणं ममुद्रस्य मर्षादालंपनं, आदित्यस्य तमः-

पोषणं, मातुः स्वापत्यभक्षणमिति कलिकालविजृम्भितानि ॥ ४९ ॥

राजा कालेन कारणं ॥ ५० ॥

न्यायतः परिपालिके राज्ञि प्रजानां कामदुषा भवन्ति सर्वा

दिशः, काले च वर्पति मघवान्, मर्वाधेतयः प्रशाम्यन्ति ॥ ५१ ॥

राजानमनुवर्तन्ते मर्षेऽपि लोकपालास्तेन मध्यममप्युत्तमं

लोकपालं राजानमाहुः ॥ ५२ ॥

अव्यसनेन क्षीणधनान् मूलधनप्रदानेन कुड्मरिणैः प्रतिसंभा-

वयेन् ॥ ५३ ॥

राज्ञो हि ममुद्रावधिर्मर्ही मृदुदुवं कलत्राणि तु वंशवर्धनं

क्षेत्राणि ॥ ५४ ॥

१ लयन्ति मु-पुस्तके । २ कार्याभिरुद्ध स्वामी मु-पुस्तके । ३ प्रमादनेन मू-
पुस्तके । ४ लोभ मू-पुस्तके । ५ कायकरणे मू-पुस्तके । ६ चोराणां
मु-पुस्तके । ७ राज्ञा, भयनेनैव, पाषणमेव भक्षणमिव मु-पुस्तके । ८
शोषण मू-पुस्तके । ९ इति शब्दा म-पुस्तके नास्ति । १० विरो-
धालस्य मु-पुस्तके । ११ 'भवन्ति सर्वा' मु-पुस्तके नास्ति । १२ 'वृ-
द्धिजन प्रति' मु-पुस्तके नास्ति । १३ तुनास्ति मु-पुस्तके ।

१८ अमात्य-समुद्देशः ।



चतुरंगपूतोऽपि नानमात्यो गजास्ति किं पुनरन्यः ॥ १ ॥

नैकस्य कार्यमिदिरस्ति ॥ २ ॥

नयैकचक्रं परिभ्रमति ॥ ३ ॥

किमर्थतः सेन्यनोऽपि यद्विज्यतति ॥ ४ ॥

स्यकर्मोत्कर्षोपकर्षयोर्दानमानाभ्यां सम्पत्तिविपत्ती येषां तेऽ-

मात्याः ॥ ५ ॥

आयो व्ययः म्यामिग्धा तंत्रपोषणं चामात्यानामधिकारः

॥ ६ ॥

आयव्ययमुख्ययोर्मुनिरुमण्डलुनिदर्शनमेव ॥ ७ ॥

आयो द्रव्यस्योत्पत्तिमुखम् ॥ ८ ॥

यथाम्यामिशासनमर्थस्य विनियोगो व्ययः ॥ ९ ॥

आयमनालोच्य व्ययमानो वैश्ववर्णोऽप्यवश्यं श्रमणापत-

त्य ॥ १० ॥

राज्ञः शरीरं धर्मः कलत्रमपत्यानि च म्यामिशब्दार्थाः ॥ ११ ॥

तंत्रं चतुरङ्गचक्रम् ॥ १२ ॥

१ पुनरेकं मु-पुस्तकः । - अस्ति मु-पुस्तकं नाम्नि । २ किं प्रशतः मु-पुस्तकः । ३ कथाभ्यां मु-पुस्तकः । ४ यथा प्रसूतं गच्छति अथवा विस्तृतमुख्यं मु-पुस्तकमात्रं कमहदुर्लभं ग्रहः । वर्यं चरति यिमां च मूढमनसि कारयेत् तेन मुखेन राजे धनिर्जनं विदुर्जनं तथा मदरा प्रमाणेनाय कृत्वा अल्पप्रमाणेन व्ययं कालं इत्यर्थः । ५ अथवा तत्रानि च मु-पुस्तकं नाम्नि । धर्मणाते धमणा निपुस्तकद्वयवति वरिषा नवनात्यय ७ वाक्यं राज्ञः मु-पुस्तकः ।

सम्यन्धस्त्रिविधः श्रौतो मौर्यो यौनश्चेति ॥ २६ ॥
 सहर्दीक्षितः सहाध्यायी वा श्रौतः ॥ २७ ॥
 मुखेन परिज्ज्ञातो मौर्यः ॥ २८ ॥
 यौनेर्ज्ञातो यौनेः ॥ २९ ॥
 वार्षिकमम्यन्धे नास्ति सम्यन्धान्तरानुवृत्तिः ॥ ३० ॥
 न तं कमप्यधिकुर्यात् सत्यपराधे यमुपहृत्यानुश्रयीत ॥ ३१ ॥
 मान्योधिकारी राजाज्ञांमवज्ञाय निरवग्रहश्चरति ॥ ३२ ॥
 चिरसेवको नियोगी नापराधेष्वंशकने ॥ ३३ ॥
 उपकर्ताधिकारस्य उपकारमेव ध्वजीकृत्य सर्वमवदु-
 ष्यति ॥ ३४ ॥
 महर्षांगुकीडितोऽमात्योऽतिपरिचयात् स्वयमेव राजा-
 यते ॥ ३५ ॥
 अन्तर्दुष्टो निपुक्तः सर्वमनर्थमुत्पादयति ॥ ३६ ॥
 शङ्कुनिशकटालावत्र दृष्टान्तो ॥ ३७ ॥
 गोजधिकारी चिरं नन्दति यः स्वामिप्रसादेन नोत्मेक-
 यति ॥ ३८ ॥
 गुह्यदि नियोगिन्यवश्यं भवेति धनमिश्रत्वनाशः ॥ ३९ ॥
 मृतस्य नियोगे भर्तुर्धर्मार्थयज्ञमां गन्देहो निधितो धानर्थ-
 नरकपातो ॥ ४० ॥

१ स बन्धु मु । २ मेशा मु । ३ पित्रिणासदात्ताय । ४ मु । ५
 यमाप्रतिपत्ता मेशा मु । ६ मुखमेव वि-मु पुस्तक जगत्त मु पुस्तकाम्भदा
 । ७ वाचिके सम्बन्धो हवा मु । ८ श्रौतः । ९ कर्माधिकारिक पुर्वात् मु ।
 तुष्टादेव मु । १० राजात्मकः मु । ११ नापराधः । १२ यः
 अधिकारी मु । १३ नरकमार्थः तुष्टादेव मु । १४ मु पुस्तक जगत्त

आयन्ययविप्रतिपत्तां कुशलकरणकार्यपुरुषेभ्यस्तद्विनिश्चयः
॥ ५४ ॥

नित्यपरीक्षणं कर्मविपर्ययः प्रतिपत्तिदानं च नियोगिष्वयं-
ग्रहणोपायाः ॥ ५५ ॥

भाषीडिता नियोगिनो दृष्टव्रणा इवान्तःसारमुद्गमन्ति ॥ ५६ ॥
पुनः पुनरभियोगो नियोगिषु महीपतीनां वंगुधारा ॥ ५७ ॥
सकृन्निष्पीडितं स्नानवस्त्रं किं जहाति मार्द्रताम् ॥ ५८ ॥
देशमार्पीडयन् बुद्धिपुरुषकाराभ्यां पूर्वनिबन्धमधिकं कुर्वन्-
धमानो लभेत् ॥ ५९ ॥

यो यत्र कर्मणि कुशलस्त्वं तत्र नियोजयेत् ॥ ६० ॥
न खलु स्वामिप्रसादः सेवकेषु कार्यसिद्धिनिबन्धनं किन्तु
बुद्धिपुरुषकारा वा शास्त्रविदप्यष्टकर्म कर्मसु विषादं गच्छेत्
॥ ६१ ॥

अनिवेद्य मर्तुर्न कंचिदात्मं कुर्यादन्यत्रापत्प्रतीकारेभ्यः ॥ ६२ ॥
सहस्रोपचितार्थो मूलधनमायेणावशेषवित्तव्यः ॥ ६३ ॥
परस्परकलहो नियोगिषु भ्रुभुजां निधिः ॥ ६४ ॥
नियोगिषु लक्ष्मीः द्वितीयगणां द्वितीयः कोशः ॥ ६५ ॥
सर्वसंग्रहेषु धान्यमंग्रहो महान् ॥ ६६ ॥
यच्चिबन्धनं जीवितम् ॥ ६७ ॥

न गलु मृगे प्रक्षिप्तं मन्कगेति द्विषणं प्राणघातं यथा
धान्यम् ॥ ६८ ॥

१ बांश्चति मू पुस्तक नास्ति । २ कोशवत् । ३ अस्मदस्य द मृग मुद्दि-
मुस्तके । मूल-धनवद्विगुणाधिको नामा माण्डस्यो वणिजा भवति साह ।

४ अस्मादस्य । मकल प्रक्षिप्त इत्यधिक पाठ मु—पुस्तक । ५ अत्र द स्थाने

सर्वधान्येषु चिरंजीविनः कोद्रवाः ॥ ६९ ॥
 अनत्रं नवेन वर्धयितव्यं व्यधितव्यं च ॥ ७० ॥
 लवणसंग्रहः सर्वरसानामुत्तमः ॥ ७१ ॥
 सर्वरसमप्यलवणमन्नं गोमयायते ॥ ७२ ॥

इत्यमृत्य-समुदेशः ।

जनपद-समुद्देशः ।

पशुधान्यहिरण्यसम्पदा राजते शोभते इति रांष्ट्रं ॥ १ ॥
मर्तुर्दण्डकोशवृद्धिं दिशति ददातीति देशः ॥ २ ॥

विविधवस्तुप्रदानेन स्वामिनः सन्ननि गजान् वाजिनश्च वि
रसिनोति बभ्रातीति विषयः ॥ ३ ॥

सर्वकामदुष्पात्वेन पंतिहृदयं मंडयति भूषयतीति मण्डलं ॥ ४ ॥
जनस्य वर्णाश्रमलक्षणस्य द्रव्योत्पत्तेर्वा पदं स्थानमिति

जनपदः ॥ ५ ॥

निर्जपतेरुत्कर्षजनकत्वेन शत्रुहृदयं दारयति भिनत्तीति
दरेत् ॥ ६ ॥

आत्मसमृद्ध्या स्वामिनं सर्वव्यसनेभ्यो निगमयति निर्गम
यतीति निगमः ॥ ७ ॥

अन्योन्यरक्षकः सन्याकरद्रव्यनागधनवानतिवृद्धानतिहीन-
ग्रामो बहुसारविचित्रधान्यपण्योत्पत्तिरदेवमावृकः पशुमनुष्य-
हितः श्रेणिशूद्रकर्षकप्राय इति जनपदस्य नः

विषयः

जीतिः
शः

१ राजा मु । २ दुष्पात्वेन मु । ३ मरयति मु । ४ जनपदे मु । ५
दारय मु । अर्थ मु-प्राप्तकं नास्ति । ७ निगम मु । ८ प्राणिशूद्रानामाद्यो
बहुसारधनिना धान्यहिरण्यपण्यात्पत्तिः मु । ९ कनाधार मु ।

मयांशानिब्रमो यस्यां भूमा रात्रः प्रजायते ।

नगृह्यापि य म्ना द्दम्येजोयनेऽरण्यमग्निमा ॥ १ ॥

अथ प्रजानां वर्धनोपायो यथा भवति तदाह—

क्षीणजनगम्भारनं तृणशलाकाया अपि स्वयमग्रहः कदाचि-
त्किंचिदुपजीवनमिति परमः प्रजानां वर्धनोपायः ॥ २० ॥

टीका—वर्धनोपाय वृद्धिकारी उपाय । फानां ? प्रजानां । क्षीणजनस-
म्भावने तावन् क्षीणां दुर्बलानां य. कुटुम्बी, सम्भावने उदारकदानं प्रतिशत-
कृद्वया । तथा महोऽग्रहणे कस्यास्तृणशलाकाया अपि । आस्तां तावत्,
कदाचिच्छस्मिन् काले किंचिदुपजीवने दण्डग्रहं स्लोक ग्राह्यं येन स्वयमु-
पजीवनं निराहणं भवति इत्यनेन त्रिविधेन परमं दृष्टव्यं वर्धनोपायः
प्रजानामिति । तथा च नारदः—

चिन्तनं क्षणपृष्ठानां स्वप्नादस्य पियर्जनम् ।

पुनरुत्थं च संज्ञकानां परमं वृद्धिकारणं ॥ १ ॥

अथ न्यायेन रक्षिता पिण्डा राज्ञो यादवभवति तदाह—

न्यायेन रक्षिता पण्यपुटभेदिनी पिण्डा राज्ञां कामधेनुः २१

टीका—कामधेनुर्भवति वाम्बिष्ठप्रशस्ती भवति । कासी ? पिण्डा शु-
क्लस्थानं । किञ्चिदपि पिण्डा ? पण्यपुटभेदिनी पण्यानि वणिजजनानां शु-
कुमहिगुवस्त्रादीनि कर्माणकानि तेषां पुटस्थानानि भिद्यन्ते यस्या मा
पण्यपुटभेदिनी । किञ्चिदपि सती न्यायकामधेनु । (रक्षिता) परिपालिता
मती । केन कृत्वा ? न्यायेन नीया, किञ्चिदपि रक्षणं तस्या अधिकशुक्ल-
ग्रहणं तथा चारादिभिरुत्थने तस्या न स्वयमेव दातव्यं । तथा च शुकः—

प्राहा नैयायिकः शुक्लं चौर्यंश्चाहृत भवेत् ।

पिण्डाया भूभुजा वयं वणिजा नग्न्यकोशतः ॥ १ ॥

अथ राज्ञा चतुर्गवल्हेनयो ये भवन्ति तानाह—

अथान्येषां भूदानानां स्वरूपमाह

क्षेत्रवप्रखण्डगृहधर्मायतनानामुत्तरः पूर्वं बाधितः (घने)
पुनरुत्तरं पूर्वः ॥ २५ ॥

टीका—एतेषां पंचप्रकारणां भूदानानां योऽयं स्याद्भूदानविषयस्योक्तो
द्वितीयः स पूर्वं प्रथमे आवाधयेत् छप्पतां नयेदित्यर्थः । न प्रथमो द्वितीयः ।
एतदुक्तं भवति क्षेत्रदानात्परे सदागदानं तस्मात्संज्ञदानं तस्माद्गृहदानं तस्मा-
द्धर्मायतनदानं, तत्सारदानां देवायतनपरमित्यर्थः (?) । तथा नोक्तान्
पूर्वं । सर्वेषामुत्तरः प्रासादः तस्मात्सर्वगृहं तात्पा (?) (तस्मादुत्तरं गृहं) ।
तस्मात्खण्डं तस्माद्द्वारः तस्मात्खोलघुः (क्षेत्रं) बाधय्यः समुत्तये ।

इति जनपदमसुरेशः ।

प्रतिष्ठापितं तत्र यत्र दुर्गे शुद्धादिव्यक्तिताः ।

अथुता विःप्रकृतिः यत्र तदुर्गे तत्रैव तदर्थः ॥ १ ॥

अथ दुर्गादिवदे दृष्टान्तमाह —

दुर्गे किं तृणादिपतिः पण्यपुंटादिभिः शुभैः विप्रवृत्ते
जगद् ॥ ८ ॥

टीका—तत्र वि = भूयते तृणादिपतिर्गो राजा य जगद्, कि
तत्र ? विप्रवृत्ते । के. कदा ? भूयते । विविदिष्टः ? पण्यपुंटादिभिः
पण्यपुत्र विद्यापतिना स्थापिता मोक्षते ताता मध्ये प्रसिद्धा तादृशान्
पुत्रान् प्रभृत्यनने शक्तिं निष्ठापयित्वा दुर्गादिषु च स्थापय जगद् ।
अथ यं दुर्गा —

निष्ठापयति यो राजा वर्तिष्याय दान्तावता ।

व्यतिष्यति यजिज्ञातां य तत्रैव दुर्गे तत्रैव तदर्थः ॥ १ ॥

अथान्यदपि दृष्टान्तमाह —

सेवकद्रुपः सेवार्थं दानुषा मद्राण्यं वर्तयतिमिति ॥ ९ ॥

टीका—तथा सेवकद्रुपः ये पुत्रा नियोज्यतां सेवेनाभ्यासेन ये
मद्रं धरन्ति ते, सेवार्थं वर्तयन्ते दानुषा प्रसिद्धा तैर्मद्राण्यं वर्तय-
ति भ्यापय स्वभावमिति वर्तय दत्ता एव हा वा परदेशगतानां सेवकानां
विशेषो न वर्तय । तथा यं ज्ञेयमिति —

वयदेवात्रेषु भूयेषु विद्वान् यो नृपो मज्जेत् ।

यं दुर्गं आशमायति ज्ञिमिनिस्त्रिदशमप्रधीम् ॥ १ ॥

इति दुर्गासंस्कृतः ।

टीका—कोशशुद्धिं नयन् तापनमर्थमुपयुज्यते । एतदुक्तं भवति कोशस्थाने यदुपायते धनं तदृत्वा किञ्चित्किञ्चिद्वक्षणीयं न कोश-
स्त्वन्यमपि प्राप्तं । तथा च वशिष्ठः—

कोशशुद्धिः सदा कार्या नैव हानिः कथंचन ।

आपत्काले हते प्रार्थयेत्कोशो राज्यरक्षकः ॥ १ ॥

अथ कोशमवर्धयतो राज्ञो यद्व्यवति तदाह—

कुतस्तस्यायन्यां श्रेयांसि यः प्रत्यहं काकिण्यापि कोशं न
वर्धयति ॥ ४ ॥

टीका—कुतस्तस्यायत्या परिणामे आगामिनि काले श्रेयांसि कल्याणा-
नि पार्थिवस्य भवन्ति । कस्मान्न कदाचिदेव । यः किं करोति ! न वर्धयति
न शुद्धिं नयति । कः ! कोशं । कया ' काकिण्यापि नित्यमेव । तस्माद्भुजा
सदैव कोश आपदिनाशनिमित्ते शुद्धिं नेय' । तथा च गुरुः—

काकिण्यापि न शुद्धिं यः कोशं नयति भूमिपः ।

आपत्काले तु सम्प्राप्ते शत्रुभिः पीड्यते हि सः ॥ १ ॥

अथ कोशो महीपतीनां यादृशस्तदाह—

कोशो हि भूपतीनां जीवितं नं प्राणाः ॥ ५ ॥

टीका—योज्यां कोश, न किञ्चिदपि ' जीवितं । केपां ! महीप-
तीनां । यत्तन्मस्य क्षये मज्जाने नश्यभावात् मेवर्कर्मस्यते ततः शत्रुभि-
र्विष्यत इति । तथा च भार्गवः ।

कोशहीनं नृप भूम्या कुर्वीता अपि योयत ।

संन्यस्यान्यत्र गच्छन्ति शुभं वृक्षमिषाण्डजाः ॥ १ ॥

अथ कोशहीनं राजा यद्व्यवति तदाह—

क्षीणकोशो हि राजा पौरजनपदानन्यायेन व्रमते नतो रण-
शून्यता स्यात् ॥ ६ ॥

२२ बल-समुद्देशः ।

—•• ❀ ••—

अथ बलस्वरूपमाह—

द्रविणदानप्रियभाषणाभ्यामरातिनिवारणेन यदि हितं स्वा-
मिने भवति तस्यागु बलने संशुणोतीति बलम् ॥ १ ॥

टीका—प्रयोजनावस्थागु दशागु बन्ते बन्ते ददाति संशुणोतीति
बेनारातिनिवारणेन शत्रुनिषेधेन तद्वत् संशुणोतीति । तथा च गुणः —
घनेन प्रियसंभाषणार्थेन पुनर्जितम् ।
भाषणद्वयः कथामिने दक्षेणता बलमिति श्रुतम् ॥ १ ॥

अथ बलस्य स्वस्वरूपमाह—

बलेषु हस्तिनः प्रधानमङ्गं स्वैरपयवैराद्यापुषा हस्तिनो
भवन्ति ॥ २ ॥

टीका—पशुभिः पादभ्यामगुण्यन्ते दन्तयुगादेन च गुण्यन्ते पुनरेव
च शत्रुन् विनाशयतीति न चास्वद्वयः आगच्छेयुष्ये इति । तथा च
शत्रुकिः —

अष्टायुधो भवेद्दन्तां दन्ताभ्यां चरणावपि ।
तथा च पुराणश्रुत्याऽपि शत्रुजित्तुं न शक्यते ॥ ३ ॥

अथ हस्तिनः ॥ २ ॥
हस्तिप्रधानो विजये राजा यदका । एव हस्तिना महत्तु दंष्ट्रयति
तिदति प्रहारमहर्षेणापि । २

टीका—राज ५ ॥

॥ १० ॥ अनु ॥ १० ॥

॥ १० ॥ अनु ॥ १० ॥

अथ गजैर्घट्टयति तदाह—

मुखेन यानमात्मरक्षा परपुरावमर्दनमरिब्यूहविधातो जलेषु
सेतुबन्धा वचनादन्यत्र सर्वविनीदहेतवधेति हस्तिगुणाः ॥ ६ ॥

टीका—एते हस्तिना गजानां गुणाः । एकं तावत् मुखेन यानं
गजैः क्रियते । तथात्मरक्षा भवति । परपुरावमर्दनं शत्रुपुरभंगः । तथा-
रिब्यूहविधातः शत्रुमुमुदायविधातः । तथा जलेषु नदीसंभवेषु सेतुबन्धाः
क्रियन्ते । तथा वचनादन्यत्र सर्वविनीदहेतवः संभाषणं मुक्त्वान्ये सर्वे
विनीदा हस्तिनां सकाशाद्भवन्तीति हस्तिगुणाः । तथा च भागुरिः—

मुखयानं सुरक्षा च शत्रोः पुरविभेदनम् ।

शत्रुब्यूहविधातश्च सेतुबन्धा गजैः स्मृतः ॥ १ ॥

अथाश्वसैन्येन यद्भवति तदाह—

अश्वबलं सैन्यस्य अंगमं प्रकारः ॥ ७ ॥

टीका—यदश्वबलं । किंविशिष्टं । प्रकारलक्षणे । पुनरपि कथंभूतं ?
अंगमं बलं । यत्र स्थाने बाण्डा क्रियते तत्र याति । कस्य प्रकारभूतं ?
सैन्यस्य । एतदुक्तं भवति, यत्र स्थाने सैन्यं गच्छति तत्र परिवर्जं (घं)
रक्षां करोति । तथा च नारदः—

तुरंगमबलं यद्य तत्प्रकारो बलं स्मृतं ।

सैन्यस्य भूभुजा कार्यं तस्मात्तडेगपत्तरम् ॥ १ ॥

अथाश्वबलस्य माहात्म्यमाह—

अश्वबलप्रधानस्य हि राज्ञः कदनकन्दुकक्रीडाः प्रमीदन्ति,
भवन्ति दूरस्था अपि करस्थाः शत्रव आपत्तु सर्वमनोग्रामिद्व-
यस्तुरंगमा एव शरणमवस्कन्दः यगर्नाकभेदने च तुरंगमसाध्य-
मेतत् ॥ ८ ॥



ममा भूमिर्धनुर्वेदरिदो रथारुदाः प्रह्तारो यदा तदा किम-
गाध्यं नाम नृपाणां ॥ ११ ॥

टीका—यदा धनुर्वेदरिदो महाधानुष्या रथारुदा भवन्ति तदा
ममा मर्तवापराधरहिता भूमिर्भवति । विविदिता धानुष्या ? प्रह्तारो
युद्धशीण्डास्तदा किं नामाहो अगाध्यं भवति । केना ? नृपाणां । सर्वलोक
माधर्पनीत्यर्थः । तथा च दुष्टः —

रथारुदाः सुधानुष्या भूमिमागे वसं विधत्ताः ।

युद्धघन्ते यस्य भूषण्य लज्जयापारयं न किञ्चन ॥ १ ॥

अथ भूपोऽपि रथमारुधमाह —

रथैरवमर्दितं परबलं गुणेन जीपने मौल-भृत्यक-भृत्य-भेदी
मित्राटविकेन पूरं पूरं बलं यत्तेत ॥ १२ ॥

टीका—रथैरवमर्दितं यत्परबलं यदाजा गुणेन जीपने व्यापादयति
साम्पापरबलं समादि(?) व्यापादयितुं यनेन यनं कुर्यात् । सगु मौल-भृत्य-
क-भृत्यभेदिमित्राटविकेन, मूले अथ मौल-ये योऽहं, तथा भृत्यक-
नियोगिनः, तथा भृत्याः साम्पापरबलं, तथा श्रेयिसहा योऽहं यत्तेत
लागिनादयः, तथा मित्रमहा ये मुह्यः तातटविवा येऽहं यत्तेत दमनि
आत्मा तुर्दति, तेन सन्धयि यत्तेत तेन पूरं यत्तेत यत्तेत सगुनेन वि-
विदिता गुणः सन यत्तेत परबलं गुणेन क-लपः । तथा च कण्टः —

रथैरवमर्दितं पूरं परबलं यत्तेत ।

यत्तेतः रथैरवमर्दितं यत्तेत यत्तेत यत्तेत ॥ १ ॥

राष्ट्रीयैर्विवा यत्तेत यत्तेत यत्तेत यत्तेत

अथान्यथाप्यमर्दितं यत्तेत यत्तेत यत्तेत यत्तेत यत्तेत यत्तेत

अथ स्वामिप्रसादस्य यो गुणः सैवकानां समाह—

न तयार्थः पुरुषान् योधयति यथा स्वामिसम्मानः ॥ १६ ॥

टीका—न तयार्थः पुरुषान् योधयति सम्मानं कारयति यथा प्रभुसम्मानं योधयति । तथा च नारायण—

न तथा पुरुषानर्थः प्रभूतोऽपि महाहयं ।

कारापयति योद्धृणां स्वामिसंभावेना यथा ॥ १ ॥

अथ सैन्यस्य विरक्तिः कारणान्याह—

स्वयमनवेक्षणं देयांशहरणं कालयापना व्यसनाप्रतीकारो विशेषविधावसंभावनं च तंत्रस्य विरक्तिकारणानि ॥ १७ ॥

टीका—एतानि पंच तंत्रस्य सैन्यस्य विरक्तिकारणानि । कानि तानि ! स्वयमनवेक्षणे तावत् स्वयमात्मनैव यन्नित्यमेव नावेश्यते । तथा देयांशहरणं देये वृत्तिद्वेषणं यत् तस्य मध्यादंशहरणं विभागग्रहणं । तथा कालयापना दानकाळे यामी वृत्तिः दानद्वेषणा तस्य यासौ यापना रिष्टम्वद्वेषणा तस्या अभ्यासनं मेरुने व्यसने आपत्काळे प्रतीकारविज्ञा न कियते । (विशेषविधौ विशिष्टे काळे पुत्रात्परादिसमये असंभावनं किंचिददानं) तथा च भारद्वाज—

यः सैन्यं धीरुर्ने नय वृत्तिभंगं करोति च ।

न काले यच्छने वृत्ति न विशेषं करोति च ॥ १ ॥

विशेषदर्शिते शोके न विशेषं करोति च ।

व्यसने च प्रतीकारं यः स्वामी न करोति च ॥ २ ॥

सत्यं तंत्रं प्रयागेय विरक्तं स्वयंता दिशं ।

नस्मात्स्वयंप्रयत्नेन तोष्यं तत्र मर्दाभुजा ॥ ३ ॥

अथ सैन्यमनागकयन शितिपतेर्यद्वशति तदाह—

स्वयमवेक्षणीय सन्य परैरवेक्ष्यन्नर्थतंत्राभ्यां परिहीयते ॥ १८ ॥

टीका—परिहीयते हीनो भवति । काम्या ! अर्थतंत्राभ्यां । किं कुर्वन् !
स्वयमवेक्षणीयमान्मनावेक्षणीयं यसैन्यं तदन्येषां पाश्चादिवलोकयन् । तत-
स्तस्मीदृति तस्माद्भुजा स्वयमेव सैन्यमवलोकनीयं । तथा च त्रैमिनिः—

स्वयं नाल्लोकयेत्तंत्रं प्रमादाद्यो महीपतिः ।

तदन्यैः प्रेशितं धूर्तैर्धिनश्यति न संशयः ॥ १ ॥

अथ येषु येषु पदार्थेषु प्रतिहस्ता न क्रियन्ते तानाह—

आश्रितभरणे स्वामिसेवायां धर्मानुष्ठाने पुत्रोन्पादने च स तु
न सन्ति प्रतिहस्ताः ॥ १९ ॥

टीका—एतेषु चतुर्षु पदार्थेषु न मन्ति न विद्यन्ते न क्रियन्ते
इत्यर्थः । के ते 'प्रतिहस्ताः' । केचित्त्वाह, आश्रितभरणे तावत् ये
आश्रिता मेवका भवन्ति तेषां स्वयं दत्त भक्तकं देयं न परहस्तेन ।
तथा स्वामिसेवायां वप्रयोजनं भवति तन्मयमेव विज्ञाय स्वामिने (ना)
नान्यस्य गुणेन । तथा धर्मानुष्ठाने धर्मकृत्यं पट्टवति तन्मयमेव कार्यं
नान्यपार्वीकागर्हणीयं । तथा च शुकः—

मृग्यानां शोचनं दृष्ट्वा स्वामिसेवाप्रयोजनं ।

धर्मकृत्यं मृतात्मापि परमादर्यं च कार्यम् ॥ १ ॥

न ॥ अथानां ॥ १९ ॥ ॥ १९ ॥

तावदयं वारदाश्रिताः सम्पूर्णतमागुवन्ति ॥ २ ॥

टीका—आश्रितानां सेवायां वारदाश्रितं भवन्ति तेषां तावदेव विना
व्ययमभूतानामनुवन्ति न केनचित् मी. र्तिन । तथा च शुकः—

आश्रिता यस्या मी. र्तिनः शत्रुहृतस्य महीपतेः ।

स सर्ववैदृश्यं स्. र्. र्. कार्यवशाच्च शत्रु. र्. र्. र्. ॥ १ ॥

अथ राज्ञो वृत्तिमयच्छतो भृत्यस्य पट्टत्यं तदाह—

न हि स्वं द्रव्यमध्ययमानो राजा दण्डनीयः ॥ २१ ॥

टीका—सेवकानां यदि राजा वृत्तिं न प्रपद्यति तद्वद्वान् प्राप्ते भवति साम्नेव त्याग्यः । तथा च शुक्रः—

धृत्यर्थं कालदः कार्यो न भृत्यैर्भूमुजा समः ।

यदि यच्छति नो वृत्तिं नमस्कृत्य पश्यिजेत् । १ ॥

को नाम सचेताः स्वगुणं चौर्यान्खादेत ॥ २२ ॥

टीका—गतार्थमेतत् ।

अथ सतृप्यास्य राज्ञो दृष्टान्तमाह—

किं तेन जलदेन यः काले न वर्षति ॥ २३ ॥

टीका—गतार्थमेतत् ।

स किं स्वामी य आश्रितेषु व्यसने न प्रविधत्ते ॥ २४ ॥

टीका—गतार्थमेतत् ।

अथाविशेषज्ञस्य राज्ञो यद्वदति तदाह—

अविशेषज्ञे राज्ञि को नाम तत्स्यार्थे प्राणव्ययेनोत्सहेत ॥ २५ ॥

टीका—विशेषरहिते राजनि यो विशेषं न जानाति तत्स्यार्थे को नामाहो यः प्राणव्ययेन प्राणनारोकोत्सहेत उत्साहं करोति, अपि तु न कोऽपि । तथा चांगिराः—

काचो मणिर्मणिः काचो यस्य स्वभापनेदृशी ।

कस्तस्य भूपतेरग्रे संप्रामे निधनं यजेत् ॥ १ ॥

इति बलसमुद्देशः ।

१ मुद्रित—पुस्तके त्वयं पाठो जातित न आह्वय आहवाप्यनिम आह्वय प्रयो अपि विविध दृश्यते ।

दानस्नेहो निजार्थव्यमुपेक्षा व्यसनेषु च ।

धैरिसंगोऽप्रशंसा च मित्रदोषाः प्रकीर्तिताः ॥ १ ॥

अथ मैत्रीभेदकारणान्याह—

स्त्रीसंगतिर्विवादोऽभीक्ष्णयाग्नमप्रदानमर्थसम्यग्धः परोक्ष-
दोषग्रहणं पैशुन्याकर्णनं च मैत्रीभेदकारणानि ॥ ७ ॥

टीका—स्त्रीसंगतिस्तान्मित्रभार्यासंगम संज्ञयाम् । विवादः यः
करोति तथाभीक्ष्णं वाचने । तथाऽप्रदानं न किञ्चित्कदाचिदपि ददाति ।
तथाऽर्थमभ्युपेक्षोऽर्थव्यवहारः । तथा परोक्षे दोषग्रहणं । तथा पैशुन्या-
कर्णने च यदि कश्चिन्मित्रं पैशुन्यं करोति तदा तदाकर्णयति । एतानि
सप्तवस्तूनि मैत्रीभेदकारणानीति । तथा च शुकः—

स्त्रीसंगतिर्विवादोऽथ सदाधिप्यमदानता ।

व्यसन्व्यग्रस्तथा निन्दा पैशुन्यं मित्रधैरिता ॥ १ ॥

अथ शीरस्य प्रशंगमाह—

न शीरान्तरं महदस्ति यत्संगतिमात्रेण करोति नीरमात्म-
मये ॥ ८ ॥

टीका—शीरादन्तरद्वितीयं न महदस्ति न विद्यते । यत् किं
कुर्यात् ? यत् संगतिमात्रेणैव करोति । किं नत् ? नीरं पानीये । किं
विशिष्टं ? अन्तर्मममा मनुजः । तस्मात्तत्र महत्संगतिं क्रियते विद्वन्मार्गैः ।
येन शुभसंगत्यादयः प्रसूतास्तु सत्संगत्यादयः । तथा च गोवत्—

शुभसंगत्यादयः सत्संगत्यादयः करोति शुभानि । महत् ।

शुभयाजः सत्संगत्यादयः करोति शुभानि । च तथा च यः ॥ १ ॥

अथ शीरस्य प्रशंगमाह—

न नीरान्तरं महदस्ति यन्मित्रितमं संप्रियं स्थितिं च
स्वर्गदेन शीरम् ॥ ९ ॥

२४ राजरक्षा-समुद्देशः ।



अथ राजरक्षासमुद्देशो व्याख्यायते । तत्रादावेव राजरक्षाकारण-
माह—

राज्ञि रक्षिते सर्वं रक्षितं भवत्यतः स्वेभ्यः परेभ्यश्च नित्यं
राजा रक्षितव्यः ॥ १ ॥

टीका—रक्षितव्यां रक्षणीयम् । कांऽसौ ? राजा । केभ्यः ? स्वेभ्य
भार्यायभ्यः सकाशान् तथा परेभ्यः । कथं ? नित्यमेव (तस्मिन् रक्षिते
सर्वं रक्षितं भवति यतः) । तथा च रेभ्यः—

रक्षिते भूमिनाथे तु भार्यायभ्यः सदैव हि ।
परेभ्यश्च यतस्तस्य रक्षा देशस्य जायते ॥ १ ॥

अथ राज्ञो रक्षा यथा भवति तथाह—

अनण्वोक्तं नयविद्रिः—पितृपतामहं महामम्बन्धानुबद्धं शि-
क्षेतमनुबद्धं कृतकर्मणा च जनं आमन्त्रं कुर्यात् ॥ २ ॥

अथ राज्ञो रक्षा यथा भवति तथाह—

टीका—अनण्वोक्तमन्त्राद्गणनम् । कः ? नयविद्रि नीतिविद्रिः । किं
दुर्त्तमिच्छा—एतद्गुणविशिष्टं जनं लोकसमासम् कुर्यात् कुर्याद्विशेषम् । किं-
विशिष्टं जनं ? महामम्बन्धानुबद्धं महान् पौत्रमा परिणयन् लक्षणभेदा-
वद् यजितम् । तथा शिक्षितं विचक्षणम् । तथा अनुबद्धं कृतकर्मणा येन
जन्मार्थं कृतम् । तथा पितृपतामहमन्त्रागते समासम् कुर्यात् ।

रा च गुण —

वंशजं च सुसम्बन्धं शिक्षितं राजसंयुतं ।

पुनः कर्म जनं पादये रक्षार्थं धारयेन्नृपः ॥ १ ।

अथ यादृश जनं समीपगं न कुर्वीत सादृशमाह—

अन्यदेशियामकृतार्थमानं स्वदेशीयं चापकृत्योपगृहीतमासर्गं
न कुर्यात् ॥ ३ ॥

टीका—अन्यदेशीयमहताधमानं स्वदेशीयं चापहत्योपगृहीतं जनं समीपे न धारयेत्तं स्थापयेत् । कं जनं कथंभूतं, ? अन्यदेशीयं । तथा अपहत्योपगृहीतं अपहत्य दण्डयित्वोपगृहीतं स्वस्थाने स्थापितं यत्नमव्ययं वित्तभूतिः स्यात् । तथा च श्रुतिः—

निद्योगिनं समीपस्थं दंडयित्वा न धारयेत् ।

दण्डको यो न चित्तस्य बाधा चित्तस्य जायते ॥ १ ॥

अन्यदेशोज्झ्वलं श्लोकं समीपस्थं न धारयेत् ।

अपूजितं स्पृष्टेयं वा विदुष्यथ अपूजितं ॥ २ ॥

अथ दण्डयिन्वा यः स्थाप्यते तस्वल्पमाह—

चित्तविकृतेर्नास्त्यविषयः किम् भवति मातापि राक्षसी ॥४॥

टीका—चित्ते विवृतिर्विकारो यस्य स तथा तस्य चित्तविवृते पुरुषस्य
नास्ति कोऽभावविशेषो गोचरं पापं कुर्वाणस्य । यतः किल भवति
कासो 'माता । किंविशिष्टा । अहम् । यदा माता जायते तदा धर्ममनु-
तिष्ठति तदा पुरुषस्य स्थितिः । अतः च सूत्रम् —

यस्य चित्तं विशात इयान् सर्वे प्राण बभूवुर्वा. ।

जाते दन्ति गुरुषु माता हाविर्नामर्ष्याधिना ॥ १ ॥

अथ विवाहसंस्काराणां प्रमाणं यथा तस्य भवति ॥

अस्यामिकाः प्रकृतयः समृद्धा अपि निम्नगते न शक्नुवन्ति
॥ ५ ॥



राजराक्षामुद्रेशः ।

स्त्रीमुखकृते त्रिद्विपि स्त्रीमुखार्थं केशं करोति येन स्त्रीमुखादगो भवति ।
तथा च गर्गः—

कृपि तेषां विदेशं च मुञ्चं पाणिज्यमेव च ।
मर्त्ये स्त्रीणां मुखार्थाय स तयो कुरुते जनः ॥ १ ॥

अथ स्त्रीमंगरहितस्य पुरुषस्य यद्वयति तदाह—

निवृत्तस्त्रीसंगस्य धनपरिग्रहो मृतमण्डनमिव ॥ ९ ॥

टीका—स्त्रीमंगरहितस्य य मण्डनक्षणे विभयः । स किञ्चिदपि ?
मृतमण्डनमिव यथा मृतमण्डनं कृत्वा न किञ्चिन्मुखमुत्पादयति तथा
प्रभूतोऽप्यर्थो धर्मो वनितामंगरहितस्य । तथा च बहुभदेवः—

प्रभूतमपि चेद्विच्छं पुरुषस्य स्त्रियं विना ।
मृतस्य मण्डनं यदङ्गं तत्तस्य धर्ममेव हि ॥ १ ॥

अथ स्त्रीणां स्वरूपमाह—

मर्वाः स्त्रियः क्षीरोदवेला इव विषामृतस्थानम् ॥ १० ॥

टीका—या एता स्त्रियः ताः मर्वा विषामृतस्थानं । किञ्चिदपि
इव । क्षीरोदवेला इव दुग्धममुद्रहर्ष इव । तथा च बहुभदेवः—

नामृतं न विषं किञ्चिदेकां मुक्त्या नितम्बिनीम् ।
विरक्ता माग्येयस्माग्मुत्पायन्यनुसगिणी ॥ १ ॥

भूयाऽपि स्त्रीस्वरूपमाह—

मकरदंष्ट्रा इव स्त्रियः मयभावादेव वक्रशीलाः ॥ ११ ॥

टीका—एता स्त्रियो यास्ता मया वक्रशीला वक्र शीलं यास्ता
वक्रशीला । कर्माभावादेव नियमनं य इव वक्रशीला मकरदंष्ट्रा
इव । तथा च बहुभदेवः—

स्त्रियोऽतिवक्रता गुणा यथा दष्टा शयोऽप्या ।
स्त्रियोऽतिवक्रता गुणा यथा दष्टा शयोऽप्या ॥ १ ॥

अथ भूयोऽपि स्त्रीणां स्वरूपमाह—

न मोहो लज्जा भयं स्त्रीणां रक्षणं किन्तु परपुरुषादर्शनं
संभोगः सर्वसाधारणता च ॥ १५ ॥

टीका—स्त्रीणां तावत् कुटुम्बमोहो रक्षणं न करोति, भयं न करोति,
लज्जा न करोति । तर्हि कथं रक्षणं भवतीत्याहा तासां परपुरुषादर्शनं तावत्
अन्यपुरुषादर्शनं यदि न स्यात् । तथा संभोगः काममेवम् । तथा गर्भ-
साधारणत्वं च पत्युः सखाशान्मर्बं वाञ्छितं लभते । सर्वगाधारणत्वं,
ईर्ष्याधर्मं यदि भर्ता न करोति । एतन्नयं स्त्रीणां रक्षणं नान्यत् तथा
च जैमिनिः—

अन्यस्यादर्शनं कोपान् प्रसादः कामसंसर्गः ।

भर्यासामेव नाटीणामेतद्रक्षत्रयं मतम् ॥ १ ॥

अथ यथा न विरप्यन्ते भर्तुः स्त्रियं तथाह—

दानदर्शनाभ्यां समवृत्तां हि पुंसि नापराध्य सौ स्त्रियः ॥ १६ ॥

टीका—नापराध्यन्ते न विरोधं कुर्वन्ति । वजः स्त्रियः । कस्मिन् ? पुंसि
भर्तारि । किञ्चिदिष्टे ? समवृत्तौ समप्रसादे । काम्यां ? दानदर्शनाभ्यां ।
एतदुक्तं भवति यस्य पुरस्य वज्रं द्वयोः भवति स यदा तुल्यवृत्तो
तुल्यधेष्टितो भवति काम्यां दानमानाभ्यां विरोधं न करोति तदा ता
सानुरागा भवन्ति । तथा च नादः—

दानदर्शनसंसर्गोऽथ भयं स्त्रीषु करोति वा ।

प्रसादेन विदोषं च न विकल्पन्ति तस्य ताः ॥ १ ॥

अथ परिगृहीतासु स्त्रीषु पुम्भेन यच्चान्ये तदाह—

परिगृहीतासु स्त्रीषु विद्याविषयं न मन्येत् ॥ १७ ॥

अथ ऋतुस्नानां स्त्रियं न भजति तस्य यद्भवति तदाह—

क्रतावपि म्रियमुपेक्षमाणः पितृणामृणमाश्ननं ॥ २० ॥

टोका—ऋणभाजनं भवति, केन ? वितृणां पूर्वजानां । योऽस्ती
 ऋणभाजनं भवति ? उपेक्षमाणोऽगच्छन् पुनर्यः । का ? कतुम्नाणां स्त्रियः ।
 तथा च गर्गः—

अतुं वरुति नो योऽत्र भार्यायाः स्नानजे दिनं ।

तस्य देया न शृङ्क्षति हृद्यं वाक्यं च पूर्णजाः ॥ १ ॥

अथ स्त्रीणांमृत्युप्रदातुः पुण्यस्य पद्धयति तत्राह—

अवगृह्णाः शिषः स्वयं नश्यन्ति स्वामिनं वा नाशयन्ति॥२१॥

टीका—या, खियोऽयद्वा दृष्टाहिता भवन्ति कतुमायेगादि न सम्भाव्यन्ते ता द्वाभ्यामेकतमं कुर्वन्ति । किंवा स्वयं नदयति अथवा पनि नाशयन्ति । तस्मात्पुनरेगादि वरवं स्त्रीणां कतुर्देवः । तथा च गर्भः-

अनुकाले च स्वप्नाले न भवेद्यस्तु वाणिर्वा ।

तदःशास्त्रा प्रणयनेन कथं या मानवेष्टतिम् ॥ १ ॥

अथतुंकारे म्रियं सज्जिता पार्श्वेति तदा—

न स्त्रीणामकर्तव्ये मया द्वाप्ति वरमस्मिन्नाहो नोदोपेक्षणं ॥२२॥

टीका — नाम्नि न (वत्) । कामा म सादा । कामा ' कर्माणा । कामिन् ।
अफलेभ्ये । तस्मात्तु क व न च क टा न् । न । विदात्ता नामुंभूतं
अतोरप्रदान । तथा च भागव

साहस्यं विद्यते सर्वज्ञात्मानस्य न सति ।

अविद्यायां यत्कृतकमाद्यं शुद्धात्मा विद्यमानम् ॥ १ ॥

अथ कृतीणां यााने विवर्तनक, प्रणालीने वि-वार्त -

अकृतगुण्य किं बालप्रेणाकृत किं क्षेपेण ॥ २३ ॥

टीका—गतार्थमेतत् ।

सपत्नीविधानं पत्युरसमंजसं च विमाननमपत्याभावश्च
चिरविरहश्च स्त्रीणां विरक्तिकारणानि ॥ २४ ॥

टीका—एतानि पंच स्त्रीणां विरक्तिकारणानि । तस्मान्न कार-
यानि । एकं सपत्नीविधानं तावत् यदन्या भार्या न विशेषः कार्यः ।
पत्युरसमंजसं पत्युर्मनोमलिनता । विमाननमपमाननं (!) कार्यं । अपत्या-
भावो वन्ध्यता । तथा चिरविरहश्च । चिरकाले देशान्तरगमनं पत्युः ।
तथा च जैमिनिः—

सपत्नी वा समानत्वमपमानमपत्यता ।

देशान्तरगतिः पत्युः स्त्रीणां रागं हरन्त्यमी ॥ १ ॥

अथ स्त्रीणां भूषोऽपि स्वरूपमाह—

न स्त्रीणां सहजो गुणो दोषो वास्ति किंतु नयः समुद्रमिव
यादृशं गतिमाप्नुवन्ति तादृश्यो भवन्ति स्त्रियः ॥ २५ ॥

टीका—आसां स्त्रीणां सहजो गुणो दोषो वा नास्ति भर्तुगुणिन
गुणा भवन्ति, दोषेण दोषाः । केन दृष्टान्तेन ? यादृशं पतिमाप्नुवन्ति
तादृश्यो भवन्ति । का इव नय इव यथा नयः समुद्रं पतिं प्राप्य ताद-
रूपा भवन्ति । तथा च शुक्रः—

गुणां वा यदि वा दोषो न स्त्रीणां सहजो भवेत् ।

भर्तुः सहशक्तं याति समुद्रस्थापना यथा ॥ १ ॥

अथ भूषोऽपि स्त्रीणां स्वरूपमाह—

स्त्रीणां दौत्यं स्त्रिय एव कुर्युस्त्वरथोऽपि पुंयोगः स्त्रियं दृ-
यति किं पुनर्मानुष्यः ॥ २६ ॥

टीका—स्त्रीणां दौत्यं यदीयं तच्छ्रीमकाशात् कारावनीयं न पुन

असमुत्थोऽपि दृष्टोऽपि दूषयति सद्गुरुं पश्येति त्रियं किं पुनर्मानुष्य-
संभवः संयोगः । तथा च गुरुः—

रत्नानां दातव्यं नरेन्द्रेण प्रेष्या जायते नरो न या ।

तिर्य्यचोऽपि च पुंयोगो ह्येो दूषयति त्रियं ॥ १ ॥

अन व-

पतिव्रतापि या नारी हृष्टाभ्यख्यतन्निमं ।

गुह्यं कुप्यते पापदां न मिथुनसंज्ञयम् ॥ १ ॥

अथ त्रिषो यदर्थं शक्यन्ते तदाह—

वंशविशद्वयर्थमनर्थपरिहारायं स्त्रियो रक्षन्ते न भोगार्थं

॥ २७ ॥

टीका—एताः त्रिषु यन्माद्रक्ष्यन्ते / पराविशुद्धपर्यं येन वेदात्या-
न्ययस्य विशुद्धिर्भवति । अनर्थपरिहारार्थं च रक्ष्यन्ते । न भोगार्थं
गतार्थं च । तथा च गुरुः

पञ्चस्य च विभुर्गुणैर्न तन्मानर्थक्षयाय च ।

वृद्धितयाः शिष्या विद्वन् भोगाय च केयलम् ॥ १ ॥

अथ पुण्याङ्गानां स्वर्ग्यमाह—

भोजनप्रत्यर्ग्यमानाः पण्याहनाः फस्तासु द्वयमर्थसंशय-

मः ॥ २८ ॥

टीका—एभ्याङ्गना वर्या समाना सवना शरण । एवम मोहन-
बन्धु यथा मोहनकः । यथा च । एवम । एवम । एवम । एवम । एवम ।
यथा वर्या समाना । यथा च । एवम । एवम । एवम । एवम । एवम ।
यथा वर्या समाना । यथा च । एवम । एवम । एवम । एवम । एवम ।
यथा वर्या समाना । यथा च । एवम । एवम । एवम । एवम । एवम ।

सर्वेसाधारणा परया यथा भाजनवर्माणि ।

न प्रत्यया कारयेत्तुष्टिं तात्वा बोधः न बाधितः ॥ १ ॥

प्रविष्टो हि यथा मेको विष्टं स्वर्पस्य मृत्युमाह ।

तथा संजायते राजा प्रविष्टो वेदमनि स्त्रियः ॥ १ ॥

अथ राज्ञा स्त्रीणां विषये य वर्तनं तदाह—

न हि स्त्रीगृहादायातं किञ्चित्स्वयमनुभवनीयम् ॥ ३२ ॥

टीका—नानुभवनीये न भक्षणायमित्यर्थः । किञ्चिदपि स्वयमपि
वस्तु, किञ्चिदपि वस्तु ' आयातं प्राप्तं । कस्मान् ? स्त्रीगृहात् । कथं न
भक्षणाय ? स्वयमा मना—अर्थाद्राज्ञा । तथा च वादरायणः—

स्त्रीणां गृहात् स्वमायातं भक्षणायं न भूगुजा ।

किञ्चित्स्वल्पमपि प्राणान् रक्षितुं योऽभिधास्यति ॥ १ ॥

नापि स्वयमनुभवनीयेषु स्त्रियो नियोज्यन्ते ॥ ३३ ॥

टीका—स्वयमनुभवनीयेषु स्वयं सेव्येषु भोजनार्थेषु स्त्रियो न
नियोज्यन्ते न प्रेरणाया यतो विषयेदोषांशुदयन्ति । तथा च भूगुः—

भोजनारिषु स्वयं भोजनार्थेषु नियोजयेत् ।

स्त्रियो भूमिपतिः कृषिं प्राप्यति यत्तच्च ताः ॥ १ ॥

अथ स्त्रियो यः कुर्वन्ति तदाह—

मंथनं म्यातं च्यं चाभिलषन्त्यः स्त्रियः किं नाम न कुर्वन्ति ३४

टीका—एता स्त्रियः किमिति न कुर्वन्ति, अपि तु सर्वे कुर्वन्ति
मंथने कार्मण्यमभिव्यक्तं तावन्मिथ्या-तथा क्वालेभ्य स्वैरुदा
यतेन वाक्ताः ३४ । १ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । १७ । १८ । १९ । २० । २१ । २२ । २३ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ३२ । ३३ । ३४ । ३५ । ३६ । ३७ । ३८ । ३९ । ४० । ४१ । ४२ । ४३ । ४४ । ४५ । ४६ । ४७ । ४८ । ४९ । ५० । ५१ । ५२ । ५३ । ५४ । ५५ । ५६ । ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ । ६४ । ६५ । ६६ । ६७ । ६८ । ६९ । ७० । ७१ । ७२ । ७३ । ७४ । ७५ । ७६ । ७७ । ७८ । ७९ । ८० । ८१ । ८२ । ८३ । ८४ । ८५ । ८६ । ८७ । ८८ । ८९ । ९० । ९१ । ९२ । ९३ । ९४ । ९५ । ९६ । ९७ । ९८ । ९९ । १०० ।

कामेन कवेः उवाच । स्वयं यावत्तु-च योऽपि ।

तद्व्याप्त्यनु न विभ्याम प्रवर्ते य च यत्तु ॥ १ ॥

अ. १. ३. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

१. २. ३. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

धृषते हि किञ्च अंशेन स्वयं द-दृष्टि-मि-द-नी-दि-
वितगण-पे-ग-दि-दृष्टि-मि-द-नी-दि-
अपान गजानमद्गजम् । ३० ॥

टीका—गतार्थमेतत् । एतन्मरिधानकं बृहत्कथायां ।

अथान्यामामपि दुष्टस्त्रीणां मरिधानानि लिख्यन्ते ।

विपालक्तकदिग्धेनाधरेण वमन्तमतिः शम्भेनेषु मुक्तविलासं,
विषोषलिप्तेन मेणिना वृकोदरीं दृष्टाणेषु मदनार्णवं, निशित-
नेमिना मुकुणेन मदिराक्षीं मगधेषु मन्मथविनोदं, कवरीनि-
गूढेनामिषत्रेण चन्द्रमा पाण्डुषु पण्डुर्गकमिति ॥ ३६ ॥

टीका—एतान् पञ्च मरिधानि नामानि एतानि बृहत्कथायां ज्ञेयानि ।

अथ स्त्राणां माहात्म्यमाह—

अमृतमवाप्य इव श्रीजमुखोपकरणं स्त्रियः ॥ ३७ ॥

टीका—अमृतं च स्त्रियः । श्रीजमुखोपकरणं श्रील-
क्ष्मीसम्भ्रमसौख्यस्य कथिता वामलाचनः ।
यथा पीयूषवाप्यश्च मनःप्रान्ताद्वदा मदा ॥ ३७ ॥
का स्त्रियः । श्रीजमुखोपकरणं । श्रीलक्ष्मीसम्भ्रमसौख्यस्य कथिता वामलाचनः ।
तथा च शुकः—

लक्ष्मीसम्भ्रमसौख्यस्य कथिता वामलाचनः ।

यथा पीयूषवाप्यश्च मनःप्रान्ताद्वदा मदा ॥ ३७ ॥

अथ तासां मेर माहात्म्यमाह—

कस्तासां कायेः कायेति शोकं प्रकरोति ॥ ३८ ॥

टीका—एतासां कायेः कायेति शोकं प्रकरोति । एतासां कायेः कायेति शोकं प्रकरोति ।
कोऽधिकारः किं प्रमाणं । एतासां कायेः कायेति शोकं प्रकरोति ।
सर्वदेवता । तथा च श्रीगणेशः—

१ मेखलाभजितति पाठान्तरं मुद्रां स्तुतिं च यत्र नति सम्बन्धः ।

कीदृशमुखोपकरणमिति लिखितपुस्तके मुद्रितपुस्तके च भिन्नं । श्रीगणेशाय
परिवर्तितः ।

स्त्रीणां दुग्धस्ति किञ्चिन्न विचार्य विचक्षणैः ।

नामिकाद्यं न जीरोऽतः यत्कृता भग्नोदमाः ॥ १ ॥

अथ स्त्रीणां येषु येषु कृ येषु रसान्नं दीयते तान्याह—

अपत्यपोषणे गृहकर्मणि शरीरसंस्कारे शयनावगारे स्त्रीणां
स्वातन्त्र्यं नान्यत्र ॥ ३९ ॥

टीका—आसां स्त्रीणां यन्वान्त्र्यं स्वच्छन्दता, एतेषु येषु रसान्नं
दीयते नान्यत्र । अपत्यपोषणे तावत् बाळपुष्टिकरणे, । तथा गृहकर्मणि
गृहकृत्ये । तथा शरीरसंस्कारे निजवायमण्डने । तथा शयनावगारे
शयनप्रस्थारे । तथा च भागुरि—

. स्वातन्त्र्यं नाम्नि गारीणां मुक्त्या कर्मचतुष्टयम् ।

वागानां पोषणं कृत्यं शयनं च भूषणं ॥ १ ॥

अथानिशक्तस्य स्त्रीणां पुत्रस्य यद्भवति तदाह—

अतिप्रमत्तेः स्त्रीषु स्वातन्त्र्यं कल्पप्रमिव पत्युर्नाविदारे हृदये
विधाम्यति ॥ ४० ॥

टीका—अतिप्रमत्तं स्यात्तान् स्त्रीषु यस्मात्तन्त्र्यं, तर्हि कर्मणि
न विधाम्यति न विधाय गच्छति । वि. कृत्वा । अविदारे । वि. तन् ।
हृदये । कल्प । पत्युः पतन्त्र्यम् । विमिव । कल्पप्रमिव । तथा च गगं—

स्वातन्त्र्यं यद्भवति स्त्रीणां पुत्रस्य यद्भवति ।

मर्मण्डलकृतस्येन । हृदये पुत्रस्य च ॥ १ ॥

अथ स्त्रीवशात्तस्य पुत्रस्य यद्भवति तदाह—

स्त्रीवशात्पुत्रो नदीप्रसारिततटादप्येव न विरं नन्दति ॥ ४१ ॥

टीका—न दीपिका । इति दर्शितम् । नदी । पुत्र । विरं । नन्दति ।
स्त्रीवशात् । व. १९ । तटादप्येव । विरं । नन्दति । नदीप्रसार-

स्त्रीणां दुःखं किंचिन्न विचार्य विचारणः ।

नामिषाहं न जीवोऽतः यत्नना भग्नोपमाः ॥ १ ॥

अथ स्त्रीणां येषु येषु कृतेषु समांतं दीयते तान्वाह—

अपत्यपोषणे गृहकर्मणि शरीरसंस्कारे शयनाश्रमे स्त्रीणां
स्वातंत्र्यं नान्यत्र ॥ ३९ ॥

टीका—अत्रां स्त्रीणां यत्ननाहं भग्नोपमाः, एतेषु येषु भग्नोपमाः
दीयते नान्यत्र । अपत्यपोषणे तावत् बालपुष्टिकरणं, । तथा गृहकर्मणि
गृहकृत्ये । तथा शरीरसंस्कारे निजकायमण्डने । तथा शयनाश्रमे
शयनप्रस्थाने । तथा च भागुरि —

स्वातंत्र्यं नाम्नि मारीणां शुभ्रया कर्मजमुद्यमम् ।

यामातां पोषणं कृत्यं शयनं च । भूषणं ॥ १ ॥

अथातिशक्तस्य स्त्रीणां पुण्डस्य यद्भवति तदाह—

अतिप्रमत्तेः स्त्रीषु स्वातंत्र्यं परपश्रमिव पत्युर्नाविदार्थं हृदये
विधाम्यति ॥ ४० ॥

टीका—अतिप्रमत्तेति मत्तानां स्त्रीषु स्वातंत्र्यं, तर्कः कर्तव्यं
न विधाम्यति न विधाय तदति । वि. कृत्वा । अविदार्थं । वि. तद्वत्
हृदये । शयनं पत्युः पोषणं । कर्मजं । पश्यन्ति । तथा च तदाह —

स्वातंत्र्यं यद्भवति स्त्रीणां मत्तानां यद्भवति ।

अतिप्रमत्तस्य पत्युः हृदये पश्यन्ति ॥ १ ॥

अथ स्त्रीणां येषु येषु कृतेषु समांतं दीयते तान्वाह—

स्त्रीयत्नपुरुषो नदीप्रवाहवन्निवः ॥ ४१ ॥ न विद नन्दाश्रमः ॥

टीका—नदीप्रवाहवन्निवः । न विद नन्दाश्रमः ।

स्त्रीयत्नपुरुषो नदीप्रवाहवन्निवः ॥ ४१ ॥ न विद नन्दाश्रमः ॥

पतितः । यथा नदीप्रवाहे पतितो वृक्षश्चिरं कालं न वृद्धिं याति तथा पुरुषो स्त्रीवशगतः । तथा च शुक्रः—

न चिरं वृद्धिमाप्नोति यः स्त्रीणां वशगो भवेत् ।

नदीप्रवाहपतितो यथा भूमिसमुद्भवः ॥ १ ॥

अथ स्त्रीमाहात्म्यमाह—

पुरुषमुष्टिस्था स्त्री खड्गयष्टिरिव कमुत्सवं न जनयति ॥४२॥

टीका—कमुत्सवं न जनयति, अपि सर्वमपि करोति । का सा ? स्त्री । केव ? खड्गयष्टिरिव कर्वालवल्लीव । या स्त्री पुरुषमुष्टिस्था भवति पतिव्रतत्वसहिता भवति सा भर्तुः क न कुर्यान्मनोरथमिति ।

या नारी वशगा पत्युः पतिव्रतपरायणा ।

सा स्वपत्युः करोत्येव मनोरथं हृदि स्थितम् ॥ १ ॥

अथ स्त्रीणां पुरुषेण यत्कर्तव्यं तदाह—

नातीव स्त्रियो व्युत्पादनीयाः स्वभावमुभगोऽपि शास्त्रोपदेशः स्त्रीषु, शस्त्रीषु पयोऽलन इव विषमतां प्रतिपद्यते ॥ ४३ ॥

टीका—स्त्रियः पत्या पुरुषेण नातीव व्युत्पादनीया नातिशयेन काम-शास्त्रोपदिताः कर्तव्या यतः स्वभावमुभगोऽपि कामशास्त्रोपदेशो विषमतां प्रतिपद्यते विरूपता प्रतिपद्यते करोति । कामु ? स्त्रीषु । कास्त्रिव ? शस्त्री-ध्विव च्छुरिकास्त्रिव । यथा पयोऽलन्दु दुग्धिकाया निभत्याया विषमतामुत्पादयति विरूपता नयति एव कुलस्त्रीणां स्वभावमुभगोऽपि काम-शास्त्रोपदेशः कुलस्त्रीणां धर्मं दूषयति । तथा च भारद्वाजः—

न कामशास्त्रतत्त्वज्ञाः स्त्रियः कार्याः कुलोद्भवैः ।

यतो धरूप्यमायान्ति यथा शास्त्रं दुसंगमः ॥ १ ॥

अथ वेद्याधिरं यथा पुरुषमनुभवति तदाह—

अधुवेन साधिकोऽप्यर्थेन वेद्यामनुभवति ॥ ४४ ॥

टीका—यः पुरुषः अधुवेन चलेप्यर्थेन साधिकानापि वेद्यामनुभवति न चिरं प्रभूतं कालं तं सेवते यः पुनर्नित्यदानेन स्वल्पेनापि सेवते तस्य त्रुटिर्भवति । तस्माद्वेद्याया नित्यमर्थो न देयः । स्वल्पोऽपि प्रभूतोऽपि कालान्तरेण देयः । येन साऽविद्यमानेऽप्यर्थे कृताशया न त्यजति । तथा च गुरुः—

वेद्यानां नित्यदानं यत् सद्धि दानं शुभं न हि ।

अपि स्तोत्रं प्रभूतं च चिरदत्तं मुनिद्वये ॥ १ ॥

अथ वेद्याना नित्यमर्वाकारणविसर्जनादरन्त्या भवत तावाह—

विमर्जनाकारणाभ्यां तदनुभवे महाननर्थः ॥ ४५ ॥

टीका—एता वेद्याः सर्वसामान्या भवन्ति तद्गृह्यो वा गृहादागृह्यन्त्यो वा यदि कश्चिद्विद्वात्तदनुभव करोति ता अदिलपति । तदनुलोभेन तं भजते ततश्च तेन सह प्राणान्तिकं शुद्धं भवति स महाननर्थः । तस्माद्वेद्यानामकारणविसर्जनं न कार्यं किं वा गृहेषु कार्यं, अथ कान्तुकमात्रं मसेव्यं मोक्षनीयाः । तथा च गुरुः—

किं वा गुप्ताः प्रयत्नः प्रयत्नः किं वा कान्तुकमात्रकं ।

आनीय ताः प्रमोक्तव्या वेद्याः पुत्रिर्विचरन्त्यः ॥ १ ॥

अथ वेद्याना स्वरूपमाह—

वेद्यामन्तिः प्राणार्थहानि कस्य न करोति ॥ ४६ ॥

टीका—वेद्यानां विषयं यान्ते पुनः परममनित्यं न सन् तदस्य प्राणहानि न करोति । अथ न सद्यः तस्माद्वेद्याः यो वा तथा च नारदः—

प्राणार्थहानिरेव स्याद्धेदयायां सक्तितो नृणाम् ।

यस्मात्तस्मात्परित्याज्या घेदया पुंभिर्धनार्थिभिः ॥ १ ॥

अथ भूयोऽपि वेद्यास्वरूपमाह—

धनमनुभवन्ति वेश्या न पुरुषं ॥ ४७ ॥

टीका—या एता वेश्या उच्यन्ते ता धनमनुभवन्ति न पुण्यं ।
मूर्खः पुनरेव जानाति ममैषा सानुरागा । यदि पुनर्धनं न प्रयच्छति
तत्तत्समुपमपि नावलोकयन्ति । तथा च भारद्वाजः—

न सेवन्ते नरं येदयाः सेवन्ते केवलं धनम् ।

धनक्षीनं यतो मर्त्ये संत्यजन्ति च तत्क्षणात् ॥ १०॥

अथ भूयोऽपि वेद्यानां स्वस्वमाह—

धनहीने कामदेवेऽपि न प्रीतिं यमन्ति वेश्याः ॥ ४८ ॥

टीका—न वृजन्ति कुर्वन्ति । कां ? प्रीतिं स्नेहं । याः ? यस्याः । क ?
जनहीने । । कनिष्ठगणे ? कामदेवेऽपि । तथा च भागुरिः—

न गेयते धनैर्हानः कामदेयोऽपि चास्यथं ।

येदयानिधनतुभ्यामिः कुप्यी घाति निगेष्यते ॥ १ ॥

अथ नृपां ऽपि वेश्याम्यरूपमाह —

म नृमानानायतिगुर्ग्यं यस्य मानुष्यं येद्यागु दानं ॥४९॥

टीका—स त्वान् इत्य मयी म्यान् गुणाज्जा भवति । कस्यां ? आप-
 य-या दर्शनात् नान्यथा सा । इत्येकं दाने । किमिदं ? सानुदाये
 सपेद । कामु १३५५ । इत्येकं इत्येकं इत्येकं सानुदाये दाने
 भवति स आपयया दर्शनात् मयी भवति । तथा च नादः—

प्रदानं यम्य वेदयाया मथेयानुदायं रादा ।

परिणामे सुखादयोऽयं जायते नात्र संशयः ॥ १ ॥

अथ वेद्यादानप्रयत्नस्य पुण्यस्य वृद्धयति तदाह—

स पशोरपि पशुः यः स्वधनेन परेषामर्थवन्तीं करोति
वेद्यां ॥ ५० ॥

टीका—स पुरुषः सर्वेषां पशूनां मध्ये प्रधानः पशुः । यः किं क-
रोति ! योऽर्थवतीं महार्थी । का ! वेद्यां । केन ? स्वधनेन निजार्थेन ।
केषां ! परेषामन्येषां । आत्मनोऽपि तावद्वित्तक्षयं करोति, अन्येषामपि ।
तथा च बह्विभदेवः—

आत्मचित्तेन यो वेद्यां महार्थो कुरुते कुधीः ।

अन्येषां चित्तनाशाय पशूनां पशुः सत्यनः ॥ १ ॥

अथ पुरुषस्य वेद्यासंग्रहो यथा श्रेयःप्रदो भवति तदाह—

आचित्तविधान्ते वेद्यापरिग्रहः श्रेयान् ॥ ५१ ॥

टीका—आह् शब्दो मर्यादाया । आचित्तविधान्तेः चित्तविध्वान्ति
यावत् पुरुषेण वेद्यासंग्रहः कार्यो न सदैव । एतदुक्तं भवति, वेद्यां
दृष्ट्वा यदि चित्तं चलति तत्सेवनीया ततो मोचनीया । एवं कुर्वतः श्रेयः
सौम्यं सदैव भवति । तथा च राजपुत्रः—

वेद्यादर्शनतश्चित्तं यदि पाप्मना करोति च ।

तत्र सेव्याः प्रमोक्तप्या नैव निर्य्य कदाचन ॥ १ ॥

अथ पुरुषस्य वेद्यासंग्रहात् यद्ववति तदाह—

सुरक्षितापि वेद्या म्यां प्रकृतिं न मुञ्चति ॥ ५२ ॥

टीका—न मुञ्चति । कासी ' वेद्या । का ' प्रकृति । विशिष्टा
म्या पुरुषान्तरसंबन्धश्रुत्या । लोभोपहता मती पुरुषविशेषान् भजति
तस्मात्तस्या संग्रहो न कार्यः । अथवा नास्ति तस्या दोषः सर्वेऽपि
प्राणिनः स्या प्रकृति भजन्ते । तथा च गुह —

यद्वेद्या लोभसंयुक्ता स्थोक्त्यापि न संस्तमः ।

सेवयेरपुरुषात्तस्यान्वयभावाद्दुःखयजो यतः ॥ १ ॥

ସ୍ୱାସ୍ଥ୍ୟ ସୁରକ୍ଷା ପାଇଁ ଏହି ସମୟରେ ସର୍ବୋତ୍ତମ ଉପାୟ ହେଉଛି ଶାରୀରିକ ସକ୍ରିୟତା ବୃଦ୍ଧି କରିବା ।

॥ श्री गणेशाय नमः ॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥ श्री गुरुदेवे नमः ॥ श्री गुरुदेवे नमः ॥

[illegible][illegible]

མཉམས་པོ་ལྟ་བུ་ལྟར་། ཇུག་ན་མཉམས་པོ་ལྟར་།

આત્મ મેલિતે કાનને મુલદને વિષે સુખે મેલતે

[illegible]

सम्पत्ति संचयन सम्पत्ति संचयन सम्पत्ति संचयन सम्पत्ति संचयन

१० वक्रवर्तुषः कृष्णवर्तुषात् दू. शेषः स्यात् ॥ ३५

[illegible]

सुखोत्तिगा ॥ २॥ किमनु-विपश्योनि वदिदमि ॥ ५४ ॥

[illegible][illegible]

कन्दर्पाक्षः शोभायुक्तः कल्पितः कल्याणः कुम्भारिषः ।

इदं च न भवति न भूतं वा । तस्मात्तदसिद्धं न भवति ॥ १ ॥

44551 247 1640 1012

३ गन्तुं ह्यत्र । क्षन्नाक्षन्नाय वाच्यं वसिष्ठमिति ॥ ५५ ॥

[illegible]

உதவி : கனம் திரு. வி. வி. சுவாமிநாதன்

प्रोक्तः शिक्षाशमेनार्थि न बाणस्य व्यभिचरतिः ।

स्युभायां नोपदेशेन शक्यते कतुमन्यथा ॥ ॥

अथ भूषण्डरि स्वप्नानिधिरुपमाह—

इक्षुरसेनापि सिक्तो निम्बः कटुरेव ॥ ५६ ॥

टीका—निम्बो वृक्षविशेषः स कटुरेव । किमिशिष्टः ? सिक्तः ।

केन ? इक्षुरसेनापि । तथा च गर्गः—

पिशुनं दानमाधुर्यं संप्रयापि कथंचन ।

सिक्ताद्येक्षुरसेनापि दुस्स्यजा प्रवृत्तिर्निजा ॥ १ ॥

अथ कुल्याना घोषणे यद्वदति तदाह—

सन्मानदिवसादायुः कुल्यानामपग्रिहहेतुः ॥ ५७ ॥

टीका—कुल्यानां सजातीयानां दायादानां सन्मानदिवसादारभ्य यः

आयुः सत्प्रदानं ताप्रग्रहः (!) हेतुर्विनाशकारणः । तथा च शुक्रः

कुल्यानां पालनं यद्य कियते मूढपार्थिवः ।

आयमनाशाय तज्जेयं सम्मानदायं मुदूतः ॥ १ ॥

अथ दायादानां योगतत्प्रवृत्त्या यद्वदति तदाह—

तत्रकोशपार्थिनीं वृत्तिर्दायादान् विकारयति ॥ ५८ ॥

टीका—विकारयति विकारं नयति । काशी ! वृत्तिर्वर्तमानदक्षणा ।

कान् ? दायादान् । किमिशिष्टः ? कोशलप्रवृत्तिनी । तत्र ? सत्यधादिवत् ।

कोशो भादगात्रः । या वृत्तिर्वर्तमानं गृह्णासती दायादान् सविकारान्

करोति । तथा च गुरुः —

वृत्तिं काशेन कुल्याना यथा वदन्ति विप्रधने ।

सं प्रवृत्तिः स तु ते प्रतिपद्यमाने वा प्रयोगेन ॥ १ ॥

अथ १. ॥ ५८ ॥ २. ॥ ५९ ॥ ३. ॥ ६० ॥ ४. ॥ ६१ ॥ ५. ॥ ६२ ॥ ६. ॥ ६३ ॥ ७. ॥ ६४ ॥ ८. ॥ ६५ ॥ ९. ॥ ६६ ॥ १०. ॥ ६७ ॥ ११. ॥ ६८ ॥ १२. ॥ ६९ ॥ १३. ॥ ७० ॥ १४. ॥ ७१ ॥ १५. ॥ ७२ ॥ १६. ॥ ७३ ॥ १७. ॥ ७४ ॥ १८. ॥ ७५ ॥ १९. ॥ ७६ ॥ २०. ॥ ७७ ॥ २१. ॥ ७८ ॥ २२. ॥ ७९ ॥ २३. ॥ ८० ॥ २४. ॥ ८१ ॥ २५. ॥ ८२ ॥ २६. ॥ ८३ ॥ २७. ॥ ८४ ॥ २८. ॥ ८५ ॥ २९. ॥ ८६ ॥ ३०. ॥ ८७ ॥ ३१. ॥ ८८ ॥ ३२. ॥ ८९ ॥ ३३. ॥ ९० ॥ ३४. ॥ ९१ ॥ ३५. ॥ ९२ ॥ ३६. ॥ ९३ ॥ ३७. ॥ ९४ ॥ ३८. ॥ ९५ ॥ ३९. ॥ ९६ ॥ ४०. ॥ ९७ ॥ ४१. ॥ ९८ ॥ ४२. ॥ ९९ ॥ ४३. ॥ १०० ॥

भक्तिविश्रम्भादन्यमिचारिणं कुल्यं पुत्रं वा संरर्पयेत् ॥ ५९ ॥

टीका—सं रर्पयेत् । १. ॥ ५९ ॥ २. ॥ ६० ॥ ३. ॥ ६१ ॥ ४. ॥ ६२ ॥ ५. ॥ ६३ ॥ ६. ॥ ६४ ॥ ७. ॥ ६५ ॥ ८. ॥ ६६ ॥ ९. ॥ ६७ ॥ १०. ॥ ६८ ॥ ११. ॥ ६९ ॥ १२. ॥ ७० ॥ १३. ॥ ७१ ॥ १४. ॥ ७२ ॥ १५. ॥ ७३ ॥ १६. ॥ ७४ ॥ १७. ॥ ७५ ॥ १८. ॥ ७६ ॥ १९. ॥ ७७ ॥ २०. ॥ ७८ ॥ २१. ॥ ७९ ॥ २२. ॥ ८० ॥ २३. ॥ ८१ ॥ २४. ॥ ८२ ॥ २५. ॥ ८३ ॥ २६. ॥ ८४ ॥ २७. ॥ ८५ ॥ २८. ॥ ८६ ॥ २९. ॥ ८७ ॥ ३०. ॥ ८८ ॥ ३१. ॥ ८९ ॥ ३२. ॥ ९० ॥ ३३. ॥ ९१ ॥ ३४. ॥ ९२ ॥ ३५. ॥ ९३ ॥ ३६. ॥ ९४ ॥ ३७. ॥ ९५ ॥ ३८. ॥ ९६ ॥ ३९. ॥ ९७ ॥ ४०. ॥ ९८ ॥ ४१. ॥ ९९ ॥ ४२. ॥ १०० ॥

मिचारिणः । कदाचित्प्राज्ञः सत्यं न च । १. ॥ ५९ ॥ २. ॥ ६० ॥ ३. ॥ ६१ ॥ ४. ॥ ६२ ॥ ५. ॥ ६३ ॥ ६. ॥ ६४ ॥ ७. ॥ ६५ ॥ ८. ॥ ६६ ॥ ९. ॥ ६७ ॥ १०. ॥ ६८ ॥ ११. ॥ ६९ ॥ १२. ॥ ७० ॥ १३. ॥ ७१ ॥ १४. ॥ ७२ ॥ १५. ॥ ७३ ॥ १६. ॥ ७४ ॥ १७. ॥ ७५ ॥ १८. ॥ ७६ ॥ १९. ॥ ७७ ॥ २०. ॥ ७८ ॥ २१. ॥ ७९ ॥ २२. ॥ ८० ॥ २३. ॥ ८१ ॥ २४. ॥ ८२ ॥ २५. ॥ ८३ ॥ २६. ॥ ८४ ॥ २७. ॥ ८५ ॥ २८. ॥ ८६ ॥ २९. ॥ ८७ ॥ ३०. ॥ ८८ ॥ ३१. ॥ ८९ ॥ ३२. ॥ ९० ॥ ३३. ॥ ९१ ॥ ३४. ॥ ९२ ॥ ३५. ॥ ९३ ॥ ३६. ॥ ९४ ॥ ३७. ॥ ९५ ॥ ३८. ॥ ९६ ॥ ३९. ॥ ९७ ॥ ४०. ॥ ९८ ॥ ४१. ॥ ९९ ॥ ४२. ॥ १०० ॥

भक्तिविश्रम्भात् । १. ॥ ५९ ॥ २. ॥ ६० ॥ ३. ॥ ६१ ॥ ४. ॥ ६२ ॥ ५. ॥ ६३ ॥ ६. ॥ ६४ ॥ ७. ॥ ६५ ॥ ८. ॥ ६६ ॥ ९. ॥ ६७ ॥ १०. ॥ ६८ ॥ ११. ॥ ६९ ॥ १२. ॥ ७० ॥ १३. ॥ ७१ ॥ १४. ॥ ७२ ॥ १५. ॥ ७३ ॥ १६. ॥ ७४ ॥ १७. ॥ ७५ ॥ १८. ॥ ७६ ॥ १९. ॥ ७७ ॥ २०. ॥ ७८ ॥ २१. ॥ ७९ ॥ २२. ॥ ८० ॥ २३. ॥ ८१ ॥ २४. ॥ ८२ ॥ २५. ॥ ८३ ॥ २६. ॥ ८४ ॥ २७. ॥ ८५ ॥ २८. ॥ ८६ ॥ २९. ॥ ८७ ॥ ३०. ॥ ८८ ॥ ३१. ॥ ८९ ॥ ३२. ॥ ९० ॥ ३३. ॥ ९१ ॥ ३४. ॥ ९२ ॥ ३५. ॥ ९३ ॥ ३६. ॥ ९४ ॥ ३७. ॥ ९५ ॥ ३८. ॥ ९६ ॥ ३९. ॥ ९७ ॥ ४०. ॥ ९८ ॥ ४१. ॥ ९९ ॥ ४२. ॥ १०० ॥

यर्धनीयोऽपि दायादः पुत्रो वा भक्तिमागच्छति ।

न विकारं करोतिस्मिन् प्राच्या साधुस्तनः पटं ॥ १ ॥

अथ दायादस्य पुत्रस्य साधुवृत्तस्य याकर्तव्यं तदाह—

विनियुञ्जीत उचितेषु कर्मसु ॥ ६० ॥

टीका—ततोऽधिकारं ज्ञानोचितेषु कर्मसु विनियुञ्जीत योजयेत् ।
केषु ? कर्मसु अधिकारेषु । किंविनिष्टेषु उचितेषु योग्येषु । तथा च
बलभदेवः—

स्थानेष्वेव नियोज्यन्ते भृत्या आभरणानि च ।

न हि चूडामणिः पदे प्रभवामीति बध्यते ॥ १ ॥

अथ भृत्येन भर्तुः य कर्तव्यं तदाह—

भर्तुरादेशं न विकल्पयेत् ॥ ६१ ॥

टीका—भर्तुः स्वाभिने योऽसावादेशस्तं यः सद्रूपो भवति स न
विकल्पयति । तथा च गुरुः—

स्वाम्यादिष्टस्तु यो भृत्यो न विकल्पयति भवेत् ।

समुद्रतरणार्थाय प्रविशेद्वा हुताशनम् ॥ १ ॥

अथ भृत्येन स्वाम्यादेशो न कार्यस्तदाह—

अन्यत्र प्राणवाधाद्यहुजनविरोधपातकेभ्यः ॥ ६२ ॥

टीका—प्राणवाधा प्राणविनाशो न तमादेशं मुक्त्वा (बहुजना-
नां विरोधः पातकं च एतान् भुक्त्वा) नान्यादेशं विकल्पयेत् ।

अथ—बलवान् यस्य दायादस्य पक्षो भवति तस्य वशीकरणं यथा
भवति तदाह—

बलवत्पक्षपरिाहेषु दायिष्यात्पुरुषपुरःसरं विद्यासौ वशी-

टीका—आता निजा ये पुण्यास्तोरदेसैः प्रजपमानैर्वो विद्यासः
समुत्पत्ते तद्वशीकरणं तेषु अन्यत्र गृहचरगुप्तपणितेऽपि वशीकरणं
यत्नेन सर्वं चेष्टितं निवेदयतीति । तथा च शुक्रः—

यत्पत्पशदापादा भासद्वारेण वश्यगाः॥

मयमिन् प्रातिगुर्जरा चरैः सम्यग्विशोधिताः ॥ १ ॥

अथ दुर्वोधे गुते दायादे वा वाकर्तव्यं तदाह—

दुर्वोधे गुते दायादे वा सम्यग्युक्तिमिर्दुरमिनिवेशमवतारयेत्
॥ ६४ ॥

टीका—अवतारयेत् एकोटयेत् । किं ! दुरमिनिवेशं गूढं प्रहं । फ-
स्मिन् सति ! दुर्वोधे सति पूर्ववद्युक्ते सति । यस्मिन् ! गुते पुत्रे दायादे
वा दुरमिनिवेशमवतारयेत् । यामिः कृत्या । युक्तिभिः प्रपथैः । एतदुक्तं
भवति यदा तु पुत्रो बान्धवो वा विद्वदो भवति तदा युक्तिभिः सन्तोषः
कार्यः । तथा च रैभ्यः—

पुत्रो वा बान्धवो वापि विद्वदो जायते यदा ।

तदा सन्तोषयुक्तस्तु सत्कार्यो भूतिमिच्छता ॥ १ ॥

अथ साधूनां गुचाराणां यो विरुति करोति ताय वद्ववति तदाह—

साधूपूषचर्यमाणेषु विरुतिभजनं स्वहस्ताङ्गराकर्षणमिर
॥ ६५ ॥

टीका—साधुषु लोकेषूपचर्यमाणेषूपकारं क्रियमाणेषु पद्विहति-
भजनं विरुद्धं क्रियते । तत्पद्विहतिमिव । स्वहस्ताङ्गराकर्षणमिव
स्वहस्तेन तावदङ्गराणां चर्षणं क्रियते । तथा च भाट्टुरि—

साधूनां विनयाङ्गराणां विरुद्धाणि करोति यः ।

यः करोति न समरेतः स्वहस्तेनाङ्गराकर्षणम् ॥ १ ॥

अथ भाट्टुरिभ्यामनुदाभ्यामपि यानि वारदाणि भवति तदाह—

क्षेत्रबीजयोर्विकृत्यमपन्यानि त्रिकार्यानि ॥ ६६ ॥

टीका—तथा च—

यथा पुत्र समाचष्ट मन्तु शीलं स्वकर्तुर्गणः ।

तथा स्वाष्टु जलं लेखन् १ पशति शुभाशुभम् ॥ १ ॥

येन जलं लेखन् १ पशति शुभाशुभम् ॥ १ ॥
अथ जलं लेखन् १ पशति शुभाशुभम् ॥ १ ॥
यथा पुत्र समाचष्ट मन्तु शीलं स्वकर्तुर्गणः ।
तथा स्वाष्टु जलं लेखन् १ पशति शुभाशुभम् ॥ १ ॥

परमृताश्च पश्याति तानि मृत्युशस्त्रे स्थिते । १

तानि पुनः पश्यन्निष्कमं शत्रुमन्त्रमुद्भवम् ॥ २ ॥

टीका—तथा च—

कुलेपि नृदिक्षयः क्षातिमनः प्रसादोऽनुपहतकालसमयश्च
श्रीरामस्यत्यागजन्तमः । तस्मात्त्रोपयोगश्च पुन्योत्तममवतारयन्ति
॥ ६७ ॥

यथा पुत्र समाचष्ट मन्तु शीलं स्वकर्तुर्गणः ।
तथा स्वाष्टु जलं लेखन् १ पशति शुभाशुभम् ॥ १ ॥
यथा पुत्र समाचष्ट मन्तु शीलं स्वकर्तुर्गणः ।
तथा स्वाष्टु जलं लेखन् १ पशति शुभाशुभम् ॥ १ ॥
यथा पुत्र समाचष्ट मन्तु शीलं स्वकर्तुर्गणः ।
तथा स्वाष्टु जलं लेखन् १ पशति शुभाशुभम् ॥ १ ॥
यथा पुत्र समाचष्ट मन्तु शीलं स्वकर्तुर्गणः ।
तथा स्वाष्टु जलं लेखन् १ पशति शुभाशुभम् ॥ १ ॥
यथा पुत्र समाचष्ट मन्तु शीलं स्वकर्तुर्गणः ।
तथा स्वाष्टु जलं लेखन् १ पशति शुभाशुभम् ॥ १ ॥
यथा पुत्र समाचष्ट मन्तु शीलं स्वकर्तुर्गणः ।
तथा स्वाष्टु जलं लेखन् १ पशति शुभाशुभम् ॥ १ ॥

बीजं तदा १३१ पर पश्य मे विदुतिभयम् ।

तथा मथनसम्पदं शृष्टुं मज्जायते रमान् ॥ १ ॥

अथाप्येषु लाभालाभद्वयमाह—

गर्भशर्मजन्मकर्मापत्येषु देहलाभान्मन्दाभयोः कारणं
रमम् ॥ ६८ ॥

टीका—अप्येषु कर्मण्येषु एतद्यथासंभाव्येन देहलाभाकामयोः
कारणमस्ति । कस्य कस्य किं । देहस्य तादृशगर्भशर्म यदि मातापत्येन
शर्मवती तदापत्यस्यापि देहं शरीरं पुष्टमारोग्यं भवति । यदि जन्म-
कर्म जन्मविशानन्दशुभे भवति शुभप्रतिनिरीक्षितो भवति तदा मन्दाभो
जीवितलाभ इत्यर्थः । तदपत्यमुत्तममुच्छृङ्खलं कारणमिति । तथा च गुरु—

गर्भस्थानमप्यस्यानां यदि नील्यं प्रजायते ।
मन्त्रयेद्दि शुभो देहो जीवितस्य च जन्मनि ॥ १ ॥

अथ यादृशानां पुण्याणां राश्याधिकारो भवति प्रप्रण्यायां च

तानाह—

स्वजनियोग्यतांस्कार्हीनानां राज्यं प्रप्रण्यायां च नास्त्य-
धिकारः ॥ ६९ ॥

टीका—नास्ति न विद्यते वोऽसाधिकारः । अ. राज्ये । केन ?
स्वजनियोग्यतांस्कार्हीनानां स्वर्गीया जाति स्वजातिभ्यस्तदा दोषो
वोऽसौ सत्कारोऽनुत्पन्नः प्रजायतेन हीना ये तेऽसाधिकारो नास्ति राज्ये
प्रप्रण्यायां च । तथा च गुरु—

स्वजात्ययोग्यतांस्कार्हीनैः नरा र्हीनैः कृता ।
अधिकारो न राज्येषु न च तथा मतपु ॥ १ ॥

अथ स्वर्गीयः कदा राज्यं च प्राप्नुयति ?

अस्ति योऽनेन्यस्मिन्महद्विरीनो र्वि विह्वलमहंन्यापुमो
मृतः ॥ ७० ॥

१ गोमेः सौमोऽदि पुन
२ न विन । कियत्काः
३ त्र जाने मति ।
४ दुःकः—

राजाध्यायः १२१ ॥ यथा न नदति ।

तथा १२१ ॥ यथा न नदति । १॥

अथ नदति तदाह—

मा सम्यग्दत्ता वि गतपुत्राणा विनयोऽन्यमभ्युदयं न च
दपयति ॥ ७१ ॥

१ अन्यय वंश
२ विनयः
३ तथा च
४ नदति —

विनयः साधुभेदना राजाध्यायः भवति य ।

न दपयति यथा न नदति न च सम्यग्दत्त ॥ १ ॥

अथाध्यायः १२२ ॥ यथा न नदति तदाह—

घृणजम्भ काष्मिणाविनीत राजपुत्रं राजकुलमभिपुक्तमात्रं
भज्येत् ॥ ७२ ॥

१ राजपुत्रं
२ राजकुलं
३ राजकुलं
४ यदि किं
५ यादृशं
६ विनयः
७ विनयः
८ विनयः
९ विनयः
१० विनयः
११ विनयः
१२ विनयः
१३ विनयः
१४ विनयः
१५ विनयः
१६ विनयः
१७ विनयः
१८ विनयः
१९ विनयः
२० विनयः
२१ विनयः
२२ विनयः
२३ विनयः
२४ विनयः
२५ विनयः
२६ विनयः
२७ विनयः
२८ विनयः
२९ विनयः
३० विनयः
३१ विनयः
३२ विनयः
३३ विनयः
३४ विनयः
३५ विनयः
३६ विनयः
३७ विनयः
३८ विनयः
३९ विनयः
४० विनयः
४१ विनयः
४२ विनयः
४३ विनयः
४४ विनयः
४५ विनयः
४६ विनयः
४७ विनयः
४८ विनयः
४९ विनयः
५० विनयः
५१ विनयः
५२ विनयः
५३ विनयः
५४ विनयः
५५ विनयः
५६ विनयः
५७ विनयः
५८ विनयः
५९ विनयः
६० विनयः
६१ विनयः
६२ विनयः
६३ विनयः
६४ विनयः
६५ विनयः
६६ विनयः
६७ विनयः
६८ विनयः
६९ विनयः
७० विनयः
७१ विनयः
७२ विनयः
७३ विनयः
७४ विनयः
७५ विनयः
७६ विनयः
७७ विनयः
७८ विनयः
७९ विनयः
८० विनयः
८१ विनयः
८२ विनयः
८३ विनयः
८४ विनयः
८५ विनयः
८६ विनयः
८७ विनयः
८८ विनयः
८९ विनयः
९० विनयः
९१ विनयः
९२ विनयः
९३ विनयः
९४ विनयः
९५ विनयः
९६ विनयः
९७ विनयः
९८ विनयः
९९ विनयः
१०० विनयः

राजपुत्रो दुःखयोगे यदि राज्येन भवेत् ॥

तद्राज्यं नाशमायाते घृणजम्भ च दास्यन् ॥ १ ॥

अथ यादृक्षा राजपुत्राः पितरं न द्रुयन्ति तेषां स्वल्पमाह—

आप्तविद्यावृद्धोपगृह्णाः सुगोपगृह्णाश्च राजपुत्राः पितरं नाभि-
द्रुयन्ति ॥ ७३ ॥

टीका—ये राजपुत्रा आप्तविद्यावृद्धोपगृह्णा भवन्ति । आप्ता निष्ठा
ये विद्यावृद्धा विद्वांसो विद्यया कृत्वा ये वृद्धा न जरायां तेषां उपगृह्णा
वृद्धि नीताः । तथा सुगोपगृह्णाः सुप्तेन ये वृद्धि नीतास्ते वृद्धाचिदेव
पितरं न द्रुयन्ति न व्यापादयन्ति । तथा च गीतमः—

आप्तैर्विद्याधिकैर्येऽत्र राजपुत्राः सुरिंशिताः ।

वृद्धिं गताश्च र्वाग्येन जनकं न द्रुयन्ति ते ॥ १ ॥

अथ राजपुत्राणां मातापितरौ यादृग्भूतौ तदाह—

मातृपितरौ राजपुत्राणां परमं देव ॥ ७४ ॥

टीका—माता च पिता च मातृपितरौ राजपुत्राणां । किमिशिर्षं
भवतः ? परममु वृष्टे देवं प्राप्तत्वं परमं गर्थ । यदि सौख्यजग्मनि सुहृत् कृतं
भवति तन्मातृपितृभ्यां सखात्वात् राज्यप्राप्तिर्भवति । अथवा दुःखेन
कृतं भवति तत्ताभ्यां पादसाहिनाशो भवति । तथा च गीतः

जननीजनबाधेनो प्राप्तत्वं वार्यं विधुर्न ।

नयेयां राजपुत्राणां दुष्मादुष्माप्रसं हि तौ ॥ १ ॥

अथ मातृपितृणां भवताम् राजपुत्राणां वदयति तदाह—

यत्प्रसादादात्मलाभो राज्यलाभश्च ॥ ७५ ॥

टीका—पात्रां प्रसादादात्मलाभो राजपुत्राणां राज्यलाभश्च भवति
तथा च गीतः—

अत एव हि विज्ञेया जननीजनबाधुर्न ।

हेतुं याभ्यां प्रसादेन दासीरं राज्यमप्यने ॥ १ ॥

अथ ये राजपुत्रा मातृपितृभ्यामपमानं कुर्वन्ति तेषां वदयति तदाह—

मातृपितृभ्यां मनसाप्यपमानेनमिमुखा अपि भियो निमुग
भवन्ति ॥ ७६ ॥

टीका—भवन्ति जायन्ते । काः भियो लक्ष्यः । किमितिः? निमुग
वैरहितेन संयुक्ताः । कीदृशोऽपि सम्मुखा अपि सप्रसारा अपि । केन
सम्मुने । पितृपुत्रिणु अत्यपमानेन अत्यमानपरेण । केन दूषा
मनसापि । आत्मा ताव कर्तव्येन । काभ्यां मातृपितृभ्यां तस्मात्प्रसृत्य
मनसापि न मातृपितृभ्यामपमान कार्य । तथा च वादसायणः—

मनसाप्यमाने यो रात्रपुत्रः सामान्येण ।

जरा मातृपितृभ्यां न लक्ष्यधीः क्वाण् पराङ्मुखा ॥ १ ॥

अथ मातृपितृभ्यामपमानेन जरा लक्ष्येनापि सामान्येण यद्वर्णी
नयः—

किं तेन साधेन यत्र दूषणादोषदने जन्म ॥ ७७ ॥

टीका—किं, तेन साधेन जन्म यथापि । यत्र किं व्यापृति जन्म ।
दूषणादोषदने दूषणादोषदो दूषणादो लोकनिन्द सा यत्र
जन्म जन्म जन्म यत्र । तथा च शुकः—

जननयावर्त्तितने यद्वर्त्तमानिदं जीवने ।

जन्ममपि जीवमपि जन्ममपि जन्ममपि ॥ १ ॥

न ॥ १ ॥

हृषिकेति हर्षेण पितृपुत्रौ नो लक्ष्येण ॥ ७८ ॥

टीका—हृषिकेति हर्षेण पितृपुत्रौ नो लक्ष्येण । हर्षेण पितृपुत्रौ
नो लक्ष्येण । हर्षेण पितृपुत्रौ नो लक्ष्येण । हर्षेण पितृपुत्रौ
नो लक्ष्येण । हर्षेण पितृपुत्रौ नो लक्ष्येण ।

हर्षेण पितृपुत्रौ नो लक्ष्येण ।

हर्षेण पितृपुत्रौ नो लक्ष्येण ।

हर्षेण पितृपुत्रौ नो लक्ष्येण ।

किन्तु सखु रामः क्रमेण विक्रमेण वा हीनो यः पितुराश्रया
नमाविवेष्ट ॥ ७९ ॥

टीका—गतार्थमितन् ।

अथ राजपुत्रस्य यथाविरुद्धं न कर्तव्यं तदाह—
यः सखु पुत्रो मनसितपरम्परया लभ्यते स कथमपक-
र्तव्यः ॥ ८० ॥

टीका—यः पुत्रो लभ्यते । कथं? मनसितपरम्परया देवानामुपवाचि-
तशतैः स कथमपकर्तव्यः कथं तस्य वधादिकां चिन्तनीयमित्यर्थः ।
तथा च गुरुः

उपवाचितसंघातैर्यः हृच्छ्रेण प्रलभ्यते ।

तस्मादान्मजस्य नो पापं चिन्तनीयं कथंचन ॥ १ ॥

अथानुभस्यापि कर्मणः करणीयमाह—

कर्तव्यमेवानुभं कर्म यदि हन्यमानस्य विपद्दिधानमात्मनो न
भवेत् ॥ ८१ ॥

टीका—अनुभमपि कर्म कर्तव्यं पुराणेन । यदि किं तस्यान्? यदि
विपद्दिधानं यत्तस्य क्रियते पाठे रक्षणं तदा घायनो न भवेत् । एतदुक्तं
भवति, पुत्रे हते यदेतस्य षोडशपतिस्तस्य वचनाधारो न भवेत्,
हन्यमानस्यापस्तस्य यज्ज्ञातं तदात्मनो यदि न भवेत् । तथा च गर्ग —

अनिष्टमपि कर्तव्यं कर्म पुंभिर्दिष्टरक्षणैः ॥

तस्य चेदन्यमानस्य यज्ज्ञातं तद्व्ययं भवेत् ॥ १ ॥

अथ राजपुत्राणां यथा सौख्यं भवति तदाह—

ते सखु राजपुत्राः सुखिनो येषां पितरि राज्यमारः ॥ ८२ ॥

१ अस्माकमपि राजपुत्राणां कर्तव्यं न सख्यं अपि व्याख्या, सख्यं तु सुखं न भूयः ।
पुरतश्चाह संशोभितं इति च कल्पिता ।

टीका—(ते राजपुत्रा भवन्ति । किमिशिष्टाः ! मुनिनः मुग्धम
क्रान्ताः । येषां किं ! येषां राज्यभारः राज्यकीयं कृत्यं वर्तते । ।
पितरि) । तथा चात्रिः—

येषां पिता षडेदत्र राज्यभारं मुदुर्यहम् ।

राजपुत्रा मुग्धाद्याश्च ते भवन्ति सर्वे हि ॥ १ ॥

अथ राज्यप्रियो दूरणमाह—

अलं तथा श्रिया या किमपि मुग्धं जनयन्ती व्यासंगपरं
राभिः शतशो दुःखमनुभावयति ॥ ८३ ॥

टीका—अलं तथा श्रिया पर्याप्तं व्यर्थया तथा लक्ष्म्या । या
किमपि मुग्ध कियन्मात्रं श्लोकं शमे जनयन्ती व्यासंगपरं राभिः केश-
मालाभिः शतस्य प्रभूततरं दुःखं कः अनुभावयति प्रकटयति । तस्माद-
केशेन वा श्रीं वा श्रीभण्यते नान्या । तथा च शाशकः—

अल्पसौख्यफला या च बहुकेशप्रदा भवेत् ।

वृथा सात्र परिशेषा लक्ष्म्या सौख्यफलं यत् ॥ २ ॥

अथ निष्कलस्सारम्भस्य स्वल्पमाह—

निष्कलो ह्यारम्भः कस्य नामोदकेण मुग्धावहः ॥ ८४ ॥

टीका—फलरहितो य आरम्भ प्रयोजनं न कर्तव्यं परिणाम-
काले मुग्धावहः मुग्धं जनयेत् न तं प्रात्र् कर्तव्यं । तथा च—

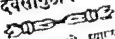
॥ १ ॥

अथ परक्षेत्रं यं कृपति कर्षापयति वा यं पामाणं यत्र नृवृधेति
तदाह—

परक्षेत्रं स्वयं कृपतः कर्षापयतो वा फलं पुनस्तस्यैव यस्य
तत्क्षेत्रम् ॥ ८५ ॥

१) १) वृद्धितोऽयं श्लोकः कर्तुर्नाम च ।

२५ दिवसानुष्ठान-समुद्देशः ।



अथ सर्वेषां सामान्यो नियमागो व्याख्याने तत्र तावदुद्देशेन
यत्कर्तव्यं तदाह —

प्राप्ते सूरतं उच्यतेति कर्तव्यतायां समाधिगृह्येयांश्च ॥ १ ॥
गुणनिद्राप्रसप्ते घनेति प्रतिफलन्ति यथार्थप्रादिकान् वृद्धयः

॥ २ ॥

उदयास्तमनजापिषु धर्मकालातिशयः ॥ ३ ॥
ओत्पयत्रमाग्ये दर्पणे वा निरीक्षेत् ॥ ४ ॥

न प्रातर्वर्षधौ विबालाहं वा पश्येत् ॥ ५ ॥
मन्थ्याग्रधौतपुत्रपादं जेष्टा देवता नानुदृष्ट्वा ॥ ६ ॥

नित्यमदन्तधावनस्य नास्ति दृष्टगृष्टिः ॥ ७ ॥
न कर्पस्यामङ्गेन क्षारीयं कर्मापह्न्यात् ॥ ८ ॥

न तान्दु गूर्गगवि तद्विगताम् मागवं व्रजते ॥ ९ ॥
वेगं व्यापाम व्याप व्रजते भोजनं स्वस्वन्दृष्टिं कालावधौष

स्यात् ॥ १० ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ३ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ४ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ५ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ६ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ७ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ८ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ९ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १० ॥

शुक्रमलमूत्रमरुद्वैगसंरोधोऽश्मरी-भगंदरगुल्मार्शसां हेतुः
॥ ११ ॥

गन्धलेपावसानं शौचमाचरेत् ॥ १२ ॥

बहिरागतो नानाचम्य गृहं प्रविशेत् ॥ १३ ॥

गोसर्गे व्यायामो रसायनमन्यत्र क्षीणाजीर्णवृद्धवातकिरूष-
मोजिभ्यः ॥ १४ ॥

शरीरायासजननी क्रिया व्यायामः ॥ १५ ॥

शस्त्रवाहनाभ्यासेन व्यायामं सफलयेत् ॥ १६ ॥

आदेहस्वेदं व्यायामकालमुशन्त्याचार्याः ॥ १७ ॥

बलातिक्रमेण व्यायामः कां नाम नापदं जनयति ॥ १८ ॥

अव्यायामशीलेषु कुतोऽग्निदीपनमुल्माहो देहदाढ्यं च ॥ १९ ॥

इन्द्रियात्ममनोगर्ता मृक्षमावस्था स्थापः ॥ २० ॥

यथांश्चात्म्यं स्वपाहुक्ताक्षपाको भवति प्रसीदन्ति चेन्द्रि-
याणि ॥ २१ ॥

अपट्टिनमपिहितं च भाजनं न माघयत्यन्नानि ॥ २२ ॥

नित्येन्नानं द्वितीयकमुन्मादनं तृतीयकमायुष्यं चतुर्थकं
प्रत्यायुष्यमिन्यहीनं सेवेत ॥ २३ ॥

धर्मार्थकामशुद्धिदुजेनस्पर्शाः स्नानस्य कार्णानि ॥ २४ ॥

अमस्वेदालसविगमः स्नानस्य कले ॥ २५ ॥

१ इन्द्रियात्ममनो गु २ व्यायामो ३ गु ४ अपट्टिन मु ५ नो
वर्त्तन्ति मु-पुस्तके । ६ इत्यत्र अमस्वेदमशुद्धिदुजेनस्पर्शाः त्रिगुणैरुत्पद्यते इत्यादि
(१) पुस्तके अत्रापि तेषामवस्थां दृष्टयेदिति निश्चयः स्नान इत्यादि पाठा मु-पुस्तके ।
७ अमस्वेदमशुद्धिदुजेनस्पर्शाः त्रिगुणैरुत्पद्यते ।

दिक्तानुष्ठानमनुदेनः ।

जन्मप्राप्तयेव तन्मनानं यत्र न सन्ति देवपुण्यमोवागनानि ॥ २६ ॥
 प्रादुर्भवन्तु निष्पामोऽभ्यङ्गनानं कुर्यात् ॥ २७ ॥
 आनुष्ठानमनुदेनं जन्मप्राप्तये तन्मनानं निमित्तयेव च
 करोति ॥ २८ ॥

पुष्पाधालो मोजनकालः ॥ २९ ॥
 अधुपिनेनामृतमण्युपभूतं च भवति विषं ॥ ३० ॥
 जठराग्निं वज्राग्निं कुर्यात्प्रादात्तं गन्धं यमकं चन्दनम् ॥ ३१ ॥
 निरमण्यं सर्वं द्रवद्रव्यमग्निं नाशयति ॥ ३२ ॥
 अतिधमविषमोपशान्तो येपायाः परां वाज्यमग्निं ॥ ३३ ॥
 मृताधमोपशान्तोऽग्निं दधि च तमो ॥ ३४ ॥
 गन्धुरि नीलेपयोगो घन्दिमवगादयति ॥ ३५ ॥
 शुक्वालातित्रमादसद्वेपो देहमादयु भवति ॥ ३६ ॥
 विध्यान्ते घन्ता किं नामेन्धनं कुर्यात् ॥ ३७ ॥
 यो मितं धुने न वदुं धुने ॥ ३८ ॥
 अमिषममृतं विद्वद्मपरीक्षितमगापुषावर्त्तनामगन्धानां
 चार्धं नानुभवेत् ॥ ३९ ॥
 घन्ताधुजमननूतं क्षयितमतिमयं च न दनि गमये कधि
 धापयेत् ॥ ४० ॥

गुटीप्राप्तयेव तन्मनानं यत्र न सन्ति देवपुण्यमोवागनानि ॥ ४१ ॥
 प्रादुर्भवन्तु निष्पामोऽभ्यङ्गनानं कुर्यात् ॥ ४२ ॥
 आनुष्ठानमनुदेनं जन्मप्राप्तये तन्मनानं निमित्तयेव च
 करोति ॥ ४३ ॥

अतिमात्रभोजी देहमग्निं च विधुरयति ॥ ४५ ॥

दीप्तो बन्धिर्लघुभोजानाद्भलं क्षपयति ॥ ४६ ॥

अत्यशितुर्दुःखेनान्नपरिणामः ॥ ४७ ॥

श्रमार्तस्य पानं भोजनं च ज्वराय छर्दये वा ॥ ४८ ॥

न जिहत्सुर्न प्रस्रोतुमिच्छुर्नासमञ्जसमनाथ नानपनीय
पिपासोद्रेकमश्नीयात् ॥ ४९ ॥

भुक्त्वा व्यायामव्यवायौ सद्यो व्यापत्तिकारणं ॥ ५० ॥

आजन्मसोत्थं विषमपि पथ्यं ॥ ५१ ॥

असात्म्यमपि पथ्यं सेवेत न पुनः सात्म्यमप्यपथ्यं ॥ ५२॥

सर्वं चलवतः पथ्यमिति' न कालकृष्टं सेवेत ॥ ५३ ॥

मुजिशितोऽपि विपतंत्रतो म्रियत एव कदाचिद्विपातः॥५४॥

संविमज्यातिथिष्वश्रितेषु च मयमाहरेण ॥ ५५ ॥

देवान् गरुन् घम चोपचोश्च व्याकुलमतिः स्यात् ॥ ५६ ॥

व्याथेपभसनोविरोधो मज्झिमाणि मार्गमार्गान्दिमाणि ॥ ५७ ॥

मन्त्रः ॥ १५ ॥

यथाकामममीहांनाः किल काननेषु कर्मिणो न भवन्त्याम्पदं
व्याधानां ॥ ५९ ॥

मत्तं मन्त्रमाने दे एव वस्तुनी सुखाय मम मंगलाय
स्नाम्यन्मन्त्रं च ॥ ६० ॥

विगयोर्ध्वत्रानुव्रज्यति गमरादिर्नाः स्नगाः ॥ ६१ ॥

अपरीक्षितमशोधितं च राजकुले न किञ्चित्प्रवेशयेन्निष्काम
येद्वा ॥ १०९ ॥

श्रूयते हि स्त्रीवेषधारी कुन्तलनरेन्द्रप्रयुक्तो गूढपुरुषः कर्ण
निहितेनासिपत्रेण पल्लवनरेन्द्रं हयपतिश्च मेघविषाणनिहितेन
विषेण कुशस्थलेश्वरं जघानेति ॥ ११० ॥

सर्वत्राविश्वासे नास्ति काचित्क्रिया ॥ १११ ॥

इति दिवसानुष्ठानसमुदेशः ।

२६ सदाचार-समुद्देशः



लोभप्रमाद विद्यासर्वहृत्स्पतिरपि पुरुषो बध्यते वञ्चयते वा ॥ १ ॥

टीका—..... ।

अविरोधेन यत्कर्तव्यं तदाह—

बलवताधिष्ठितस्य विदेशगमनं तदनुप्रवेशो वा श्रेयानन्यथा
नास्ति क्षेमोपायः ॥ २ ॥

टीका—बलवताधिष्ठितस्य गृहीतस्य विदेशगमनं परदेशगमनं श्रेयः
श्रेयस्कारं भवति । अथवा तदनुप्रवेशस्तेन सह संधानं श्रेयस्करमिति ।

तथा च श्रुतः—

यत्नान् स्याद्यदाशंसस्तदा देशं परित्यजेत् ।

तेनैव सह सन्धिं वा युर्वाञ्छं स्थाप्यतेऽन्यथा ॥ १ ॥

अथ परदेशस्य दोषमाह—

विदेशवासोपहतस्य पुरुषकारः को नाम येनाविज्ञातस्वरूपः
शुभान् म तस्य महानपि लघुरेव ॥ ३ ॥

टीका—विदेशवासोपहतस्य दुषितस्य पुरुषस्य को नामाहो तद्विह
पुरुषकारः । कस्मान् ! येन पुराणेन न ज्ञायते स महानपि तस्याधमस्यापि
लघुर्भवति नाराजमाप्नोतीत्यर्थः (१) । तथा चात्रि.—

महानपि विदेशस्थः स परैः परिभूयते ।

अज्ञानमनैस्त्वदेशमाहारम्यं तस्य पूर्वकं ॥ १ ॥

अथाऽलम्बप्रतिष्ठितस्य यद्वदति तदाह—

अलम्बप्रतिष्ठितस्य निजान्वयेनाहङ्कारः कस्य न लाघवं
करोति ॥ ४ ॥

व्याधिप्रसन्नस्य यद्वैर्यं तद्वेष परमौषधं ।

नरस्य धैर्यहीनस्य किमौषधशतैरपि ॥ १ ॥

अथ महाभागः पुरुषो यथोच्यते तदाह—

स महाभागो यस्य न दुरपरादोषहतं जन्म ॥ ८ ॥

टीका—न पुरुषोऽत्र जगति महाभाग उच्यते । किं तस्य ! दुरप-
रादोषहतं कुतिसितदोषोपहतं जन्म न भवति । तथा च गर्ग—

भाजन्ममरणान्तं च याच्यं यस्य न जायते ।

सुखस्मं स महाभागो विज्ञेयः क्षितिमण्डले ॥ १ ॥

अथ मन्दमतीनां यद्वचति तदाह—

परार्थिनेष्वर्थेषु स्वोत्कर्षसंभावनं मन्दमतीनां ॥ ९ ॥

टीका—मन्दमतीनां दुष्टबुद्धीनां पुण्याणां स्वोत्कर्षसंभावनं भवति
निजान्हादोत्कर्षो भवति । केयु ! अर्थेषु प्रयोजनेषु । किंविशिष्टेषु परार्थि-
यो मूर्खो भवति स आत्मीयानि तानि मन्यमानस्तुष्टिं याति । तथा
शिक्षः—

कार्येषु सिद्धयमानेषु परस्य पक्षगेषु च ।

आत्मीयेष्विव नैष्वेव तुष्टिं याति स मन्दधीः ॥ १ ॥

अथ भयेषु यथा प्रकारो भवति तदाह—

। भयेषु विषादः प्रतीकारः किन्तु धैर्यावलम्बनं ॥ १० ॥

टीका—न भयेषु भयस्थानेषु प्रतीकार उपपन्नको भवति । कोऽसौ ।

ते हृदयशोभं , तर्हि उपपन्नक को भवति । धैर्यावलम्बनं भवति

स्थितिः । तथा च भृगु

भयस्थाने विषादः यः कुर्वन् स विनश्यति ।

तस्य तज्जयद् (?) ज्ञेयं यद्य धैर्यावलम्बनं ॥ १ ॥

अथ धानुश्वेन तपस्विना च यत्कर्तव्यं तदाह—

यन्मयच्छति न स्यामी सेवितोऽप्यल्पकं फलं ।

कल्पवृक्षोपमोऽन्येषां तत्फलं पूर्यकर्मणः ॥ १ ॥

अथ सदा दुःखितः पुण्यो यथा भवति तदाह—

स सदैव दुःखितो यो मूलधनमसंवर्धयन्ननुभवति ॥ २० ॥

टीका—स पुण्यः सदैव दुःखितो भवति । यः किं करोति ? अनुभवति व्ययं करोति । किं कुर्वन् ? असंश्रमन् । किं सत् ? मूलधनं पितृपै-
तामहं नाम । कथमसंवर्धन् ? केवलं । केवलं भक्षयन् न वृद्धिं नयति
सदा दुःखितो दरिद्रो भवतीत्यर्थः । तथा च गीतामः—

न वृद्धिं यो नयेद्विचित्रं पितृपैतामहं कुपीः ।

केवलं भक्षयन्नेष स सदा दुःखितो भवेत् ॥ १ ॥

अथ मूर्खदुर्जनपतितैः सह संगेन यद्भवति तदाह—

मूर्खदुर्जनचाण्डालपतितैः सह संगतिं न कुर्यात् ॥ २१ ॥

टीका—न कुर्यात् विदधीत । को ! संगतिं मैत्री । कथं ! सह सार्द्धं ।

कैः ! मूर्खदुर्जनपतितचाण्डालैः । तथा च—

मूर्खदुर्जनचाण्डालैः संगतिं कुर्वतेऽत्र यः ।

स्वप्नेऽपि न सुप्तं तस्य कथंचिदपि जायते ॥ १ ॥

अथ क्षणिकचित्तानुरागलक्षणमाह—

किं तेन तुष्टेन यस्य हरिद्राराग इव चित्तानुरागः ॥ २२ ॥

टीका—किं तेन पुण्येण तुष्टिं गतेन । यस्य किं ? यस्य चित्तानुरागो

हरिद्राराग इव—क्षणमात्रं सततं न भवति । तथा च जैमिनिः—

भाजन्ममरणान्ते यः ह्येदः स ह्येद उच्यते

साधूनां यः श्लानां च हरिद्राराग सप्रियः ॥ १ ॥

अथात्मानमजानन् यः पराक्रमं करोति तमाह—

स्वात्मानमविज्ञाय पराक्रमः कस्य न परितप्तं करोति ॥ ३२ ॥

टीका—कस्य पराभवं न कगेति अपि तु मर्षस्यापि जनस्य कोऽसौ ? विक्रमः पराक्रमः । किं कृत्वा ? अविज्ञाय । किं तन् आत्मानं तस्मादात्मानं विज्ञाय शत्रोरुपरि विक्रमः कार्यः । तथा च बह्वृभदेवः—

यः परं केवल्यो याति प्रोन्नतं मदमाश्रितः ।

विमदः स नियतेन शीर्णदन्तो गजो यथा ॥ १ ॥

पराभियोग्यस्य यदुत्तरं भवति तदाह—

नाक्रान्तिः पराभियोगस्योत्तरं किन्तु युक्तेरुपन्यासः ॥२४॥

टीका—न उत्तरं न्यक्कारं । कोऽसौ ? आक्रान्तिराक्रमणं । कस्य ? पराभियोगस्य शत्रुनिग्रहस्य । किन्तु तर्हि युक्तेरुपन्यासो युक्तिकरणं येन तस्य निग्रहो भवतीति । तथा च गर्गः—

नाक्रान्त्या गृह्यते शत्रुर्यद्यपि स्यात्सुदुर्लभः ।

युक्तिद्वारेण संप्राप्तो यद्यपि स्याद्दुर्लभः ॥ १ ॥

राज्ञोऽस्थाने कुपितस्य कुतः परिजनः ॥ २५ ॥

टीका—गतार्थं मेतत् ।

अथ मृतेषु विषयेषु यत्कर्तव्यं तदाह—

न मृतेषु रोदितव्यमश्रुपातसमा हि किल पतन्ति तेषां हृदयेष्वङ्गाराः ॥ २६ ॥

टीका—मृतेषु पुरुषेषु पाश्चात्यैर्न रोदितव्यं यतो निपतन्ति तेषां मृतानां हृदयेष्वङ्गाराः । किंविशिष्टाः ? अश्रुपातसमा अश्रुपाततुल्याः । किलेति कोमलामंत्रणे । एतज्ज्ञात्वा मृतेषु विषये न रोदितव्यं यदि स्नेहो भवति तदूर्ध्वदैहिकद्वारेण रोदितव्यमिति । तथा च गर्गः—

श्रेष्ठास्तु यान्धयैर्मुक्तं प्रेतो भुङ्क्ते यतो यशः ।

तस्मात्त रोदितव्यं स्यात् क्रिया कार्या प्रयत्नतः ॥ १ ॥

अतीते च वस्तुनि यथा शोकः श्रेयस्करो भवति तदाह—

अतीते च वस्तुनि शोकः श्रेयानेव यद्यस्ति तत्समागमः २७
टीका—अतीतेऽतिशयान्ते वस्तुनि पदार्थे योऽर्था शोकः क्रियते ।
न श्रेयान् भवति । किपत्तास्ति दोषः (?) । यदि किं स्यात्? यदि तत्समा-
गमो भवति शौकेन कृतेन तस्य वस्तुनोऽन्यथा दोष एव । तथा च
भारद्वाजः—

मृतं वा यदि वा नष्टं यदि शौकेन लभ्यते ।

तत्कार्येणान्यथा कार्यः केयस्य चायशोपयन् ॥ १ ॥

अथ (शोकमात्मनि विरामनुवासयन् यथा त्रिवर्ग नाशयति तदाह)—

शोकमात्मनि चिरमनुवासयंस्त्रिवर्गमनुशोषयति ॥ २८ ॥

टीका—अनुशोषयत्युदाहरयति । किं ? त्रिवर्गं धर्मार्थकामलक्षणं । किं
पुर्व्वजनुवासयन् धारयन् । कः ? आत्मनि निजशरीरे । कथं धारयन् ? विरं
प्रभूतकाले । कः ? शोकः । शोकमात्मनि धारयैस्त्रिवर्गं नाशयतीति ।
तथा च कौशिकः—

यः शोकं धारयेद्देहे त्रिवर्गं नाशयेद्वि सः ।

क्रियमाणं विरं कालं तस्मात्तं दूरतस्थजेत् ॥ १ ॥

अथ कापुरास्य स्वरूपमाह—

न किं पुराणो योऽकिंचनः सन् करोति विषयामिलापे ॥ २९ ॥

टीका—स किं पुराणे न भरति पशुरेव । किंचिशिष्टः ? अकिंचनो
दरिद्रः सन् विषयामिलापमिन्द्रियमुत्तमनुभवितुमिच्छति । तस्मात्पुराणेन
धनोपार्जनमार्गं कार्यं ततश्च विषयसंश्लेषमनुभवनीयं । तथा च भारद्वाजः—

दरिद्रो यो भवेन्मर्त्यो हीनो विषयमेवमेव ।

तस्य जन्म भवेद्विषयं शोकेन नारदः स्वयं ॥ १ ॥

अथ स्वर्गोपायस्य पुराणस्य चिह्नमाह—

आत्मसंभावितः परेषां मृत्यानामहमानश्च मृत्यो हि बहुप-
रिजनमपि करोत्येकाकिनं स्वामिनं ॥ ४० ॥

टीका—यो मृत्यु आत्मसंभावितः सगर्वो भवति स परेषां मृत्या-
नामहमानो बहुपरिजनमपि प्रभूतमृत्युमपि स्वामिनमेकाकिनं करोति ।
एतदुक्तं भवति, यस्य स्वामिनः सगर्वो मृत्योऽप्येषां मृत्यानामहमानो-
न्प्रह्माप्तो भवति स स्वामी एककी भवति तदापरमृत्युमप्यग्नय इति ।
तदा च रात्रिपुरः—

प्रमादादग्नौ मयेकृत्यः स्वामिनो यस्य दुष्टधीः ।
स स्वल्पनेऽन्यमृत्युश्च दुष्टो मृत्यो जर्दयेषा ॥ १ ॥

अथ रात्रौ यदा दण्डः पातयितव्यस्तदाह—

अपराधानुरूपो दण्डः पुत्रेऽपि प्रजेतव्यः ॥ ४१ ॥

टीका—प्रजेतव्यः पातनीयः । कोऽग्नौ ? दण्डः । किञ्चित् । अपरा-
धानुरूपः । कस्मिन् ? पुत्रेऽपि आम्नां तावदव्येत् । तदा च मुक्तः—

अपराधानुरूपोऽत्र दण्डः कार्यो महीमुखा ।
पुत्रस्यापि विमर्शेषां ये स्युः पातयतायणाः ॥ १ ॥

अथ मृत्योऽपि मृत्युजा यक्तव्यं तदाह—

देशानुरूपः कर्गो प्रायः ॥ ४२ ॥

प्रतिपादानुरूपं वचनमुदाहर्तव्यं ॥ ४३ ॥

त्राधानुरूपं व्ययः कार्यः ॥ ४४ ॥

१ यथानुरूपो प्रमादो यः ॥ ४५ ॥

तन्नाशः ॥ ४६ ॥

आत्मसंभावितः परेषां भृत्यानामसहमानश्च भृत्यो हि बहुप-
रिजनमपि करोत्येकाकिनं स्वामिनं ॥ ४० ॥

टीका—यो भृत्य आत्मसंभावितः सगर्वो भवति स परेषां भृत्या-
नामसहमानो बहुपरिजनमपि प्रभूतभृत्यमपि स्वामिनमेकाकिनं करोति ।
तदुक्तं भवति, यस्य स्वामिनः सगर्वो भृत्योऽग्येषां भृत्यानामसहमानो-
प्रहास्तो भवति स स्वामी एकाकी भवति तथापरभृत्यैस्तज्यत इति ।
या च राजपुत्रः—

प्रमादाद्वाग्रा मयेष्टव्यः स्वामिनो यस्य दुष्टधीः ।
स त्वज्यतेऽन्यभृत्यैश्च पुण्यो वृक्षो जडैर्वध्या ॥ १ ॥

अथ राजा यथा दण्डः पातयितव्यस्तथाह—

अपराधानुरूपो दण्डः पुत्रेऽपि प्रणेतव्यः ॥ ४१ ॥

टीका—प्रणेतव्यः पातनीयः । कोऽसी ! दण्डः । निविदिष्ट ! अपरा-
धानुरूपः । कस्मिन् । पुत्रेऽपि आस्ता तावदन्येऽपि । तथा च शुकः—

अपराधानुरूपोऽत्र दण्डः कार्यो महीभुजा ।
पुत्रस्यापि किमग्येषां ये ह्युः पापपटावणाः ॥ १ ॥

अथ भूयोऽपि भूभुजा मत्कर्तव्यं तदाह—

देशानुरूपः करो ग्राह्यः ॥ ४२ ॥

प्रतिषोढानुरूपं वचनमृदाहर्तव्यं ॥ ४३ ॥

आयानुरूपं व्ययः कार्यः ॥ ४४ ॥

ऐश्वर्यानुरूपो प्रमादो विधेयः ॥ ४५ ॥

स पुमान् शुर्गो यस्याग्नि सन्तोषः ॥ ४६ ॥

अप्रियकर्तुर्न प्रियकरणान्परममाचरणं ॥ ६३ ॥

अप्रयच्छन्नर्थिनो न परुषं श्रूयात् ॥ ६४ ॥

स स्वामी मरुभूमिर्यशार्थिनो न भवन्तीष्टकोमाश्च ॥ ६५ ॥

प्रज्ञापालनं हि राज्ञो यज्ञो न पुनर्भूतानामालम्भः ॥ ६६ ॥

प्रभूतमपि नानपराधसत्त्वव्याघ्रनेये नृपाणां बलं धनुर्वा किन्तु
शरणागतरक्षणाय ॥ ६७ ॥

इति सदाचारसमुद्देशः ।

३७ व्यवहार-समुद्देशः ।



अथ व्यवहारसमुद्देशो व्याख्यायते । तत्र तावन्नराणां (कलत्रं यद्ववति तदाह —

कलत्रं नाम नराणामनिगडमपि दृढं बन्धनमाहुः ॥ १ ॥

टीका— एतद्यत्कलत्रं भार्यालक्षणं नराणामनिगडमपि मुकोमलम
दृढं बन्धनमाहुः कथयन्ति लोकाः । तथा च शुकः—

न कलत्रात्परं किञ्चिद्बन्धनं विद्यते नृणां ।

यस्मात्तत्स्नेहनिर्बद्धो न करोति शुभानि यत् ॥ १ ॥

अथ यानि यावन्ति नरेण पोषणीयानि तान्याह—

त्रीण्यवश्यं भर्तव्यानि माता कलत्रमप्राप्तव्यवहाराणि चा-
त्यानि ॥ २ ॥

टीका—अवश्यं निश्चयेन त्रीण्येतानि वक्ष्यमाणानि भर्तव्यानि पो-
षणीयानि । एका तावन्माता । द्वितीय कलत्र । तृतीयमपत्यानि । किं
विशिष्टानि ! अप्राप्तव्यवहाराणि यानि व्यवहार कर्तुं न जानन्ति । तथ
च गुरुः—

मातरं च कलत्रं च गर्भरूपाणि यानि च ।

अप्राप्तव्यवहाराणि सदा पुष्टिं नयेद्बुधः ॥ १ ॥

अथ तीर्थसेवायाः फलमाह—

दानं तपः प्रायोपवेशनं तीर्थोपासनफलम् ॥ ३ ॥

टीका—तीर्थोपासनस्य तीर्थसेवाया फलत्रयमेतत् । एकं तावद्दानं
तथा द्वितीयं तपः । तृतीयं प्रायोपवेशनं अनशनकरणमित्यर्थः । न
तीर्थमात्रिन्य गृहस्थापारे यथा वर्तितव्यं । तथा च गर्गः—

ટીકા—યત્ર યસ્મિન્ જાનેડમ્બતા મવતિ મર્કડમ્બતા । કમ્ય । યિત્યય
 ઇદ્દાનં મવતિ । હોવનવદમ્બતાયિ મેવામ્બતા તથા । પુનઃપુનઃ, મર્કડ,
 મેવામ્બતાઃ સ્મર્યોડિવિ (૧) ચિત્ત પડ્યતિ, યા પુનઃવિદ્યામયો મવતિ સ્મર્યો
 મુખ્યમાયિ સમ્મર્ક (ન) નમ્મવત્તિ । મથા જ શુભ.—

વિદ્યામયો મવેદ્ધાયા પદ્યજ્ઞવિ ન પદ્યવતિ ।

પુનઃપુનઃ પૂર્યમોર્ક જ માતિવાદો જ વાદ્યતા ॥ ૧ ॥

અથ મીઠનલ્લપમાદ—

મુર્કિ મીઠન્યે યત્ર પર્વેશ્વે વિદ્યુનમાવા ॥ ૧૮ ॥

ટીકા—યત્ર યસ્મિન્ મીઠન્યે પર્વેશ્વે વિદ્યુનમે વિદ્યુનમે વિદ્યુનમે
 તથા પ્રિયાતપાઃ પ્રિયતે ન મીઠન્યમ્બાઠન વિવદ્યવર્તમા ॥ મર્કા જ
 પુનઃ—

પ્રિયસ્યેડિવિ પ્રિયં મુતે પર્વેશ્વે જુ વિદ્યામતે ।

મીઠન્યે તથા વિદ્યેવં યથા વિદ્યાવિદ્યામતે ॥ ૧ ॥

અથ લક્ષ્યા શુભમાદ—

માર્કિ ધીર્ધયા ન સન્તોષા સમ્પુરુષાણા ॥ ૧૯ ॥

ટીકા—લક્ષ્યમુપાણા યથા લક્ષ્યા વિદ્યામાતપા સન્તોષા જ મર્કા
 સાધિ વિદ્યામાતપા નામોતિ માતપા । આપ્તોત્ત્વે ન સન્તોષા સમ્પુ
 રુષાણા લક્ષ્યાવિવતિ સન્તોષા સન્તોષા સન્તોષા સન્તોષા સન્તોષા
 જાતી જ જાતપાતો ।

મીઠનલ્લપમાદ ।

સન્તોષિ સોના હરપન્ત મુર્કિયા જાતપા અધ્યા ॥ ૧ ॥

અથ જ વાદ્ય દુષ્ટમાદ

મર્કિ જુર્કે પર્વેશ્વે સમ્પુરુષાણા ॥ ૨૦ ॥

टीका—यत्र यस्मिन् कृत्ये उपकारलक्षणे उक्तिर्भवति चाकूते व्यर्थता स्यात् तत्कृत्यं न भवति स्नेहलक्षणं पारत्रिकं च । तथा भागुरिः—

योग्यस्य कुरुते कृत्यं प्रति कृत्यति वाञ्छया ।

न तत्र कृत्यं भवेत्तस्य पश्चात्कलप्रदायकम् ॥ १ ॥

अथ यकाम्यां मिथो निर्वाहो न भवति तावुच्येते—

तयोः को नाम निर्वाहो यौ द्वावपि प्रभूतमानिनौ पण्डितौ
लुब्धौ साहंकारी ॥ २१ ॥

टीका—तयोस्तस्मिन् कृत्ये निर्वाहो भवति ताभ्यां तत्प्रयोजनं सिध्यतीत्यर्थः । तथा द्वावपि पण्डितौ शास्त्रज्ञौ परं लुब्धौ तथा द्वावपि मूर्खौ परस्परमसहनौ । एवं ज्ञात्वा तुल्यगुणौ तौ कृत्ये न नियोजनीयौ बुद्धिमता स्वार्थसिद्धये । तथा च हारीत ।

समर्थौ मानसंयुक्तौ पण्डितौ लोभसंश्रयो ।

मिथोपदेशपरौ मूर्खौ कृत्ये मिथो न योजयेत् ॥१॥

अथ स्वदत्तस्य निषेधमाह—

स्ववान्त इव स्वदत्ते नाभिलापं कुर्यात् ॥ २२ ॥

टीका—न कुर्यात् न कर्तव्य । कौऽमौ अभिलापो वाञ्छालक्षणः । कस्मिन् 'स्वदत्ते आत्मनैव यदत्त दान । कस्मिन्निय स्ववान्त इव निजच्छेदित इव । मिष्टान्तमपि यच्छेदित तस्योपरि यथा वाञ्छा न क्रियते, एव निजदत्तेऽपि । तथा च जैमिनि —

व्यवहारसमुदेशः ।

स्वयं दत्तं च यद्दानं न ग्राह्यं पुनरेव तत् ।
यथा स्वयान्तं तद्वच्च दूरतः परियर्जयेत् ॥ १ ॥
कुटीनैः प्रत्युपकारे कृते यत्कर्तव्यं तदाह—

उपकृत्य मूकमाबोजभिजातीनाम् ॥ २३ ॥

टीका—येऽभिजाताः कुटीना भवन्ति ते शोषकार कृता मूका
न्ति । मया तैरेव कृतमेवं न वदन्ति प्रत्युपकारभयात् । तथा च
दुर्नन्दवः—

इयमपरा काचिद्दृश्यते महतां महती वा भावचितता ।
उपकृत्य भवन्ति दूरतः परतः प्रत्युपकारशंकया ॥ १ ॥
अथ सत्पुरुषाणां बधिरभावो भवति तदाह—

परदोषश्रवणे बधिरभावः सत्पुरुषाणां ॥ २४ ॥

टीका—भवति । कोऽसौ बधिरभावः । कस्य सत्पुरुषाणां । कः
परदोषश्रवणे । ये सत्पुरुषा भवन्ति ते परदोषश्रवणे बधिरा भवन्ति ।
कोऽयं धृनमप्यश्रुतमिव ते परदोषं हृदये न वाग्यन्ति । तथा च
गर्गः—

परदोषाद्य दृष्टव्यं येऽपि स्मृतेरपुण्याः ।
दृष्टव्यतामपि शोषं स्याद्यतो दोगान्यमममयान् ॥ १ ॥

अथ महाभाग्यानामन्नामो यथा भवति तदाह—

परकलत्रदर्शनेऽन्धभावो महाभाग्यानाम् ॥ २५ ॥

टीका—महान्ति भाग्ये नि पुरुषाणि ३२४ तानि यस्मै महाभाग्यान्नेषा
मन्त्रेचनानामन्त्रेऽन्नामो भवति । कस्मिन् माने परकलत्रदर्शने । कोऽर्थो
दर्शितमपि परकलत्रं नाम पितृनीयं । तत्र ये दर्शयन्ति—

अन्धदेहान्तरं धर्मो ये कृतश्च सुपुत्रकः ।
इह जन्मनि तेऽन्धस्य न वीक्षन्ति नितावनीम् ॥ १ ॥

वान् अधिजनाश्च । येनार्जितेन देवान् द्विजान् प्रीणाति तथार्थिजनान्
चकान्, (न) केवलं स्वयमुपमुक्तं । तथा चर्पिपुत्रकः—

कायस्त्रेदो भवेद्यस्तु धनार्जनसमुद्भवः ।
स शंस्यो धनितो योऽथ संदिभाषो द्विजार्थिपु॥१॥

अथ नीचानां स्वरूपमाह—

चणका इव नीचा उदरस्थापिता अपि नाविकुर्वाणास्ति-
ष्ठन्ति ॥ ३० ॥

टीका—ये नीचा अतिनिरुद्धास्ते उदरस्थापिता अपि नाविकुर्वाणा
नापकारबाध्यास्तिष्ठन्ति । क इव ? चणका इव । यथा चणका धान्य-
विशेषाः स्वोदरे धृता नाविकुर्वाणास्तिष्ठन्ति जनमध्ये वातकर्मविक्रियं
दर्शयन्ति हास्यतां नयन्तीत्यर्थः । तथा च भागुरिः—

चणकः सदृशा ज्ञेया नीचास्ताश्च समाधयेत् ।
सदा जनस्य मध्ये तु प्रकुर्वन्ति विडम्बनं ॥ १ ॥

अथ वन्द्यचरितस्य पुरुषस्य स्वरूपमाह—

स पुमान् वन्द्यचरितो यः प्रत्युपकारमनवेक्ष्य परोपकारं
करोति ॥ ३१ ॥

टीका—स पुण्यो वन्द्यचरितो यन् नमस्कारणीयं चरितमस्य स
वन्द्यचरितः । किमिति ? यः प्रत्युपकारमनवेक्ष्यमाणोऽपरोपकारं
करोति । तथा च भागुरिः—

उपकारगतां यस्तु बाधते न स्वयं पुनः ।
उपकारं स यस्तु स्थापयति न स्वयं ॥ १ ॥

अज्ञानस्य वैराग्यं भिक्षोर्विद्वन्वमधनस्य विलासां वेद्यानस्य
शौचमविदिनवेदितव्यस्य तच्चाग्रह इति पंच न कस्य मत्तक-
शलानि ॥ ३२ ॥

टीका—एतानि पंच वस्तुनि सर्वजनस्य मञ्जकगूलानि खेटकृणानि भवन्ति तान्याह—एकं तावदज्ञानस्य वैराग्यं । वैराग्यशब्देन मोक्षमार्गः कथ्यते तं जानाति संकरदोषान् कथयति । अथ द्वितीयं भिक्षोर्विद्वत् भिक्षुस्त्वापसस्तस्य या कामसेवा । तृतीयं यो दरिद्रस्य विलासां दरिद्रस्य निष्कंचनस्य ये विलासाः शृङ्गारकरणानि । चतुर्थं वेश्यारतस्य शौचं, यद्रूढे वेश्या, (स) श्रोत्रियत्वं जनाभि प्रतिपादयति । पंचममवेदितवेदितव्यस्य तत्वाग्रहः पृथिव्या यानि पंचविंशतितत्त्वानि तेषां ग्रहः । तानि न जानाति तैर्यो वेदितव्यः स्वमात्मा तेषामुपरि अनादरः आत्मज्ञानानि वदति । तथा च भगवत्पादः—

मूर्खस्य तु सुवैराग्यं विट्कर्म तपास्विनः ।

निर्धनस्य विलासित्वं शौचं वेश्यारतस्य च ॥ १ ॥

तत्त्वन्यागो ब्रह्मविदो पंचंकराः स्मृताः ॥ २ ॥

अथ यः पुरुषः पंचमहापातकी भवति तत्स्वरूमाह—

स हि पंचमहापातकी योऽशस्त्रमशस्त्रं वा पुरुषमभियुञ्जीत ॥ ३३ ॥

टीका—स पुरुषो हि स्फुट पंचमहापातकी । यः किं ? योऽभियुञ्जीत (पुरुषं) अविग्रहार्थं । किंविशिष्टं ? अशस्त्रं शस्त्ररहितं सांयुधः तथाशस्त्रं मर्त्यपण्डितः । तथा च गर्ग —

स्त्रीत्याल्लगोद्विज्रस्वामिपंचानां वधकारकः ।

अशस्त्रं शास्त्रहीनं च हि युञ्जति ? ॥ १ ॥

अथ नीचभ्यापि पार्श्वे कार्यं विभाव्य गन्तव्यमित्याह—

उपाधुतिं धीतुमिव कार्ष्ण्यशार्धानमपि मयमुपगम्येत् ॥ ३४ ॥

टीका—उपगम्येत् गच्छेत् । क' नोद्यमवि भगव्यं । परमात्' (कार्यं यत्नात्) । किं कर्तुं' धीतुं । कार्ष्ण्यं' उपधुतिमिव शत्रुनिदानमिव । यथा प्रयोगेन जाते शत्रुनशब्दः धीतव्यं सशोऽर्थाथं भवति तत्कार्यं कर्तव्यं, अन्यथा न प्रानिनासते तात्पर्यं एवं नीचम्यापि समीपे गमना सद्रूपः धीतव्यं पदमुक्तं भवति तदा कार्ष्ण्यमधरा तात्पर्यं । तथा च गुणः—

अपि नीचोऽपि गन्तव्यः कार्ये महति संस्थितं ।

यदि कृष्णसदृशो भद्रं तन्कार्यमधरा त्यजेत् ॥ १ ॥

कार्यार्थी शोषं न पश्यतीति वचनान् ।

अथ वेश्यायां गृहागतायां यद्वदति तदाह—

वेष्ट्यागमो गृहिणीं गृहपतिं वा प्रत्यवसादयति ॥ ३५ ॥

टीका—यत्र गृहं वेश्यागमो भवति वेश्या प्रविशति तत्र सा प्रविष्टा गृहिणीं तावत्प्रत्यवसादयति जाते नयति । यथा गृहपतिं च येनानीता गृहेऽसद्रूपेण नाशयति । तथा च गुणः—

वेष्ट्यागमो गृहस्थस्य गृहिणीं नाशयेत्तुः ।

असद्रूपेण यथाय येनानीता नष्टं (म) त्यजेत् ॥ १ ॥

अथ नृपादीनि वेश्यामग्रेण यद्वदति तदाह—

वेश्यामंग्रहो देवद्विजगृहिणीचनृणामुच्चाटनमेवः ॥ ३६ ॥

टीका—याऽमा वेश्यामग्रहः । म' पुण्यस्य किरिशिष्ट' उच्चाटन-
मत्र कामेण उक्षेपणं । वारा' देवद्विजगृहिणीच नृणां । तस्माद्विचकिता
वेश्यामग्रहा न कर्तव्यः । तथा च गुणः—

न वेष्ट्या निम्नयेत्तुः किमप्यस्ति च मन्त्रिणं ।

स्वकार्यमेव कुशलो नरः सोऽपि च तद्रम्यन् (न) ॥ १ ॥

कृत्वा शीलपण्डितान् कृत्वा यादृच्छा प्रपुण्यन् ।

ततश्च मुच्यते सर्वनीयोपान्धपपुयेज ॥ २ ॥

अथ लोकस्य चौर्यरतस्य स्वरूपमाह—

अहो लोकस्य पापं यन्निजस्त्री रतरतापि निम्बसमा परगृही
‘शुनिकापि भवति रम्भासमा ॥ ३७ ॥

टीका—अहो आश्चर्यं लोकस्य पापं जानानः, किं पापमित्याह—
निजभार्या रतरता मुरता शुर्विणी च निम्बसमा कटुका मन्यते ।
पुनः परगृहीता अन्यभार्या शुनिकापि निकृष्टापि रम्भासमा स्व
विलासनीव मन्यते । तथा च बराहमिहिरः—

मांडव्यगिरिं श्रुत्वा मदीया वेगाथवा

मेवं साध्वीन पुंसु श्रिया यथा स्याज्जघनचपला ? ॥ १ ॥

अथ यस्य एका स्त्री तस्य यद्भवति तदाह—

स सुखी यस्य एक एव दारपरिग्रहः ॥ ३८ ॥

टीका—स पुरुषः सुखी भवति, यस्य किं ? यस्य एक एव दा
रपरिग्रहो द्वितीया भार्या न भवति । तथा च चाणिक्यः—

अपि साधुजनोत्पन्ने द्वे भार्ये यत्र संस्थिते ।

कलहस्तत्र नो याति गृहाच्चैव कदाचन ॥ १ ॥

एका भार्या त्रयो पुत्रा द्वौ हलौ दश धेनवः ।

द्रम्मापंचसहस्राणि दातव्यं भगवन्निद्रम् ॥ २ ॥

अग्निहोत्रं गृहे यस्य तस्य मर्त्योऽपि नाकभूः ॥ ३ ॥

अथ व्यसनिनो यथा सुख भवति तदाह—

व्यसनिनो यथासुखमभिमारिकासु न तथार्थवतीषु ॥ ३९ ॥

टीका—तासां स्वामिनीषु प्रभूतव्ययात् । तथा च टन्तिलः—

अल्पवित्तस्य यः कामः प्रचुरः स सुखप्रदः ।

याति संस्ते(से) विता नय.... .यावस्थं ति यद्गु ? ॥ १ ॥

अथार्थवतीनां दृग्गणमाह—

महान् धनव्ययस्तादिच्छानुवर्तनं दैन्यं चार्थवतीषु ॥ ४० ॥

टीका—इदं पत्रं प्रोक्तं तां अर्थवत् विज्ञापितं । तां
अर्थवत् विज्ञापितं । इदं पत्रं (म) अर्थवत् विज्ञापितं
अर्थवत् विज्ञापितं । तां अर्थवत् विज्ञापितं —
इदं पत्रं अर्थवत् विज्ञापितं ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । नमो भगवते वासुदेवाय ।
 श्रीकृष्णाय नमः । श्रीकृष्णाय नमः ।
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

[illegible]

अथ ये पदार्थाः पुराणग्रन्थेषु वर्णित आसन्—

महा इन्द्रो मया
अथ ये पदाणि पुराणग्रन्थानि मया विनाशिताः—
द्रावणं कम्बली जीवनं गर्दभः परिग्रहो पेटा दागृहे यस्य
मर्दकर्मणिधामदी ॥ ४१ ॥

.....
 अथ सर्वेदा पदार्थानां येनातिउत्तु गुणान् भवति तदा—
 वाङ्मनसि यत्तमेन मं

न दारिद्र्यान्तरं पुरुषस्य लाघटनमस्ति यत्तमेन सर्वे गुणा निष्कलता यन्ति ॥ ४२ ॥

न दारिद्र्यान्तरं पुनरुत्पन्नं निष्कलं यान्ति ॥ ४२ ॥
टीका—नानि न विद्यन्ते वि. न दारिद्र्यं विविधं वा प्रयत्नं।
यत्रापि दारिद्र्यात् यत् यत्प्रयत्नान्न विद्यमानं तत्रैव गुणा निष्कलं
नवन्ते।

उपकारायण धानि निजल व स्यादित्थं ।
अथानि पापेण गुणात्मा समल गुण

उपकारायति याति निश्चयः कथ्यते ।
यागिष्याति यागेण गुणाद्याः स्वमतं पूर्णी ॥ १ ॥

नानाशब्दाः समतः इति ननु —
यागिष्याति यागेण गुणाद्याः स्वमतं भवति ॥

अत्र व्याख्यापि लोकां धनिनां भाण्डां भवति ॥ ४३ ॥

ଅନ୍ତର୍ଦ୍ଧ୍ୟାସୀୟ ଶିକ୍ଷା

ଏହା ଏକ ପ୍ରକାରର ଶିକ୍ଷା ଯାହା ଗୋଟିଏ ଦେଶର ନାଗରିକଙ୍କୁ ଅନ୍ୟ ଏକ ଦେଶରେ ଶିକ୍ଷା ଦେବାକୁ ପଢ଼ାଇଥାଏ । ଏହା ସାଧାରଣତଃ ମାଧ୍ୟମିକ ଶିକ୍ଷା ପର୍ଯ୍ୟନ୍ତ ହୋଇଥାଏ । ଏହା ଶିକ୍ଷା ଦାନ କରିବା ପାଇଁ ଶିକ୍ଷକଙ୍କୁ ଏହି ଦେଶକୁ ଆସିବାକୁ ପଡ଼ିଥାଏ । ଏହା ଶିକ୍ଷା ଦାନ କରିବା ପାଇଁ ଶିକ୍ଷକଙ୍କୁ ଏହି ଦେଶକୁ ଆସିବାକୁ ପଡ଼ିଥାଏ ।

टीका—अधिको भवति गुणहीनेऽपि धनिनः ईश्वरस्य । कोऽपि सर्वोऽपि लोकः । एतदुक्तं भवति, किं तस्य विद्यमाना गुणवाञ्छित्य (?) । तथा च बह्मभदेवः—

न त्वया सदृशो दाता कुलीनो न च रूपवान् ।

कुलीनोऽपि विरूपांऽपि गीयते च धनार्थिभिः ॥ १ ॥

अथ भूयोऽपि धनिनो यद्वदति तदाह—

धनिनो यतयोऽपि चाटुकाराः ॥ ४४ ॥

टीका—यः पुमान् धनी तस्य यतयोऽपि सन्यस्ता अपि भवन्ति । किं विशिष्टा भवन्ति । चाटुकारा आस्तां तावदन्ये तेऽपि चाटूनि कुर्वन्ति भवत्येतत् । उक्तं च यतो बह्मभदेवेन—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः

स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ।

स एव वक्ता स च दर्शनीयः

सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥ १ ॥

अथ सर्वेषां पदार्थानां मध्ये यत्पवित्रं तदाह—

न रत्नहिरण्यपूताज्जलात्परं पावनमस्ति ॥ ४५ ॥

टीका—नास्ति न विद्यते । किं तत् ? अपर द्वितीयं पावनं पवित्रं । कस्माज्जलानोषात् । किं विशिष्टान् ? रत्नहरण्यपूतानि रत्न मरकतादि हिरण्यं मुवर्णं नान्या य पूत पवित्रं कृतं जलं तस्मात्, अपरं न हि पवित्रं विद्यते लोकं स्नानेन तत् शुभम् ।

अथोदकमाह—

स्वयं मेध्या आपो बन्धितप्ता विशेषतः ॥ ४६ ॥

टीका—एता या आपः सलिलानि तानि स्वयमेव पवित्राणि किं पुनर्बन्धितप्तानि विशेषतो मेध्यानि भवन्ति । तथा च मनुः—

भाषः स्वभाषतो भेष्याः किं पुनर्बन्दिमंगुताः ।

तस्मात्सम्पत्स्वदिच्छन्ति स्नानमुष्णेन पारिषा ॥ १ ॥

अथ उत्सवस्य उद्धरणमाह—

स एवोत्सवो यत्र बन्दिमोक्षो दीनोद्धरणं च ॥ ४७ ॥

टीका—उत्सवो बन्दिमोक्षोद्धरणः स एव कथ्यते यत्र बन्दिमोक्षः क्रियते
तथा दीनानामनाथानामुद्धरणं पौर्णिकं क्रियते स पुनस्तम्भवादधिकः ।
तथा च पारिषणः—

स एव पुनराभो यथापराः.....।

मन्यते मुच्यते यत्र एव दीनान् समुद्धरेत् ॥ १ ॥

अथ पर्वणां माहात्म्यमाह—

स्तानि पर्वाणि येष्वतिथिपरिजनयोः प्रकामं सन्तर्पणं ॥ ४८ ॥

टीका—सन्तर्पणं, संक्रान्तौ स्यर्त्तापातादीनि तान्येव पर्वाणि ज्ञेयानि
येष्वतिथिपरिजनयोस्तर्पणं दानं दीयते, परिजनस्य गृहस्य । तथा च
भारद्वाजः—

अतिथिः पूज्यते यत्र पौषयेस्वपरिग्रहं ।

तस्मिन्प्रदक्षि सखाणि पर्वाणि मनुस्मरणीन् ॥ १ ॥

अथ तिथीनां माहात्म्यमाह—

तास्त्वययो यासु नाधर्माचरणं ॥ ४९ ॥

टीका—त्रिंशत्तिथीनां मध्ये तास्त्वययो गण्यन्ते यास्वधर्माचरणं न
क्रियते किन्तु धर्म एव क्रियते । तथा च जैमिनिः—

यासु न क्रियते पापं ता एव तिथयः स्मृताः ।

दोषा येष्यास्तु विज्ञेया इत्येवं मनुस्मरणीन् ॥ १ ॥

अथ तार्थं यात्रामाहात्म्यमाह—

सा तीर्थयात्रा यस्यामकृत्यनिवृत्तिः ॥ ५० ॥

टीका—यत्र यस्यां तीर्थयात्रायां गतेरकृत्यं पापं न क्रियते सा तीर्थयात्रा कथ्यते यस्यां तु (पापं) क्रियते सा नरकयात्रा । तद् पुरोक्तं—

अन्यत्र यत्कृतं पापं तीर्थेऽस्याने प्रयाति तत् ।

क्रियते तीर्थगैर्यश्च वज्रलेपं तु जायते ॥ १ ॥

अथ पण्डितस्य माहात्म्यमाह—

तत्पाण्डित्यं यत्र वयोविद्योचितमनुष्ठानम् ॥ ५१ ॥

टीका—तत्पाण्डित्यं विचक्षणता यत्र वयस उचितं योग्यं न समाचारलक्षणं तथा विद्यायाश्च । तथा च गुरुः—

विद्याया वयसश्चापि या योग्या क्रिया इह ।

तथा येषश्च योग्यः स्यात् स ज्ञेयः पण्डितो जनैः ॥ १ ॥

अथ चातुर्यस्वरूपमाह—

तच्चातुर्यं यत्परग्रीत्या स्वकार्यमाधनम् ॥ ५२ ॥

टीका—परस्य पादर्याग्रीति कृत्वा यत्कृत्य साध्यते तच्चातुर्यं दत्तं यत्पुनरुपप्रदानभेददण्डैः साध्यते सा चतुरता न भवति । तथ शुकः—

यः शास्त्रात्साधयेत्कार्यं चतुरः स प्रकीर्तितः ।

साधयन्ति भद्रार्थं ते मतिवर्जिता ॥ १ ॥

अथ लोकोचितस्य कृत्यस्य स्वरूपमाह—

तल्लोकोचितत्वं यत्सर्वजनादेयत्वम् ॥ ५३ ॥

टीका—तल्लोकोचितत्वं लोकस्य योग्यं कर्म यत्सर्वजनादेयत्वं जन साभिलाषं करोति । तथा च बादरायणः—

तस्योचितं य.....यत्कृत्यं नापर स्मृतं ।

साभिलाषं न कुर्वन्ति यस्य सर्वे जना इह ॥ १ ॥

अथ मीनजन्मस्य माहात्म्यमाह—

तत्तमीजन्मं यत्र नास्ति परोद्वेगः ॥ ५४ ॥

टीका—तत्तमीजन्मं मुक्तनता यत्र परस्य धिद्वेगो न भवति तस्य
प्रेष्टिनेनापि सर्वो जन्मः मानन्दो भवति नोद्वेगो परोनि । तथा च बाद-
रायणः—

यस्य हृत्प्रेतं हृत्प्रेतं नान्दं कदाचनोद्वेगः ।

मीजन्मं तस्य तद्वेगं विपरीतमतोभ्यधा ॥ १ ॥

अथ धीमत्स्य माहात्म्यमाह—

तद्दीप्तत्वं यत्र यौवनेनानपवादः ॥ ५५ ॥

टीका—पुण्याणां तद्दीप्तत्वं कथ्यते यत्र यौवनेन पारदादिभेदजन-
नादो भवति न गुदो धीरत्वं । तथा च शौनकाः—

परदादिभेदेण कृत्स्नं परस्य यौवने ।

प्रयति या पुमान् धीरो न धीरो गुदकर्मणि ॥ १ ॥

अथ सीमापत्यस्यमाह—

तत्तमीभाग्यं यथादानेन यक्षीकरणं ॥ ५६ ॥

टीका—तत्तमीभाग्यं सीमापत्यं कथ्यते यथादानेन यक्षीकरणं न ।
यदापि दीपते सर्वोपि जनो वरागो भवति । तथा च गीता —

दानदीनोर्भाव यदागो जनो यस्य प्रजायते ।

गुणमा न पारमेधो न यो दानादिभिर्नेदः ॥ १ ॥

अथ सन्नाया दूरणमाह—

सा मभारण्यानी परस्य न मेति विद्वानः ॥ ५७ ॥

टीका—एषा सती विद्वान् पारिता न एषु सा सन्नायादी
वदती विद्वान् न सा सन्नाया । तथा च ५८ —

बलवन्तमाश्रित्य विवृतिभञ्जनं सद्यो मरणकारणं ॥ ६४ ॥

टीका—विशेषावृतिर्विवृतिर्भक्तिलक्षणा तस्या यो भगोऽभक्ति-
क्षणः स सद्यो मरणं लक्षणात्वोति । तथा च जैमिनिः—

भक्त्या संसेव्यमानस्य बलवन्तस्य ? कारणं ।

अभक्तिः स्तोकाभ्यामपि ? करोति मरणं ध्रुवं ॥ १ ॥

अथ प्रवासस्य स्वरूपमाह—

प्रवासः चक्रवर्तिनामपि सन्तापयन्ति किं पुनर्नान्यं ॥ ६५ ॥

टीका—प्रवासो देशान्तरगमनं सन्तापयन्ति मुदुःखं करोति । क-
चक्रवर्तिनमपि सर्वकामस्मृद्धमपि किं पुनरन्यं सामान्यं ज-
स्तोकसंबलं । तथा च चारायणः—

प्रवासे सीदति प्रायश्चक्रवर्त्यपि यो भवेत् ।

किं पुनर्यस्य पाथेयं स्वल्पं भवति गच्छतः ॥ १ ॥

अथ प्रवासो यथा मुखेन नीयते तदाह—

बहुपाथेयं मनोनुकूलः परिजनः सुविहितोपस्करः
दुःखोत्तरणतरण्डको वर्गः ॥ ६६ ॥

टीका—प्रवासे देशान्तरगमने एतेषां पदार्थानां योऽसौ वर्गः
सत्वात् । किंविशिष्टः स्यात् ? दुःखोत्तरणतरण्डकः सर्वदुःखानां उत्प-
लघने यानपात्र अधिक तावत्संबलं भवति । तथा योऽपि परिजनः
परिग्रहो मनोनुकूलो भवति । तथा सुविहितोपस्कर उपस्करशब्देन प्रवास-
सामग्री सर्वान्नाहिका (१) कथ्यते सा च सुविहिता भवति । एतेषां साम-
सकन्धा चैव प्रवासे [स] मुखं ददेत् ।

२७ विवाद-समुद्देशः ।



अथ विवादसमुद्देशो लिख्यते । तत्रादावेव राज्ञः स्वरूपमाह—
 गुणदोषयोस्तुलादण्डसमो राजा स्वगुणदोषाभ्यां जन्तुषु
 त्वलायवे ॥ १ ॥

टीका—योऽसौ राजा । स किंविदिष्ट 'तुलादण्डसमः' । काम्या !
 स्वगुणदोषाभ्यां । कयो ! गुणदोषयोः । केषु 'जन्तुषु' । कस्मिन् ! गौरव-
 लायवे । यस्य गुणा अधिकास्तस्य गुण्यं । यस्य दोषा अधिकास्तस्य
 लघुत्वं फल्यं ।

अथ समवर्तिनो भूपस्य यद्वदति तदाह —

राजा त्वपराधालिङ्गितानां समवर्ती तत्फलमनुभावयति ॥ २ ॥

टीका—यो राजा भवति समवर्ती भूत्वा तेषामपराधादिङ्गितानां
 तत्फलं सम्भवन् तत्स्वयमेव मभावयति चिन्तयति । तथा च गुरु —

विजानीयान् स्वयं वाच्य भूमिजा अपगधिनाम् ।
 मृषा किं वाधवा मन्य स्वगपृषन्निवृद्धये ॥ १ ॥

अथ मन्यानां स्वरूपमाह—

आदित्यवधवावन्धितार्थप्रकाशनप्रतिभाः मन्याः ॥ ३ ॥

टीका—राज्ञो ये मन्याः समामदो भवन्ति । ते किंविदिष्टा 'आदि-
 त्यवधवावन्धितार्थप्रकाशनप्रतिभा' यथादि यो यः रात्रिभित्तिप्रकाशनप्रतिभा भवति
 तथा मन्यैरपि सर्वव्यावहारिकप्रकारप्रयोगे न भवन्ति । तथा च गुरु —

यथादित्योऽपि सर्वार्थान् प्रकटान् प्रकरोति च ।
 तथा च व्यवहारार्थान् प्रयासोऽमी ममासद् ॥ १ ॥

तथातं विवादेन यत्र स्वयमेव मभापतिः प्रत्यर्था सम्बन्धमा-
पत्योरमांमञ्चस्येन कुतो जयः किं बहुभिर्लङ्घनैः श्वा न
क्रियते ॥ ६ ॥

टीका—अत्र पर्याप्तं । येन विवादेन । कः ? तत्र तस्या मभाया ।
पत्या किं ? पत्या मभापती राज्ञा स्वयमेव प्रत्यर्था प्रतिपत्ति भवति तत्र
सम्बन्धेः सहाय्यमञ्चस्ये भवति सम्बन्धानां भूयतिना सह कुतो जयः वादा-
धेनुपगताना । पञ्चाङ्गं यदति तदन्वयेऽपि बहवो वदन्ति ततो न्यायोऽपि
तस्यान्यायो भवति, परं न्यायः, अन्यायः मन्त्रापते । यत्र किं
बहुभिर्लङ्घनैः सारमेयो न क्रियते । तथा च द्रुक्कः

प्रत्यर्था यत्र भूयः स्वात् नत्र पार्थ न कारयेत् ।

यतो भूमिपतेः पक्षं सर्वे प्रोचुस्तथानुगाः ॥ १ ॥

अथ विवादिनो लक्षणमाह—

विवादमाध्याय यः मभायां नोपतिष्ठेत्, समाहृतोऽप्यगरति,
पूर्वोक्तमुत्तरोक्तेन वाचते, निरुत्तरः पूर्वोक्तेषु युक्तेषु युक्तमुक्तं
न प्रतिपद्यते, मन्त्रोपमनुवृत्त्य पदोपमुपालभते, यथार्थवादेऽपि
द्वेष्टि मभामिति पराजितलिङ्गानि ॥ ७ ॥

टीका—एषा मन्त्रमाध्याय राजानिना न रन्ति किन्तानि विवादमाध्याय
विवाद निरुत्तरं यत्र य मभायां नोपतिष्ठेत् । तथा समाहृ-
तोऽप्यगरति, समाहृत आकारान्, ३ ' मन्त्रोपमनुवृत्त्य पदोपमुपालभते ।
तथा पूर्वोक्तमुत्तरोक्तेन वाचते नन । विवादिना संबन्धेन । तथा यदति
नद्विर्गतेन पाश्चात्यस्वनेन वाचतेऽन्यथा वदति । तथा निरुत्तर
पूर्वोक्तेषु वचनेषु, मन्त्रोपमनुवृत्त्य पदोपमुपालभते । तथा मन्त्रोपमनुवृत्त्य पदोपमुपालभते ।

१ अस्माद्वारं वाचनार्थं युक्तं न वर्तते । २ ' बहुभिर्लङ्घनैः
युक्तं पाठः ।



आराधनांश्च या भुजिताः स्वाभेदाः श्राद्धिषोऽपि ये ।
 दास्यन्ते कुर्यान्तीत्यसमप्रमाणाणि र्जाप्यादि ॥ १ ॥

અપા-દર્શિ પ્રમાણે યજ્ઞ અર્ચિ તદા —

इत्याङ्गुलमन्यासकृतं राज्ञोपधित्तं च न प्रमाणं ॥ ११ ॥

टीका—अथा-या-अधि त्रीयेत्यानि दृष्ट्वा चोक्तं क्रियते तथा-
अधेन क्रियते तत्र गन्तोदधिना गन्धर्वेन क्रियते तद्व्यवहारः । तथा च
आशुभिः —

आदाकारेण यत्कृतं तस्याध्यापनमनया ।
तज्जोषधिकृतं यच्च तत्प्रमाणं भवेत्तु हि ॥ १ ॥

अथ दत्तमात्रं वर्धति मन्त्रः —

श्रेयसाकितयोरुक्तं प्रदणानुसारितया प्रमाणवितप्यं ॥१२॥

[illegible]

या पदया वक्ष्यते अथ संपुमात्रं बहु व्रजं ।
स्वादिवा एतन्नाम्येतां द्वयसि न मनी ॥ १ ॥

100 100 100 100 100

अमत्यक्षां ध्यवहां नास्ति विरादः ॥ ५३ ॥

$$T(\eta_i) = -J_i \quad \text{and} \quad J_i = \int_{\eta_i}^{\eta_{i+1}} \frac{1}{2} \sigma^2 \, d\omega + \frac{1}{2} \sigma^2 \quad \text{for } i = 1, \dots, n-1.$$
[illegible]

असंख्यकृतसंयुक्तो व्ययहासः नगधिपः ।

पिपादा यादिना नत्र नैव यत्नः कथञ्चन ? ॥ १ ॥

यलात्कारेण या भुक्तिः साक्षिणोऽत्र ये ।

शासनं कूटलिखितमप्रमाणानि शीष्यपि ॥ १ ॥

अथान्यदपि प्रमाणं यन्न भवति तदाह—

बलात्कृतमन्यायकृतं राजोपधिकृतं च न प्रमाणं ॥ ११ ॥

टीका—अथान्यान्यपि श्रौच्येतानि यद्वलात्कारेण क्रियते तथाऽ-
न्यायेन क्रियते तथा राजोपधिना राजबलेन क्रियते तदप्रमाणं । तथा च
भागुरिः—

यलात्कारेण यत्कुर्युः सभ्याभ्यान्यायतस्तथा ।

राजोपधिकृतं यच्च तन्प्रमाणं भवेन्न हि ॥ १ ॥

अथ यत्प्रमाणं भवति तदाह—

वेद्याकितवयोरुक्तं ग्रहणानुसारितया प्रमाणयितव्यं ॥ १२ ॥

टीका—तथा दृढकारसम्बन्धि यद्व्यति तदपि ग्रहणानुसारं
तद्व्यति । यदि वेद्याग्रहणक स्वल्पमन्यकं भवति गृहीतं बहूनि दिनानि
शामूकेन सेवितो तत्तावन्मात्रं मन्यं लभते ततो नान्यदधिकं । तथा
दृढकारेणापि यदि स्वल्पमन्यं ग्रहणं प्रभुत्वं हारितं, तत्पहिता
ग्रहणादधिकं ग्रहणादधिकं मन्यं न लभते । तथा च र्व्यः—

यो वेद्या यन्धकं प्राप्य लघुमात्रं यद्वा यज्जेत् ।

सहिको दृढकारश्च हर्ता डायपि ने तर्ता ॥ १ ॥

अथ विवादो यथा न भवति तदाह—

अमत्यङ्गारं व्यवहारे नाम्नि विवादः ॥ १३ ॥

टीका—यं व्यवहारं यदि नामम यकारं न यकारहितं तत्र
विवादो न भवति । तथा च अदिभूतः—

अमत्यङ्गारममुक्तो व्यवहारो नराधिप ।

विवादो यदिना तत्र नैव युक्तः कश्चन ॥ १ ॥

अभिवृत्तीत येन्मत्स्यः परार्थं वा विदुम्यते ।

हापथस्तस्य ब्रह्मो वा वाग्यो वा दिव्यमुच्यते ॥ १ ॥

अथाभिधानपुनराय यदासिद्धिर्भवति तदायतर्णाय तदाह—

अनिचारयोगविशुद्धस्यापि युक्तार्थमम्भायनायां प्राणावशेषोऽ-
थापहारः ॥ १७ ॥

टीका—यदि बाढी अभिजातयोगे कूटप्रयोगैः सिद्धः स्यात् तदानी-
मुक्तसंभावनायां प्राणावरोधोऽर्थादहार कथं । एतदुक्तं भवति, तस्य
केवलाः प्राणा गृह्णीया विनयश्च सर्व एव नृमुखा प्रायः । तथा
च शम्भुः—

यदि धारी प्रबुद्धां विद्यायः कृद्वैः कृतः ।

पञ्चाक्षस्य च विज्ञानं सर्पस्यदृष्ट्यै स्मृतं ॥ १ ॥

अथ येषां दिव्यं न दीयते तानाह—

टिगिनास्तिकस्याचाराच्युतपतितानां दैर्घ्या क्रिया नास्ति । १८।

टीका—नास्ति न विदने । यस्मात् / क्रिया । किमिति ? दैवी
दिव्यसम्भवा । कथं तर्हि तेषामपराधे संजाते बुद्धिस्तयोप्यते;—

तेषां युक्तितोऽयमिद्विगमिद्विर्वा ॥ १९ ॥

टीका—युक्त्या कषयक्रमानुष्ठाने मेधा विज्ञाय तत्र शुद्धिर्देया ।

सिद्धांश वाङ्मयण —

शुक्लया विचिन्त्य स्वर्घेण स्निग्धना तथम् श्रियां ।

द्वया पञ्चभूतया शुद्धिः समस्या विधेर्जनम् ॥ १ ॥

अथ सङ्ग्रहः पत्र सङ्ग्रहः यत्र सङ्ग्रहः काव्य लक्षणः—

संदिग्धं पत्रं साक्षं वा विचार्य परिच्छिन्वान् ॥ २० ॥

श्रीवा- श्रीविष्णुदासजया २५ । ३ सत्य प्रमर्दि

निर्मुक्तं पुनः । यत्तु विनायकम् न । ये) अथैवमिति ।
स यवादी भिद्यमानादी वा क्व तल्लोकाद्या इत्येव । तथा च

पारं नृपतिनिर्णयं सोऽन्यथा कुर्यते दृष्टात् ।

तत्तत्प्राप्यरेषं यथ्यः स्यात् विष्णुं समानरेत् ॥ १ ॥

अप दुर्जनानां राज्ञा यः कर्तव्यं तद्वक्तव्यमिति दर्शयति—

न हि दण्डादन्योऽस्ति विनयोपायोऽप्रितंयोग एव यक्रं
काष्ठं सरलयति ॥ २४ ॥

टीका—दुर्जनानामन्दावर्तिना दण्डं मुक्त्वाऽप्यो निग्रहो नास्ति । केन दण्डन्तेन ? यतः सारूप्येति शत्रुतां नयति । किं ? यत्नं क्वापि कुटिलं दाह । कोऽस्ती ? अग्निसंयोगः । यथा वनं क्वापि वह्नियोगात्प्राज्वली- भवति एवं पापिलोकोऽपि दण्डेन शत्रुतां याति । तथा च शुक्रः ।

यथात्र कुटिलं काष्ठं पण्डित्योगाद्भयेदृष्टुः ।

दुर्जनोऽपि तथा दण्डादनुर्भयनि तत्क्षणात् ॥ १ ॥

अथ ऋतुपुरुषस्य यद्वचति तत्सरलदृशरघ्यन्तेनाह—

शृङ्खलं सर्वेऽपि परिमबन्ति न हि तथा वक्रतरुण्डितने यथा सरलः ॥ २५ ॥

टीका—य पुमान् ऋतुर्भवति ते सर्वेऽपि जनः परिभवन्ति न
 कुटिलस्वभावाः । केन दृष्टान्तेन ? न हि तदा वक्तव्यं मुर्येन स्थिरते
 यथा सरलं प्राञ्जल इति । तथा च गुरु —

श्रुतः सर्वे च लभन्ते न यथाऽथ पाठ्यम् ।

यथा मयसां पृथ मुम छिद्यते छन्दः ॥ १ ॥

अथ यथा गच्छ पुष्पगण गच्छतः प्रत्येकं वक्ष्येयम्—

स्वोपादम्भपरिहारं परमुपालभेत म्यामिनमुत्कर्षन् गोष्ठी-
मवतारयेत् ॥ २६ ॥

शंका—अस्माभ्यन् विन्नाभयेत् । का ? गोप्नी चान्ता । किं कुर्वन् ?
उत्तरायन् नान्ताद् कुर्वन् । कः भ्रान्तन । केन हन्ता ? स्वोपाश्रयपहि-

टीका—अपहारयति नाशं नयति । क' नयितवर्थं गृहस्थितं वित्तं ।
कथं ! सह, कैः प्राणैर्जीविनेन । कोऽसौ ! निविर्त्तय आकास्मिकोऽधदे-
यो लाभश्च । तथा निधानलाभे आकास्मिकलाभे च शान्तिकर्तृटिकादिकानि
कार्याणि यतः ।

अथ उत्पातलक्षणमाह—

प्राद्वजानां हिरण्यसङ्घोर्षावस्पर्शनं च शपथः ॥ ३० ॥

टीका—नाम्नानां यदि विवादो भवति तदा मुषर्णस्पर्शने तथा
सङ्घोर्षावस्पर्शनं च शपथो नाम्नः । तथा च गुरुः—

हिरण्यस्पर्शनं यद्य् ब्रह्मसूयस्य चापर ।

शपथो ह्येव निर्दिष्टो द्विजातीनां न चापरः ॥ १ ॥

अथ क्षत्रियाणां शपथस्वरूपमाह—

शस्त्रगन्धभूमिवाहनपल्याणानां तु क्षत्रियाणाम् ॥ ३१ ॥

टीका—क्षत्रियाणां तु पुनः शस्त्रस्पर्शनं गन्धस्पर्शनं भूमिस्पर्शनं
वाहनस्पर्शनं पल्याणस्पर्शनं च पञ्चभिः सृष्टेः शपथो भवति । तथा च गुरुः—

शस्त्रगन्धभूमिवाहनपल्याणस्पर्शनाङ्गवेत् ।

शपथः क्षत्रियाणां च पञ्चानां च पृथक् पृथक् ॥ १ ॥

अथ वैश्यानां शपथस्वरूपमाह—

श्रवणपातस्पर्शनाद् काकिर्णाहिरण्ययोर्वा वैश्यानां ॥ ३२ ॥

टीका—श्रवणं कणं तथा पातं वायुमनसं स्पर्शनं शपथो भवति ।
अथवा काकिर्णाहिरण्ययोर्वा काकिर्णां त्रिशकपटिका हिरण्यं श्रवणं
ताभ्यां स्पर्शनेन वैश्यानां शपथः । तथा च गुरुः—

शपथो घृष्टयज्ज्वलाणां स्पर्शनाङ्कणैर्वा वै ।

काकिर्णास्व'योऽपि शुद्धिर्मेवान्न नान्यथा ॥ १ ॥

अथ शूद्राणां शपथमाह—

शूद्राणां धूर्गर्वाजयोर्वल्मीकस्य वा ॥ ३३ ॥

टीका—शूद्राणां तु पुनः क्षीरस्पर्शनेन तथा बीजस्पर्शनेन वर्त्मक-
स्पर्शनेन च शपथो भवति । तथा च गुरुः—

दुग्धस्यान्नस्य संस्पर्शोद्धर्मीकस्य तथैव च ।
कर्तव्यः शपथः शूद्रैः विचादे निजशुद्धये ॥ १ ॥

अथ कारूणा शपथस्वरूपमाह—

कारूणां यो येन कर्मणा जीवति तस्य तत्कर्मोपकरणानां ॥ ३४ ॥

टीका—चतुर्वर्णानां येऽन्ये लोका रजकचर्मकारादयस्ते कारकाः
कथ्यन्ते तेषां यो यत्कर्म कुरुते तस्योपकरणेन स्पृष्टेन शपथः । रजकस्य
बस्त्रकुट्टनेन तदुपकरणेन । एवमन्येषामपि यान्युपकरणानि कर्मकृतेः तैः
स्पृष्टेन शपथः । तथा च गुरुः—

यो येन कर्मणा जीवेत् कारुस्तस्य तदुद्भवं ।
कर्मोपकरणं किञ्चित् तत्स्पर्शाच्छुद्ध्यते हि सः ॥ १ ॥

अथ व्रतिनामन्येषामपि लोकानां यथा शुद्धिर्भवति तदाह—

व्रतिनामन्येषां चेष्टदेवतापादस्पर्शनात्प्रदक्षिणादिव्यकोशा-
त्तन्दुलतुलारोहणं विंशुद्धिः ॥ ३५ ॥

टीका—व्रतिना नपस्विना च पार्श्वीत, येऽन्ये लोकास्तेषामपीष्ट-
देवतापादस्पर्शनेन शुद्धिः । अथवा तत्प्रदक्षिणया दिव्येन कोशपानेन
या तन्दुलभक्षणैर्वा विंशुद्धिः । तथा च गुरुः—

व्रतिनांऽन्ये च ये लोकास्तेषां शुद्धिः प्रकीर्तिता ।
इष्टदेवस्य सस्पर्शात् दिव्यैर्वा शास्त्रकीर्तितैः ॥ १ ॥

अथ व्याधानां शपथस्वरूपमाह—

व्याधानां तु धनुर्लघनं ॥ ३६ ॥

टीका—व्याधानां तु धनुष्मता पुलिङ्गानां धनुर्लघनं चापोपरिगमनं ।
तथा च गुरुः—

पुष्टिदानां प्रियादे च चापलंघनतो भवेत् ।
विशुद्धिर्जीवने तेषां यतः स्वयं प्रकीर्तिता ॥ १ ॥

अथ त्याग्यानां दाप्यस्वरूपमाह—

अन्त्यवर्णावसायिनामाद्र्चर्मरोहणं ॥ ३७ ॥

टीका—अन्त्यवर्णावसायिनश्चाण्डालस्तेषामाद्र्चर्मचटन रापथः ।

तथा च शुकः—

अन्त्यजातां तु सर्वेषामाद्र्चर्मोपरोहणं ।
रापथः शुद्धिदः प्रोक्तो यथान्येषां च वैदिकः ॥ १ ॥

अथादाश्रयतानि यानि तान्याह—

वेद्यामहिला, भृत्यो भण्डः, क्रीणिनियोगो, नियोगिमित्रं
चत्वार्यंशवतानि ॥ ३८ ॥

टीका—एतानि चत्वारि वस्तूनि अशाश्वतानि विनशनशीलानि
स्विराणि न भवन्ति । एका नावद्विद्यापानी, द्वितीयो भृत्यः, तृतीयः
क्रीणिनियोगः क्रीणिशब्देन कृतप्रहणं शुल्कादापप्रहणं उच्यते तस्य
योगः कर्तव्यं तदशाश्वतः । तथा चतुर्थे नियोगिमित्रं यन्मित्रं नियोगमधि-
कृतं करोति तद्विनाश्यातः । तथा च शुकः—

वेद्यापानी तथा भण्डं मेघकः कृतममहः ।
मित्रनियोगिन यद्य न चिरं र्ध्ययेतां व्रजेत् ॥ १ ॥

अथ वेद्यानां दूषणमाह—

क्रीतेष्वहारेष्विव पण्यस्त्रीषु क आम्वादः ॥ ३९ ॥

टीका—क आम्वादः कौटुम्भिकः । कामुः पण्यस्त्रीषु वेद्यामु
विषये । क्रीतेष्विव / क्रीताहारैष्विव मन्व्यगृहीतभोजनेषु यथानुगमो भवति
तथा वेद्याम्हापि तस्मात्ता मन्पुर्येण ग्राह्या । तथा च शुकः—

अथक्रीतेन भोज्येन यादृग्भुजनेन सा भवेत् ।
नाहवन्मग्रे वेद्याया मन्तोये जायते नृपः ॥ १ ॥

प्रबोधनं क्लेशाय भवति न तं यतो मूर्खो मुञ्चति । एवं स्थिते कि-
मप्यथ तस्योपशमनविषये उपेक्षणीयं न किञ्चिद्वक्तव्यं । तथा च
भागुरिः—

कर्पासे दृष्टमाने तु यथा युक्तमुपेक्षणं ।
एकप्रदृशे मूर्खे तद्वदन्यं न विद्यते ॥ १ ॥

अथ भूयोऽपि मूर्खस्य स्वरूपमाह—

मूर्खस्याभ्युपपत्तिकरणमुदीपनपिण्डः ॥ ४४ ॥

टीका—मूर्खस्य यदभ्युपपत्तिकरणं प्रबोधनं । तत्तस्य किञ्चिद्विशिष्टं
स्यात् । स तस्य प्रतिबोधनविषये उदीपनपिण्डो भवति मूर्खकृत्यस्य वृद्धि-
कारी भवति तस्मान्मूर्खं न प्रनिबोधयेत् । तथा च गौतमः—

यथा यथा जडो लोको विप्रेल्लोकैः प्रबोध्यते ।
तथा तथा च तज्जाड्यं तस्य वृद्धिं प्रयच्छति ॥ १ ॥

अथ कोपविशिष्टमूर्खाणां प्रबोधनेन कृतेन यद्भवति तदाह—

कोपाग्निज्वलितेषु मूर्खेषु तत्क्षणप्रशमनं घृताहुतिनिक्षेप
इव ॥ ४५ ॥

टीका—मूर्खेषु कोपाग्निज्वलितेषु मोर्धवेश्वानरदृष्टमानेषु तन्क्षणा-
देव तस्मिन् काले या सा प्रशमना शिक्षाप्रदानविषयं क्रियते । न कि-
ञ्चिद्विशिष्ट इव । घृताहुतिनिक्षेप इव । तद्वन् भवति यथाग्निं घृताहु-या
पर्यन्ते, एवं मूर्खस्य कोपोऽपि तद्वन् यानि प्रबोधनेन ।

अथ भूयोऽपि मूर्खस्वरूपमाह—

अनस्मिन्नोऽनङ्गानि प्रमाणां मूर्खैः परमाकुर्यन्ति ॥ ४६ ॥

टीका—मूर्खं कुर्वितोऽप्यमाणां निरापमाणाः, त्रिं परेण । किं करोति ।
“यस्य परमप्यतिशयेनाकुर्यन्ति शत्रुमनुजं नदीनाम् ।”

बलीवर्द्ध इव । किंविशिष्टः ? अनस्तितो नासारञ्जुरहितः । यथा नासार-
न्धनरहितो वृषो ध्रियमाणः पुरुषमपि समाकर्षयति । तथा च भागुरिः—

नस्तया रहितो यद्वद्भियमाणोऽपि गच्छति ।

वृषस्तद्वच्च मुखोऽपि धृतः कोपाद्भ्र तिष्ठति ॥ १ ॥

अथ गोपालस्योपदेशो नावस्तुनः पदार्थस्य यथा वस्तुत्वं न भवति
तदाह—

स्वयमगुणं वस्तु न खलु पक्षपाताद्गुणवद्भवति न गोपालस्ने-
हादुक्षा क्षरति क्षीरम् ॥ ४७ ॥

टीका—स्वयमेवागुणमात्मनैव विरूपं यद्वस्तु तत्पक्षपातान्न भ्राम्यमानं
शोभनं न भवति । केन दृष्टान्तेन ? यथा गोपालभ्राघितेनोक्षा क्षीरं न
क्षरति दुग्धं प्रयच्छति । तथा च नारदः—

स्वयमेव कुरूपं यत् तन्न स्याच्छंसितं शुभं ।

यथोक्षा शंसितः क्षीरं गोपालेन ददाति नो ॥ १ ॥

इति विवादसमुद्देशः ।

पाङ्गुण्य-समुद्देशः ।

अथ पाङ्गुण्यं व्याख्यायते । तत्रादावेव योगक्षेमस्वरूपमाह—
शमव्यायामौ योगक्षेमयोयोनिः ॥ १ ॥

टीका—योगः कर्मलाभः क्षेमः कुशलं तयोर्द्वयोः शमव्यायामौ योनि-
रूपविस्थानं । तत्र लाभात् क्षेमं व्यायामादांगः । शमव्यायामउक्षणमा-
गामिसूत्रे वदिष्यतीति ।

शमव्यायामयोर्लक्षणमाह—

कर्मफलोपभोगानां क्षेमसाधनः शमः कर्मणां योगराधनो
व्यायामः ॥ २ ॥

टीका—कर्मणि कृते यत्फलं भवति तस्य ये योगा विद्यासास्तेषु
यत्क्षेमं कुशलं तस्य साधयन्ति करोति स शमः । य पुन कर्मरम्भः
क्रियते तत्र योऽसौ योग उच्यते स व्यायामः । तथा च श्रुतम् —

... ..

अथ देवस्य कर्मण स्वरूपमाह—

देवं धर्माधर्मा ॥ ३ ॥

टीका—य पुरुषो धर्मं वर्तमानं अर्थात् च पापं भक्षणं करोति तदेव ।
देवदृष्टेन प्राक्कनीयं कर्म प्राच्यते । येनान्यजन्तानि शुभं कृतं तत्पुन
करोति । येन पापं कृतं स पापं करोति । तथा च व्यासम् —
येन यच्च कृतं पूर्वं शान्तमभ्यस्यत तस्य ।
तेनैवाभ्यासयोगेन तर्थाभ्यासस्यत पुन ॥ १ ॥

टीका—यदन्यत्कार्यं चिन्तयमानस्यान्योऽर्थसम्बन्ध उपस्थानं करोति
स दैवापत्तः पूर्वकर्मसमुद्भवः शुभो वाऽशुभो वा । तथा च शुक्रः—

अन्याधिन्तयमानस्य यदन्यदपि जायते ।

शुभं वा यदि वा पापं ज्ञेयं दैवरुतं च तत् ॥ १ ॥

अथ मानुषायत्तस्य स्वस्वमाह—

युद्धिपूर्वहिताहितप्राप्तिपरिहारसम्बन्धो मानुषायत्तः ॥ ८ ॥

टीका—तथा च शुक्रः—

युद्धिपूर्वं तु यत्कर्म क्रियतेऽथ शुभाशुभं ।

नरायत्तं च तज्ज्ञेयं सिद्धं धामिदमेव च ॥ १ ॥

अथानुवृत्ते दैवे उपमरहितस्य यद्भवति तदाह—

सत्यपि दैवेऽनुकूले न निष्कर्मणो भद्रमस्ति ॥ ९ ॥

टीका—नास्ति न विद्यते । किं तत् ? भद्रं कल्याणं । कस्य ? निष्कर्मण
उपमरहितस्य पुरुषस्य । कस्मिन् मति ? अनुवृत्ते प्राप्नोते सति । कस्मिन्
दैवे प्राप्तनकर्मणि । तथा च ऋभदेवः—

उद्यमेन हि सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।

न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगा ॥ १ ॥

अथ केरले दैवपराय ॥ १२ ॥ नानाह—

न गन्तुं देवर्माहमानस्य हनमप्यस्ते मुखे मय्य प्रविशन्ति ॥ १ ॥

टीका—शरीरेणैव नानाह ॥ १२ ॥ नानाह ॥ १२ ॥ नानाह ॥ १२ ॥

प्रविशन्ति । तथा च नानाह—

प्राप्तं दैवपराय ॥ १२ ॥ नानाह ॥ १२ ॥

नानाह ॥ १२ ॥ नानाह ॥ १२ ॥

अन्यदपि नानाह ॥ १२ ॥ नानाह ॥ १२ ॥

यन्नायुर्गोपयथोः परस्परमम्बन्ध एकं तावापुरुषस्यायुर्भवति तदर्हमौषधं
न गतिं तपुण्यो जीवत्येव । अथायुर्न भवति तदर्हमपि तदौषधं न मिलति ।
अथनायुर्भवति, औषधं मिलति तदपि दीर्घायुः समीहितं न भवति ।
तथा च भारद्वाजः—

विनायुषं न जीवेत भेषजाणां शतैरपि ।

न भेषजैर्विना रोगः कथंचिदपि गाम्भ्यति ॥ १ ॥

अथानुष्ठीयमानस्य यद्वदति तदाह—

अनुष्ठीयमानः स्वफलमनुभावयन्न कश्चिद्धर्मोऽधर्ममनुव-
ध्नाति ॥ १५ ॥

टीका—न अनुवध्नाति न जनयति । कः अधर्मः । कोऽर्था ! धर्मः ।
किञ्चिदपि : अनुष्ठीयमानः क्रियमाणः । पुनः किञ्चिदपि : कश्चित्
कोऽप्यष्टप्रकारमप्यान् । किं कुर्वन्धर्मं न जनयति । स्वफलमनु-
भावयन्नात्मीयफलं प्रयच्छन् । एतदुक्तं भवति, धर्मं कुर्वतोऽधर्मं न
भवति । किं विनिष्टः सः —

इष्टा(ज्या)ध्ययनदानादि तपः स्तुत्यं क्षया धृतिः, इति ।

अलोभ इति धर्मोऽयं पञ्चाष्टविधः स्मृतः ॥

तथा च भागुति —

यः कश्चित् क्रियते कर्मे प्राणिभिर्धञ्जयाम्बितं ।

तं यव हरति प्रायः स्वफलेऽत्र प्रयत्नकम् ॥ १ ॥

अथ गङ्गा स्मरपमाह—

त्रिपुरुषमृतिं त्वाञ्च भूभुजः प्रत्यक्षं देवमस्मि ॥ १६ ॥

टीका—नास्मि न विष्णवे । किं तन् । देव । किञ्चिदपि । प्रयत्नः ।
कम्मान् भूभुजो गङ्गा मकाशान् । कुत त्रिपुरुषमस्मि शान्तिरिहस्मिन्-
गर्भमस्मिन्वात् । एतदुक्तं भवति, यद्यप्ये देवास्ते योगज्ञा न केनापि



टीका—एतौ उभयवाचनके द्वेयौ ।

अथोत्साहशक्तिवृत्तमाह—

विक्रमो बलं चोत्साहशक्तिस्तत्र रामो दृष्टान्तः ॥ ४० ॥

टीका—यस्य विजिगीषोर्विक्रमः पराक्रमो भवति । तथा बलं सैन्यं भवति उत्साहशक्तिः सोप्यते । अत्र रामो दृष्टान्तः—रामेण विक्रम-
यता देनरबलयुक्तेन रावणो निपातितः । तथा च गर्गः—

सहजो विक्रमो यस्य सैन्यं बहुतरं भवेत् ।

तस्योत्साहो तद्युद्धे या !.....दाशार्थः पुनः ॥ १ ॥

अथ विजिगीषोः शक्तिव्यययुक्तहीनस्य शत्रुतुल्यशक्तेर्यद्वति तदाह—

शक्तिव्ययोपचितो ज्यायान्, शक्तिव्ययोपचितो हीनः समा-
नशक्तिव्ययः समः ॥ ४१ ॥

टीका—यो विजिगीषुः शत्रोः सकाशाच्छक्तिव्ययोपचितो भवति
शक्तिव्ययाभ्यधिको भवति स ज्यायान् श्रेष्ठतमः परं जयति युद्धे । यः
पुनः शक्तिव्ययोपचितो भवति स हीनः परेण जयते । यः शक्तिव्यय-
तुल्यो भवति स समः प्रोच्यते यद्यपि समस्तथापि युद्धं न कर्तव्यं ।
तथा च गुरुः—

समेनापि न योद्धव्यं यद्युपायत्रयं भवेत् ।

अन्योन्यादिति ? यो सगो ह्याभ्या मंजायते यतः ॥ १ ॥

अथ पाहुष्य व्याख्यायते तस्य मंजावर्णमाह—

मंन्धिविग्रहयानामनमंश्रयद्वर्धीभावाः पाहुष्यं ॥ ४२ ॥

पणवन्धः सन्धिः ॥ ४३ ॥

१ वानरबलीत्यमहनुमदादिगृह्येन । वानरशब्दा वधवाचकः, न तु मर्कट-
वाचकः, २ मतायमेतत् ।

टीका—यत्र शत्रुणा सह पणवन्धः क्रियते केनचित्पदार्थेन गृहीते वा शत्रोस्तेन विहितेन यो भवति स पण उच्यते तेन सन्धिर्भवति तथा च शुकः—

दुर्वलो बलिनं यत्र पणदानेन तोषयेत् ।

तावत्सन्धिर्भवेत्तस्य यावन्मात्रः प्रजल्पितः ॥ १ ॥

अथ विग्रहस्य स्वरूपमाह—

अपराधो विग्रहः ॥ ४४ ॥

टीका—यदा यस्य विजिगीषोः कोऽप्यपराधं करोति तदा विग्रहः स्यात् ।

अथ यानस्वरूपमाह—

अभ्युदयो यानं ॥ ४५ ॥

टीका—यदा शत्रोरुपरि गम्यतेऽभ्युदयः क्रियते । अथवा बलवन्तं रिपुं ज्ञात्वान्यत्र गम्यते ।

अथासनस्वरूपमाह—

उपेक्षणमामनं ॥ ४६ ॥

टीका—यदा शत्रुगमन्तुमुद्यतो भवति तदा तस्योपेक्षणं कर्तव्यं सहमा दे (७) व स्थानयागं कर्तव्यम् । किं वा तेन सह युद्धशक्तिः किं वा नालि ।

अथ संश्रयस्य स्वरूपमाह—

परस्यात्मार्षणं संश्रयः ॥ ४७ ॥

टीका—यदा शत्रुर्भवानागच्छति स्थातुं स्वस्थाने न शक्यते तदा वा तस्याप्यन्ते आत्मनो रिनिवेदनं कृत्वा शपथाद्यैः समाधे रणेत् ।

अथ द्वैधीभावस्य स्वरूपमाह—

एकेन सह सन्धायान्येन सह विग्रहकरणमेकेन वा द्वयौ सन्धानपूर्वं विग्रहो द्वैधीभावः ॥ ४८ ॥

टीका—यदा शत्रुद्वयमुपस्थितं भवति तदैकेन सह विग्रहकरणं युक्तं, द्वितीयेन सह बलवता सन्धानपूर्वो विग्रहः, प्रथमं सन्धानं कृत्वा पश्चाद्विग्रहः कार्यः । न द्वाभ्यां हेतुया विग्रहः कार्यः । एतद्वैधीभावस्य स्वरूपम् ।

अथ बुद्ध्याश्रयस्य द्वैधीभावस्य स्वरूपमाह—

प्रथमपक्षे सन्धीयमानो विगृह्यमाणं विजिगीषुरिति द्वैधीभावो बुद्ध्याश्रयः ॥ ४९ ॥

टीका—हीयमानेन विजिगीषुणा शत्रोरपि सन्धिः कार्यः तदाह—

हीयमानः एणवन्धेन सन्धिमुपेयात् यदि नास्ति परेषां विपणिर्ज्यै मर्यादोलङ्घनम् ॥ ५० ॥

टीका—हीयमानो विजिगीषुः परेषां सकाशात् एणवन्धेन दण्डव्यवस्थया सन्धिमुपेयात् सन्धानं कुर्यात् । यदि नास्ति तेषां विपणितेऽर्थे व्यवस्थायां कृतायां मर्यादोलङ्घनं यदि तेषां मर्यादातिक्रमणं न भवति । तत्र विषये रापथं कांशयानादिभिर्निर्णीतं वार्येति । तथा च शुकः—

हीयमानेन दातव्यो दण्डः शत्रोर्विजिगीषुणा ।

यलयुक्तेन यत्कार्यं नैः स्वमं निधिनिदिश्यते ? ॥ १ ॥

अथ विजिगीषुणा बलयुक्तेन यत्कार्यं तदाह—

अभ्युचीयमानः परं विगृह्यमाणं नास्त्यान्मवन्धेषु धोमः ॥ ५१ ॥

टीका—शत्रोः सकाशाद्विजिगीषुर्यद्यम्यधिको भवति तत् विगृही-
यात् तस्योपरि विग्रहं कुर्यात् । यदि आत्मबलेषु निजसैन्येषु क्षोभो भवं
न स्यात् । तथा च गुरुः—

यदि स्यादधिकः शत्रोर्विजिगीषुर्निर्ज्वलः ।

क्षोभेन रहितैः कार्यैः शत्रुणा सह विग्रहः ॥ १ ॥

अथान्यदपि विजिगीषुणा यत्कर्तव्यं तदाह—

न मां परो हन्तुं नाहं परं हन्तुं शक्त इत्यासीत् यदायत्या-
मस्ति कुशलम् ॥ ५२ ॥

टीका—आयत्यां परिणामे यदि शत्रोः कुशले ज्ञायते तद्विग्रहं न
कुर्यात् । यद्येवं मन्यते परो मां न हन्ति नाहं परं हनिष्यामीति
सन्निधारेण वर्तितव्यमिति । तथा च जैमिनिः—

न विग्रहं स्वयं कुर्यादुदासीने परे स्थिते ।

यत्कालेनापि यो न स्यादायत्यां चेष्टितं शुभं ॥ १ ॥

अथ भूयोऽपि यत्कर्तव्यं तदाह—

गुणातिशययुक्तो यायाद्यदि न सन्ति राष्ट्रकण्ठका मध्ये न
भवति पश्चात्क्रोधः ॥ ५३ ॥

टीका—तद्देशोपरि यदि न कौपः यदि राष्ट्रकण्ठका मध्ये न भवन्ति
तद्गुणातिशययुक्तो बहुगुणो विजिगीषुर्यायात् गर्भेत्परोपरि । तथा च
भागुरि—

गुणयुक्तोऽपि भूपालोऽपि यायाद्विद्विषोपरि ? ।

यद्येतेन हि राष्ट्रस्य बहवः शत्रवोऽपरे ॥ १ ॥

अथ विजिगीषोः स्वमण्डलमपालयतः परं परदेशं गच्छतो यद्भवति
तदाह—

स्वमण्डलमपरिपालयतः परदेशाभियोगो निवमनने शिरो-
वेष्टनमिव ॥ ५४ ॥

टीका—उष्णीषिकरणमिव । केन ! निवसनेन परिधानवस्त्रेण । कस्येव !
अन्धस्येव हास्याय यथान्धः परिधानवस्त्रेण शिरोवेष्टने कृते हास्यतां
याति तथा विजिगीषुरपि पश्चात्कोपे स्थिते राष्ट्रविजयसे स्थिते हास्यतां
याति तस्मात्स्वदेशे रक्षितं कृत्वा परदेशं यायात् । तथा च विदुरः—

य एष यत्नः कर्तव्यः परराष्ट्रियमर्शने ।

स एव यत्नः कर्तव्यः स्वयम्परिपालने ॥ १ ॥

अथ शक्तिहीनेन विभिर्गोपुणा यत्कर्तव्यं तदाह—

रज्जुबलनमिव शक्तिहीनः संधयं कुर्याद्यदि न भवति परे-
षामामिषम् ॥ ५५ ॥

टीका—यदा हीनचलः शत्रोः सकाशात् भवति तदा संधयं कुर्यात् दयानां सकाशे (बलानां साकाशा) गच्छेत् । यदि तेषामपि व्यसने न भवति । किमिव संधयं कुर्यात् ? तदुच्यते नमिष्ये यथा प्रभूत-तन्नुसंधयाद्गुरुदो भवति न गृह्यति तथा विजिगीषुरपि । तथा च गुरु

स्याद्यदा शक्तिहीनस्तु धिजिर्गापूहिं पैग्णि. ।

सध्यात तदा सान्य यथाय व्यभनद्युतात् ॥ १ ॥

अथ सत्याना सम्प्रदायन पटुर्वाणि तदा—

चलच्चन्द्रयादचलवदोश्चरणं हस्तिभयादेरण्डाश्चरणमिव ॥५६॥

टीका—बभ्रुःशिशोभयान् पञ्चदशस्य च शशिनस्य सप्तम्य त्रिष्वन ।

स विविदिताः इव हस्तिनयाः दुराकाशो ह्यगामिव ययः हस्तिनयादुत्पद्यमानः

टीका—न केवलं शत्रोः संधयो न कर्तव्योऽपि तु क्रियते कस्मिन्नि-
द्रिपये आपत्त्यां परिणामे शत्रुसंधयोऽपि श्रेयान् यत्प्राणप्रदो भवति ।
तथा च हासितः—

परिणामं शुभं ज्ञात्वा शत्रुजः संधयोऽपि च ।
कस्मिन्निद्रिपये कार्यः सततं न कथञ्चन ॥ १ ॥

अथ राज्ञः कृत्येषु कालातिक्रमस्य स्वरूपमाह—

निधानादिव न राजकार्येषु कालनियमोऽस्ति ॥ ६० ॥

टीका—यथा निधाने छन्दे न कालनियमः कालातिक्रमो न क्रि-
यते तद्वन्नादेव गृह्यते तथा राजकार्येषु कालातिक्रमो न शुभावहः
तद्वन्नादेव राजकार्याणि क्रियन्ते । तथा च गौतमः

निधानवर्द्धने यद्वत्कालक्षेपो न कार्यते ।
राजकृत्येषु सर्वेषु तथा कार्यः सुसंयक्तः ॥ १ ॥

अथ राजकार्याणां स्वरूपमाह—

मेघवदुत्थाने राजकार्याणामन्यत्र च द्रव्योः सन्धिविग्रहा-
भ्याम् ॥ ६१ ॥

टीका—राजकार्याणां राजकृत्यानां यदुत्थानं संभूतिः । सन्धिविग्रहा-
भ्याम् मेघवदुत्थानं यथा मेघस्योत्थानमचिन्तितमपि संजायते तथा राज-
कृत्यानामपि, तस्माद्विद्वन्मो न कार्यः, अन्यत्र शत्रोः सन्धिविग्रहाभ्यां
शत्रुविषये यत्कृत्यं तत्र यः समादेशः सन्धिविग्रहविषये स तद्वन्नादेव न
कार्यः चिन्तनीय इति । तथा च गुरुः—

राजकृत्यमचिन्तयं यद्वत्कालक्षेपो जायते ।
मेघवत् तद्वन्नादेव कार्यं सुसंयक्तं सन्धिविग्रहं ॥ १ ॥

अथ भूयोऽपि विजिगीषुणा यत्कर्तव्यं नराह—

जिगीषावं गच्छेत् गतन्वोऽप्यमात्मना न होत्सुहते ॥ ६२ ॥

टीका—तद्देवीभावे गच्छेत् सन्धिसन्धौ विप्रदत्तायैव शत्रुणा सह
पादे हि स्यात् 'यद्यन्यस्मात्पादो वः शत्रोः शत्रुकसद्वत् उभादे कौ-
युदायकौ प्रसिद्धौ । केन 'आमना सह, शत्रुणा सह सन्धिरिद्धय-
वेस्ताव्यमिति । गता न गर्गः—

यद्यन्यो सन्धिसन्धौ युदाय कृदन्ते शत्रुः ।

निष्पद्येन तदा तेन सह सन्धिरस्तथा रणम् ॥ १ ॥

अथ देवीभावे (गते) सीमाविधिं तच्छत्रो युदादे सीमाविधि-
पदसि तदाह—

अतश्च यमप्यधिकतः शत्रुकमप्यधिकतः करीर भवति
मुमुक्षुः ॥ १३ ॥

टीका—यदास्या विप्रिणीयस्या मर्त्यामृतं सङ्गच्छति तदा यु-
दाय कान्तिना विप्रिणीय कदा 'करीर गत इति विप्रिणीय-
नयनम् । सन्धौ 'मिहान्धौ । गता न युक्तः—

मिहयान्धौ यो हस्ती मुमुक्षुः स्यात् यदा न भवति ।

तदा सीमाविधिः सन्धौ विप्रिणीय यदा न भवति ॥ १४ ॥

अथ युदायकौ युदायकौ युदायकौ (तदाह—)

युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ ॥ १५ ॥

टीका—यदा युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ—यदा
युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ
युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ

युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ

युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ

युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ

युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ युदायकौ

टीका—यद्रूपलदानं, तत्किञ्चिदृष्टं अनित्यं विनश्यत्, पुत्रपौत्रकं परस्य न भवति । यत्पुनर्भूमिदानं तद्वत्तमेव भूयो न लभ्यते तस्मात्पितृ-
पैतामहिका भूमिः परस्मै न दीयत इति । तथा च गुरुः—

भूमिषस्य न दातव्या निजा भूमिर्वर्लीपसः ।

स्नोपापि या भयं चेत्स्यात्तस्माद्भयं च तत्फलम् ॥ १ ॥

अथ येन कारणेन परस्य न दीयते तदाह—

अवज्यापि भूमावारोपितस्तर्भवति यद्रतलः ॥ ६६ ॥

टीका—आरोपितः स्थापितस्तर्हृक्षो यद्रतलं भवति जडाभिः
प्रसगति किं पुनर्न महीपतिः पुत्रपौत्रः प्रसरतीति । तथा च रभ्यः—

ह्यलयापि क्षितौ वृक्षः स्थापितो वृद्धिमाप्नुयान् ।

तस्या शुषेन नो भूषः कस्मादिह न धर्षते ॥ १ ॥

अथाप्यदेशाधिपोजपि राजा भवति यथा सार्वभौमस्तदाह—

उपायोपपन्नविक्रमोऽनुरक्तप्रकृतिरन्वदेशोऽपि भूपतिर्भवति
सार्वभौमः ॥ ६७ ॥

टीका—यो राजापापोपपन्नविक्रमो भवति उपायाः सामादयस्तर्ह-
पपन्नो युक्तो विक्रमः पराक्रमो भवति । तथा योऽनुरक्तप्रकृतिर्भवति
प्रकृतिशब्देन राज्यपालादिका सर्वापर्यन्तिन सेवका कथ्यन्ते तेऽनुरक्त
भक्ता यस्य स राजा श्वन्वदेशोऽपि चक्रवर्ती प्रजापते ।

अथ राज्ञो भूमिर्वशा नवति तत्रैवमपि—

न हि कुलागता कस्यापि भूमिः किन्तु वीरभोग्या वसुन्धरा
॥ ६८ ॥

टीका—यस्य भूमिः कुलागता तद्वत्पतामहवत् स हि राजा
हिंस्य भूपतेवशा नवति । इति वीरभोग्या इति शब्दः राजा
पराधीनापि भूमिर्वीरभोग्यार्ज्या भवति न तु व —

कातराणां न वक्ष्या स्याद्यद्यपि स्यात्कमागता ।

परकीयापि चारमीया विक्रमो यस्य भूपतेः ॥ १ ॥

अथ भूपाछानां सामादीनां नामानि लिख्यन्ते—

सामोपप्रदानभेददण्डा उपायाः ॥ ६९ ॥

टीका—गतार्थमेतत् ।

अथ साधो लक्षणमाह—

तत्र पंचविधं साम, गुणसंकीर्तनं सम्बन्धोपाख्यानं प
कारदर्शनमायतिप्रदर्शनमात्मोपनिबन्धनमिति ॥ ७० ॥

टीका—प्रथमे गुणकीर्तनं तावत् परस्य गुणाः केवलाः कीर्तये
द्वितीये सम्बन्धोपाख्याने येन प्रकारेण सम्बन्धः सन्निर्भरति ते वद
तृतीये परोपकरणे । तथायतिप्रदर्शने नित्यवदर्शने चतुर्थे । तथा
निबन्धने यत्रात्मोपनिबन्धने क्रियते तत्पंचमे साम । तथा च व्यासः

साम्ना यस्मिंश्चिन् हृष्यं ततो नो विकृतिं प्रजेत् ।

सञ्जनानां यथा यिस्स बुद्धकैरपि कीर्तिते ॥ १ ॥

अथ परमनेन साम्नां माहात्म्यमाह—

साम्नेय यत्र सिद्धिर्ने तत्र दग्धो बुधेन शिनयोऽयम् ।

यिस्सं यदि शक्रेया शम्भवि तर्हि परोधेन ॥ १ ॥

अतोपप्रदानभेददण्डमाह—

यन्मम द्रव्यं तद्वसता मृहृत्वेण प्रयुज्यतामित्यात्मोपनि
बन्धने ॥ ७१ ॥

टीका—न म-जनापप्रदानमुच्यते । यद्वसता निदानमात्राभ्या
विनाशने ऋण-सामोपायाः शरीरादुपप्रदाने एव वक्ष्या यन्मम इत्ये
व द्रव्यं मृहृत्वेण प्रयुज्यतामित्याने य-शयोः प्राप्तेन ततोऽप्यप्रदाने ।

अतोपप्रदानभेदमाह—

इद्व्यंनमृग्याव्यायंप्रदानेन यद्व्यावृत्तमुपदाने ॥ ७२ ॥

टीका—यद्वटीयसा शोर्वर्धरक्षणाय स्वल्पार्थो दीयते पणसदन्
तच्च प्रोक्तमुपमदानं । तथा च शक्रः—

यदर्थः स्वल्पचित्तेन यदा शत्रोः पराक्षते ।

परप्रसादनं तत्र प्रोक्तं तथ विचक्षणैः ॥ १ ॥

अथ भेदस्य स्वरूपमाह—

योगतीक्ष्णगूढपुरुषोभयवेतनः परमलस्य परस्परशंकाजनने
निर्भर्त्सनं वा भेदः ॥ ७३ ॥

टीका—परयोगः सैन्यास्य नायकः क्रियते, तीक्ष्णं विषं तदत्र संजा-
यते, तथा गूढपुरुषा अलक्षितपुरुषा यत्र संजायते । तयोभयवेत्तनैः
पुरुषैः यत्र शत्रोपेक्षिते ज्ञात्वा परस्परमन्योन्यं बलस्य परस्य च शत्रोः
शक्तेरप्यपते निर्भर्त्सनं क्रियते वा स भेदः । तथा च गुरुः—

सैन्यं विषं तथा गुप्ताः पुरुषाः सेवकात्मकाः ।

तत्र भेदः प्रकर्तव्यो मिथः सैन्यस्य भूपतेः ॥ १ ॥

अथ दण्डस्य स्वरूपमाह—

वयः परित्क्लेशोऽर्थहरणं च दण्डः ॥ ७४ ॥

टीका—यत्र शरीरं क्रियते, परिश्रमो वार्थदृष्टं वा क्रियते
तु दण्ड उच्यते । तथा च श्रमिनि -

यद्यस्तु क्रियते यत्र परिज्ञेनोऽथवा न्येते ।

अथस्य प्रदण भूतिद्वयं न परिवर्तित ॥ १ ॥

अथ राज्ञो वचनात् । त्रु सन्निवृत्तः । प्रसन्नः । अत्र १० । ६ कौटिल्ये
राजर्षि—

दशयोगगत साधु परीक्ष्य कन्याणवुद्धिमनुगृह्णीयात् ॥ ७५ ॥

[illegible]

तस्यानुग्रहणं कुर्यात् प्रसादे विदधीत नापरीक्षितस्य । तथा च
भागुरिः—

शत्रोः सकाशतः प्राप्तं सेवार्थं शिष्टसम्मतं ।

परिक्षा तस्य कृत्याथ प्रसादः कियते ततः ॥ १ ॥

अथ बाणसेवकागतकार्यद्वारेणारण्यौपधमाहात्म्यमाह—

किमरण्यजर्मापधं न भवति क्षेमाय ॥ ७६ ॥

टीका—आरण्यं यज्ञेयजं भवत्यौपधं तर्हि न भवति क्षेमापारोम्भ-
य । एवं परेषां सकाशादागतोऽपि क्षेमाय भवति । तथा च शुक्रः—

परोऽपि दितवान् यन्पुर्णधुरण्यदितपरः ।

अदितो देदजो व्याधिर्दितमारण्यमीपधं ॥ १ ॥

अथ शत्रुसम्बन्धिना लोकेन गृहप्रतिष्ठेन यद्भवति तदाह—

ग्रहप्रविष्टरूपोतः इव स्वर्लोऽपि शत्रुसम्बन्धी लोकास्तंशो-
द्गमयति ॥ ७७ ॥

टीका—उद्गमयति शोध्यति । किं तत् ? गृहसम्पत् । कोऽसौ ? लोकः ।
किं शिष्टः ? शत्रुसम्बन्धी शत्रुपक्षस्थः । किं शिष्टः ? स्वर्लोऽपि लघुगतिः ।
क इव ? कपोत इव यथा कपोतो लघुगतिं गृहे प्रविष्टो गृहं नाशयति
तथा शत्रुपक्षश्च इति । तथाऽन्ये वादसायणः—

शत्रुपक्षजो लोकाः स्तोकोऽपि गृहमाविरोत् ।

यथा तदा समाधत्ते तद्गृहं च कपोतयत् ॥ १ ॥

अथोत्तमशतम्भः शत्रुसम्बन्धमाह—

मित्रदिग्ग्वभूमिजमानामुत्तरोत्तरनामः त्रेषान् ॥ ७८ ॥

टीका—त्रेषान् क-नामद्वयं भवति । कोऽसौ ? उत्तमः द्वयः । कि-
मिति ? उत्तमः इति शब्दः कश्चित्, कपोतः मित्रदिग्ग्वभूमिजमाना मि-
त्रसम्बन्धः कश्चित् भवति । उत्तमः शत्रुसम्बन्धः इति शब्दः कश्चित्

त्वमस्ति । तथा नैकान्तं संभावयति तस्य दुरपवादो जननिन्दा भवति
यतोऽनेन भूभुजा एष वृद्धिं नांतः तदस्य भक्तिं न करोति कृतघ्नः ।
तथा च गुरुः—

वृद्धिं गच्छेद्यतः पाश्चात्तं प्रयत्नेन तोषयत् ।
अन्यथा जायते शंका रणगोपाद्धि गर्हणा ॥ १ ॥

अथोभयवेतनानां यत्कार्यं तदाह—

गृहीतपुत्रदानानुभयवेतनान् कुर्यात् ॥ ८२ ॥

टीका—यान् राजा उभयवेतनान् करोति शत्रोः पार्श्वे प्रेषयति तेषां
पुत्रदारसंप्रहं कुर्यात् ततस्ते प्रहेतव्या येन शत्रुचोष्टितं निवेदयन्ति । तथा
च जैमिनिः—

गृहीतपुत्रदारान्श्च कृत्वा चोभयवेतनान् ।
प्रेषयेद्द्वरिणः स्थाने येन तच्चोष्टितं लभेत् ॥ १ ॥

अथ शत्रुविनाशं कृत्वा भूभुजा यत्कर्तव्यं तदाह—

शत्रुमपकृत्य भूदानेन तदायादानात्मनः सफलयेत् क्लेश-
वेदा ॥ ८३ ॥

टीका—शत्रुं परमपकृत्य साधयित्वा पश्चाद्विजिगीषुणा किं कार्यं
तदापादं गोत्रिणं तद्भूदानेन सफलयेत् युक्तान् कुर्यात् । कथं ! आत्मनः
यथा स्वकीयो भवति । तथा च नारदः—

साधयित्वा परं युद्धे तद्गमिस्तस्य गोत्रिणः ।
दातव्यात्मयशो यः स्यान्नान्यस्य तु कथंचन ॥ १ ॥

अथ —

परविधामजनने मर्त्यं शपथः प्रतिभूः प्रधानपुरुषप्रतिगृहं
वा हेतुः ॥ ८४ ॥

टीका—परस्य शत्रोः दिशस्तत्रने को हेतुः किं कारणं येन स न चळति, सत्यं शपथस्तावत् तथा प्राविभुवः प्रधानपुरुषप्रतिग्रहो वा । प्रतिग्रहशब्देन तस्याभीष्टजनग्रहणमुच्यते । तथा च गीतवः—

शपथः कोशपानेन महानुदपयायतः ।

प्रतिभूरिष्टसंप्रदादियोर्विभ्वसतां यजेत् ॥ १ ॥

अथ भूभुजा यथा न यात्रा कर्तव्या तदाह—

सहस्रकीयः पुरस्ताद्ग्रामः शतकीयः पधात्कोप इति न यायात् ॥ ८५ ॥

टीका—शत्रो यदि सहस्रकीयः सहस्रप्रमाणः पुरस्तादापो लाभो भवति, शतकीयः शतप्रमाणः पधात्कोपो भवति तत्र न यायात् न यात्रा कुर्यात् । तथा च भृगुः—

पुरस्ताद्भूरि लाभेऽपि पधात्कोपोऽन्यको यदि ।

तथापि नैव कर्तव्यास्तस्वल्पोऽप्यधिको भवेत् ॥ १ ॥

अथ स्वल्पेनापि पधात्कोपेन यथा न गम्यते तदाह—

मूर्चीमुखेन धनर्था भवन्त्यल्पेनापि मूर्चीमुखेन महान् दवरकः प्रविशति ॥ ८६ ॥

टीका—मूर्चीमुखशब्देन स्वल्पः पधात्कोपोऽभिधीयते । तस्मिन् स्थिते भवन्ति त्रापन्ते, के ते ? अनथा आपदः प्रभूततया । केन दृष्टान्तेन ? मूर्चीमुखशब्देन मूर्चीशब्देन सोऽनगम्यमानेन बन्धनात् तथा यदा बन्धनं भुजं जनं भवति तदा तस्मात्तेन महाना दवरकः मूर्चमयः प्रविशति । एवम् अपि पधात्कोपः न पधात्कृतस्य परदेशः यतश्च लघुर्गो गुणः यावत् तस्मात्स्वल्पेनापि पधात्कोपेन न गम्यते मिति । तथा च बादरायणः—

स्वल्पेनापि न गम्यत्यपि पधात्कोपेन भूभुजा ।

यतः स्वल्पोऽपि तद्वाद्यः स पूर्वा परमा यजेत् ॥ १ ॥

अथ यथा विजिगीषुणात्मलाभधिन्तनीयस्तथाह—

न पुण्यपुरुषापचयः क्षयो हिरण्यस्य धान्यापचयो व्ययः
शरीरस्यात्मनो लाभमिच्छेद्येन सामिषकण्वाद् इव न परैः
वरुध्यते ॥ ८७ ॥

टीका—तं लाभमिच्छेत् तस्य लाभस्य वाञ्छा कार्या येन लाभेन न
स्यान्न भवेत् । कोऽसौ ? पुण्यपुरुषापचयः पुण्यपुरुषाः प्रधानपुरुषाक्षोण-
मपचयो विनाशो येन लाभेन न भवति । तथा क्षयो हिरण्यस्य,
हिरण्यं कोशस्तस्य क्षयो न भवति । तथा धान्यापचयोऽन्नक्षयः । तथा
व्ययो नाशः, कस्य ? आत्मनः शरीरस्य । तथा सामिषकण्वाद् इव समस्त-
विद्वेगम इव यथा परैः पश्चिभिर्मीसार्याभिः तथान्यैः श्रितिपादैर्वैत-
लाभेन गृहीतेन न रुध्यते ते लाभमिच्छेत् । तथा च शुकः—

स्वतंत्रस्य क्षयो न स्यात्तथाभ्युपारमनोऽपरः ।

येन लाभेन नाभ्युप्य रुध्यते तं विचिन्तयेत् ॥ १ ॥

सत्तोऽपि यः परापरान् शमते तस्य यद्वरति तदाह—

शक्तस्यापराधिपु या शमा गा तस्यात्मनस्तिरस्कारः ॥ ८८ ॥

टीका—यस्य गा शक्तस्य कृतापराधेषु शमा भवति सा तस्य ति-
रस्कारः । अत्र शमनात् तस्मादादा कृतापराधेषु शमा न कार्या । तथा
न वादगम्यते

शक्तिमानपि यः कृषोऽपराधिपु च शमा ।

स परमशमाप्रोति सर्वेषामपि वैरिणां ॥ १ ॥

अथ यो गदापराधिपु निग्रहं करोति तस्य यद्वरति तदाह—

अतिरम्यसतिपु निग्रहं कर्तुः मपोदिव रथवत्समायः सर्वोऽपि
विनेति जनः ॥ ८९ ॥

त्वेन जल्पति तदवश्यं, अथ सहस्रं जल्पति तस्य दण्डो नास्तीति । तथा च शुकः—

शुद्धिर्पापपगर्घेण दण्डयेद्य मदाजनं ।

एषानुगामिकं राजा यदा तु शत्रुपूर्वकम् ॥ १ ॥

अथ भूमिदक्षिणमाह—

मा राजन्वर्ती भूमिर्यस्यां नामुरवृत्ती राजा ॥ ९६ ॥

टीका—यस्यां भूमौ देशे न स्यात् न भवेत् अमुरवृत्ती गक्षमवृत्ती राजा सा भूमौ राजन्वर्तित्वनिधीयते । तथा च शुकः—

यस्यां राजा मुवृत्तः स्यात्साम्यवृत्तः सर्वव द्वि ।

सा भूमिः शोभते नित्यं सदा वृद्धि च गच्छति ॥ १ ॥

अथामुवृत्ते राज्ञे स्वरूपमाह—

परप्रणयो राजाऽपरीक्षितार्थमानप्राणहरोऽमुवृत्तिः ॥ ९७ ॥

टीका—यो राजा परप्रणयो भवति अन्यमतेन कृते स्वयं न पर्यालोच कृत्वा कृत्यानि करोति स परप्रणयः तथापरीक्षितार्थमान-प्राणहरो दण्ड्यलोकाना अपरीक्षितार्थमानेन प्राणान् हरति । एतदुक्तं भवति, दण्ड्यस्यार्थमान प्राणमान न जानाति शत्रुवित्तस्य परवचनैः सहस्रं वाचने नतो य गच्छमानस्य प्राणान् हन्ति सोऽमुरवृत्ति कथ्यते । तथा च भागुरि—

परचाप्यर्धनृपां यत्र मङ्गला मुप्रर्षाडयेत् ।

प्रभुतेन तु दण्डेन सोऽमुरवृत्तिरुच्यते ॥ १ ॥

अथ परप्रणयेभ्य गतेः प्रणयमाह—

परकोपप्रसादानुवृत्तिः परप्रणयः ॥ ९८ ॥

टीका—यो राजा परवचनं शेषं करोति प्रसाद करोति स परप्रणयः । यो राजा परवचनं शेषं करोति प्रसाद करोति स परप्रणयः । तथा च भागुरि—

परप्रणयो भूपालो न राज्यं कुरुते चिरं ।

पितृपैतामहं चेत्स्वार्त्तिकं पुनः परभूपर्जं ॥ १ ॥

छन्दोनुवर्तनस्य स्वरूपमाह—

तत्स्वामिच्छन्दोनुवर्तनं श्रेयो यन्न भवत्याद्यत्पामहिताय १९

टीका—भृत्येन स्वामिनस्तथाच्छन्दोनुवर्तनं कार्यं तथा प्रियं वाच्यं यथा तच्छ्रेयस्करं भवति । कस्यां ? आयत्यां परिणामे, अहिताय भवति तन्न वाच्यमिति । तथा च गर्गः—

मांत्रिभिस्तत्प्रियं वाच्यं प्रभोः श्रेयस्करं च यत् ।

आयत्यां कष्टदं यच्च कार्यं तन्न कदाचन ॥ १ ॥

अथ भूमुजा यथार्थो प्राह प्रजानां तत्स्वरूपमाह—

निरनुबन्धमर्थानुबन्धं चार्थमनुगृहीयात् ॥ १०० ॥

टीका—गृहीतव्यं । क ? अर्थं । केन ? राज्ञा । काम्यः ? प्रजान्यः सकाशात् । कथं ? निरनुबन्धं यथा भवति यथा जनस्यानुबन्धः पांडा न भवति । तथार्थानुबन्धोऽर्थक्षतिर्यथा न स्यात् तथा ग्राह्यं नृपैवर्नम् ।

अधार्थागमस्य दूषणमाह—

नासावर्थो धनाय यत्रायत्यां महानर्थानुबन्धः ॥ १०१ ॥

टीका—सोऽर्थो वनाय धननिमित्तं स्थिरो न भवति तत्सार्थस्य गृहागतस्याप्यत्या परिणामे महत्तरोऽर्थानुबन्धो भवति गृहस्थितमपि नाशं याति चौर्यादिभिः । कुम्भितकर्मप्रभृतिभिः योऽर्थो गृहमानीयते तदर्थं राज्ञा गृहीस्थितमप्यपि विनष्टं गृहघने । तथा चात्रिः—

अन्यायोपार्जितं विनष्टं यो गृहं समुपानयेत् ।

गृह्यते भूभुजा तस्य गृहगेन समन्वितम् ॥ १ ॥

अथार्थलाभस्य स्वरूपमाह—

लाभस्त्रिविधो नवो भूतपूर्वः पञ्चयथ ॥ १०२ ॥

टीका—एकस्तावदर्धलाभः पुराणां नवः प्रत्यग्र उत्पद्यते, अन्यो भूतद्वयः सदैव उच्यते, तृतीयः दैव्यः पैतामहिकः । त्रयोऽप्येते प्रशस्ता लाभा प्राहृषा येऽन्ये ते न प्राप्ता नान्तिद्वैः । तथा च शुक्रः—

उपाद्रितो नवोऽर्थः स्याद्भूतपूर्वस्वधापरः ।

पितृपतामहोऽन्यस्तु त्रयो लाभाः शुभावदाः ॥ १ ॥

इति पाहुष्यसमुदेशः । २९ ।

३० युद्ध-समुद्देशः ।



अथ युद्धसमुद्देशो व्याख्यायते । तत्रादावेव मन्त्रिमित्राभ्यां दूषणमाह—

स किं मंत्री मित्रं वा यः प्रथममेव युद्धोद्योगं भूमित्यागं
चोपदिशति, स्वामिनः सम्पादयति च महान्तमनर्थसंशयं ॥ १ ॥

टीका—यः शत्रावुपस्थिते, प्रथममेव मंत्रकाले स्वामिन उपदिशति
उपदेशं ददाति । किंविशिष्टं ? युद्धात्मक युद्धस्वरूप, भूमित्यागाय देशा-
न्तरगमनाय स मंत्री न भवति, तन्मित्रं न भवति, वैरिरूपिणौ द्वावपि
तौ । तथा सम्भावयति महान्तमनर्थसंशयं । तथा च गर्गः—

उपस्थिते रिपौ मंत्री युद्धं बुद्धिं ददाति यः ।

मन्त्रिरूपेण वैरी स देशत्यागं च यो वदेत् ॥ १ ॥

अथ मन्त्रिणो दूषणमाह—

संग्रामे को नामात्मवानादावेव स्वामिनं प्राणसन्देहतुलाया-
मारोपयति ॥ २ ॥

टीका—.....प्राणसन्देहतुलाया प्राणसन्देहाग्रे । कः ? युद्धे
संग्रामे । तस्मान्मन्त्रिणा शत्रावुपस्थिते युद्धार्थं स्वामी संयोजयितव्यः ।

तथा च गौतमः—

उपस्थिते रिपौ स्वामी पूर्वं युद्धे नित्योजयेत् ।

उपायं दापयेद् व्यर्थं गते पश्चान्नित्योजयेत् ॥ १ ॥

अथ भूम्यर्थे पार्थिवेन यत्कार्यं तदाह—

भूम्यर्थं नृपाणां नयो विक्रमश्च न भूमित्यागाय ॥ ३ ॥

टीका—भूमिनिमित्तं नृपाणां राज्ञा, कौ युक्तौ ! नयो नीतिः पराक्रमश्च
वीरवृत्तिपरौ द्वावपि कर्तव्यौ न देशत्यागः कार्यः । तथा च शुक्रः—

भूम्यर्थं भूमिपैः कार्यो नयो विक्रम एव च ।

देशस्यागो न कार्यस्तु प्राणत्यागोऽपि संस्थिते ॥ १ ॥

अथ शत्रोर्बलयुक्तेन यत्कर्तव्यं तदाह—

बुद्धियुद्धेन परं जेतुमशक्तः शस्त्रयुद्धमुपक्रमेत् ॥ ४ ॥

टीका—प्रथमं तावद्बुद्धियुद्धं कर्तव्यं यदि बुद्धियुद्धेन न शक्तः शत्रुं

जेतुं ततः शस्त्रयुद्धं कुर्यात् । तथा च मार्गः—

युद्धं बुद्ध्यात्मकं कुर्यात्प्रथमं शत्रुणा सह ।

व्यर्थेऽस्मिन् ममुत्पन्ने ततः शस्त्ररुणं भवेत् ॥ १ ॥

अथ बुद्धियुद्धस्य माहात्म्यं भूयोऽप्याह—

न तथैषवः प्रभवन्ति यथा प्रजापतां प्रजाः ॥ ५ ॥

टीका—तथा तेन प्रकारेण न प्रभवन्ति समर्था भवन्ति । के?

इषवो वाणा यथा बुद्धिमतां बुद्धयः प्रभवन्ति समर्था भवन्ति । तथा च
गीतमः—

न तथाय शरस्त्रीणाः समर्थाः स्यू रिपोर्विधे ।

यथा बुद्धिमतां प्रजा तस्मात्तां सन्निर्योजयेत् ॥ १ ॥

अथ भूयोऽपि बुद्धिमाहात्म्यमाह—

दृष्टेऽप्यर्थे सम्भवन्त्यपराद्धेपवो धनुष्मतोऽदृष्टमर्थं साधु साध-
यति प्रजावान् ॥ ६ ॥

टीका—दृष्टेऽप्यर्थे लक्ष्येऽपराधा व्यर्था इषवो वाणाः । यस्य तस्य
धनुष्मतो धनुष्कस्य दृष्टेऽप्यर्थे लक्ष्ये (वाणा व्यर्थाः सम्भवन्ति) । यः
पुमान् प्रजावान् पुरुषोऽदृष्टमपि पदार्थं साधु यथा भवत्येवं साधयति ।
तथा च शुकः—

धानुष्कस्य शरो व्यर्थो दृष्टे लक्ष्येऽपि याति च ।

अदृष्टान्यपि कार्याणि बुद्धिमान् सम्प्रमाधयेत् ॥ १ ॥

ॐ माधवमाहतीसविधानकनाह—

श्रूयते हि किल दूरस्थोऽपि माधवपिता कामन्दकीयप्रयोगेण
माधवाय मालतीं साधयामास ॥ ७ ॥

टीका—एतत्संविधानकं मालतीमाधवनाटके ज्ञेयं ।

अथ भूयोऽपि प्रज्ञामाहात्म्यमाह—

प्रज्ञा ह्यमोघं शस्त्रं कुशलबुद्धीनां ॥ ८ ॥

टीका—प्रज्ञा बुद्धिरेवामोघं सफलमायुधं । केषां ? कुशलबुद्धीनां
पण्डितानां । ये प्रज्ञाहता भवन्ति भूमिभृतस्ते भूयोऽपि शत्रुरूपा न
भवन्ति ।

तत्रार्थे दृष्टान्ते दृष्टान्तमाह—

प्रज्ञाहताः कुलिशहता इव न प्रादुर्भवन्ति भूमिभृतः ॥ ९ ॥

टीका—प्रज्ञा एव कुलिशं तेन हता भूभृतः पर्वता इव राजानोऽपि
न प्रभवन्तीति । तथा च शुकः—

प्रज्ञाशस्त्रममोघं च विज्ञानाद्बुद्धिरूपिणी ।

तथा हता न जायन्ते पर्वता इव भूमिपाः ॥ १ ॥

अथादृष्टेऽपि शत्रौ यो भय करोति स किं करोति तस्य स्वरूपमाह—

परैः स्वस्याभियोगमपश्यतो भयं नदीमपश्यत उपानत्परि-
त्यजनमिव ॥ १० ॥

टीका—परैः शत्रुभिः सह स्वस्यात्मनोऽभियोगं समागममपश्यन्नव-
लोकयन् यो राजा भय करोति स उपानत्यागं करोति । किं कुर्वन् ? अप-
श्यन्ननवलोकयन् । का 'नदी', हास्याया यातीत्यर्थः । यथा नद्या अदर्शनेनो-
पानत्परिमोचनं तद्वन्नुवाचदृष्टेऽपि भयं प्रतिभाति । तथा च शुकः—

यथा चादर्शने नद्या उपानत्परिमोचनं ।

तथा शत्रावदृष्टेऽपि भयं हास्याय भूभुजां ॥ १ ॥

अथातितीक्ष्णस्य यद्वदन्ति तदाह—

अतितीक्ष्णो बलवानपि शरभ इव न चिरं नन्दति ॥ ११ ॥

कथं ? पतगवत् । कस्या ! दीपशिखायां । यथा दीपशिखायां पतिनः पतद्गो निधितं विनाशमवाप्नोति तथा बलवति शत्रौ दुर्बलोऽपि तस्माद-
पसरणं कार्यं । तथा च गौतमः—

बलयन्तं रिपुं प्राप्य यो न नश्यति दुर्बलः ।

स नूनं नाशमभ्येति पतंगो दीपमाधितः ॥ १ ॥

अथ देवस्य लक्षणमाह—

जीवितसम्भवे देवो देयात्कालबलम् ॥ १५ ॥

टीका—यदा पुरुषे जीवितसम्भवो भवति दीर्घायुर्भवति तदा देवं प्राक्तनं कर्म तस्य कालबलं तस्मिन् काले तद्गतिं येन दुर्बलोऽपि बल-
वन्तं व्यापादयतीति । तथा च शुक्रः—

पुरुषस्य यदायुः स्यादुर्बलोऽपि तदा परं ।

दिनस्ति चेद्वलापेनं निजकर्म प्रभावतः ॥ १ ॥

अथ बलस्य सारितरतामाह—

वरमल्पमपि मारं बलं न भूयसी मुण्डमण्डली ॥ १६ ॥

टीका—वर प्रधानं । स्वल्पं स्तोकमपि । सार उत्तमं । बलं सैन्यं ।
न भूयसी प्रभूतापि । मुण्डमण्डली असारसंघातः । तथा च नारदः—

वरं स्वल्पापि च श्रेष्ठा नास्वल्पापि च कातरा ।

भूपतीनां च सर्वेषां युद्धकाले पताकिनी ॥ १ ॥

अथामारबलस्य स्वरूपमाह—

अमारबलभंगः मारबलभंगं करोति ॥ १७ ॥

टीका—यदमारबलं तत्परचक्रं दृष्टमात्रं भज्यते तस्य भगो सारव-
लमपि भज्यते तस्मादसारबलं न कर्तव्यं । तथा च कौशिकः—

कातराणां च यो भंगो संग्रामे स्यान्महीपतेः ।

स हि भंगं करोत्येव सर्वेषां नात्र संशयः ॥ १ ॥

अथ भूभुजा संग्रामे यथा गन्तव्यं तथाह—

नामनिर्घटीं नृदमुपेयात् । ॥ १८ ॥

ଶିଳା—୧. ଧେବାଜ ନ ଗଂଜୀ । ଧର୍ମ ସୁଧେ ଶିଳାୟ । ଗୋଠିନୀ ଶିଳା ।
 ବିରାଜିତା । ୨. ଭାର୍ଗବପୁତ୍ର ପଦାଧୀନ । ପଦାଧୀନା ଧୂରାଗିତା ଶିଳାୟେ ନ ଗଂଜୟ ।
 ଶିଳା ଧର୍ମ ପୁତ୍ର —

यथाहं श्रीं यजुंश्या श्रीमहि श्रीमद्विजिता ।

एव नूनं भूगुणमात्रेणैव यदापि यदाह्वयं कथा ॥ १ ॥

अथ गीताप्रसंगे श्रीविष्णुसिद्धदेवतण्डनप्रसादः —

राक्षस्यञ्जनं पुष्पमृत्युपधान्यशाम्यपिष्टिगस्य मातरलस्य निवे-
ञ्जनं शत्रुघ्नदः ॥ १९ ॥

टीका—आय-यजनं तर्थापि हि स्वाभिने पुनश्च पुनतः कृत्वा
 अमे कृत्वा पश्चात्तस्य आगच्छते प्रधानात्मन्ये प्रियते यस्य प्रतिग्रहः स्यात्।
 एतदुक्तं, भवति, भूयते पश्चात् पुनश्च उक्तमन्यनिवेदानं प्रियते स
 प्रतिग्रहः। तथा च नागद —

वर्धमानं पुत्रतः कृत्वा तत्पुत्रादुत्तमं वरत ।

अथ यत्तु युद्धकाण्डे यः न प्रतिग्रहपंडितः ॥ १ ॥

अथ सद्भिर्निवृत्तैश्च गुणैर्विभक्तं चतुर्वर्गं तदाह—

मशतिष्ठं बलं माधु गृह्णायोग्महते ॥ २० ॥

टीपण - महान - माह प्रतीति । कि नव वर नैव । किमर्थ
 युद्धाय संप्रदाता । प्रतीति २ । संप्रदाता माह प्रतिग्रहण अनेने
 हानि संप्रदाता माह । प्रतीति ३ । प्रतीति ४ ।

राजा पूर्णचला यत्र लब्धवान्निश्चयत एव ।

इत्यस्य कृतं न युक्तं न च कथादिभ्यः परम् ॥ १ ॥

$$u_1, \sqrt{u_1 u_2}, \dots, \sqrt{u_1 u_n}, \sqrt{u_2 u_3}, \dots, \sqrt{u_{n-1} u_n} \in \mathcal{U}(\mathcal{A})$$

इत्यतः सद्गुणजला भूमिचलस्य महानाथस्य ॥ २१ ॥

टीका—युद्धकाले यस्य सैन्यस्य पृष्ठिप्रदेशे सदुर्गजला भूमिः, दुर्गेन जलेन सह भूमिर्भवति सा तस्य जलस्य महान् आश्रयः स्थानं भवति । एतदुक्तं भवति पराजयेऽपि प्राप्ते दुर्गप्रवेशः स्यात् जलप्राप्तिश्च ।
तथा च गुरुः—

जलदुर्गवर्ती भूमिर्यस्य सैन्यस्य पृष्ठतः ।

पृष्ठदेशे भवेत्तस्य तन्महाश्वासकारणं ॥ १ ॥

अथ जलदुर्गवर्त्या भूमेः पृष्ठतायाः कारणमाह—

नद्या नीयमानस्य तटस्य पुरुषदर्शनमपि जीवितहेतुः ॥२२॥

टीका— । एतदुक्तं भवति, सदुर्गजला नदी जीवितस्य सेनाया महाश्वास करोति । तथा च जैमिनिः—

नीयमानेष्वथ यो नद्या तटस्थं वीक्ष्यते नरं ।

हेतुं तं मन्यते सोऽथ जीवितस्य हितात्मनः ॥ १ ॥

अथ जलस्य माहात्म्यमाह—

निरन्नमपि सप्राणमेव बलं यदि जलं लभेत ॥ २३ ॥

टीका—यदि अन्नं न प्राप्यते सप्राणमेव बलं सावष्टभमेव यदि तावज्जलं लभेत । एतस्मात्कारणात् युद्धकाले जलं पृष्ठिदेशे नीयते । यदि कथमपि पराजयो भवति तत्पृष्ठस्थं जलं प्राणानां रक्षाय भवति अन्नवाहयमपि । तथा च भारद्वाजः—

अन्नाभावाद्यपि प्राणो जीवितं न जलं विना ।

तस्माद्युद्धं प्रकर्तव्यं जलं कृत्वा च पृष्ठतः ॥ १ ॥

अथात्मशक्तिमजानतः परैः सह युद्धयतो यद्ववति तदाह—

आत्मशक्तिमविज्ञायोत्साहः शिरसा पर्वतभेदनमिव ॥२४॥

टीका—आत्मशक्तिमविज्ञायाज्ञात्वाऽजानन् यः परेण युद्धं करोति तस्येतद्युद्धं कौटशं ? शिरसा मस्तकेन पर्वतभेदनमिव पर्वतस्फोटनमिव ।
तथा च कौशिकः—

भात्मशक्तिमजानानो युद्धं कुर्याद्वलीयसां ।

सार्धं स च करोत्येव शिरसा गिरिभेदनं ॥ १ ॥

अथ राज्ञा यथा कार्यं तदाह—

सामसाध्यं युद्धसाध्यं न कुर्यात् ॥ २५ ॥

टीका—यत्कार्यं प्रयोजनं साम्राज्यं सिद्धयति तदुद्धेन न सिद्धति ।

तथा च वल्गुभेदेव—

साम्भवे यत्र सिद्धिस्तत्र न दण्डो बुद्धिर्धनियोज्यः ।

पितृं यदि शर्करया शाम्यति ततः किं तत्पटोलेन ॥ १ ॥

अथ भूयोऽपि साममाहात्म्यमाह—

गुडादभिप्रेतसिद्धौ को नाम विषं भुञ्जीत ॥ २६ ॥

टीका—गुडेन भक्षितेन यद्यभिप्रेतसिद्धिर्वाञ्छितसिद्धिर्भवति शरीरस्य
वत्को नामाहो विषमुपभुञ्जीत विषं भक्षयेत् । तथा च हारोतः—

गुडास्यादनतः शक्तिर्यदि गात्रस्य जायते ।

आरोग्यलक्षणा नाम तद्भक्षयति को विषं ॥ १ ॥

अथ मूर्खस्य स्वरूपमाह—

अल्पव्ययभयात्सर्वनाशं करोति मूर्खः ॥ २७ ॥

टीका—यो मर्यो मूर्खो भवति स स्वल्पव्ययभयात् सर्वनाशं
करोति । एतदुक्तं भवति, यो बलवता स्नेहेन याचितं स्वल्पं न
प्रपृच्छति स सर्वस्व तस्मै ददाति यतो बलात्कारेण भूभुजा गृह्यते । तथा
च वल्गुभेदेव—

हीनो नृपोऽल्पं मदते नृपाय

यायाचितो नैव ददाति साम्राज्यं ।

कदर्थमाणेन ददाति स्वार्थं

तेषां स चूर्णस्य पुनर्ददाति ॥ १ ॥

अथ मन्दमतेः स्वरूपमाह—

को नाम कृतधीः शुल्कभयाद्भाण्डं परित्यजति ॥ २८ ॥

टीका—नाम अहो कः पुण्यः कृतधीः बुद्धिमान् शुल्कभयादान-
भीतेः भाण्डं वर्परं (सर्वं) परित्यजति । यो नष्टबुद्धिर्भवति तस्य (स) एवं
करोति नो विज्ञः । तथा च कौशिकः—

यस्य बुद्धिर्भवेत्काचित् स्वल्पापि हृदये स्थिता ।

न भाण्डं त्यजेत् सारं स्वल्पदानकृतात्मयात् ॥ १ ॥

अथ व्ययस्य स्वरूपमाह—

स किं व्ययो यो महान्तमर्थं रक्षति ॥ २९ ॥

टीका—स किं व्ययः कष्यते येन कृतेन महान् प्रभूतोऽर्थो रक्ष्यते
उपकारद्वारेण यो बलवतां क्रियते । शेषार्थस्य रक्षार्थमिति । तथा च
शैलकः—

उपचारपरिश्रानादित्वा वित्तं सुबुद्धयः ।

बलिनां रक्षयन्तिस्म यच्छेपं गृहसंस्थितम् ॥ १ ॥

अथ सम्पूर्णविभवस्य यद्भवति तदाह—

पूर्णसरः सलिलस्य हि न परीयादादपरोऽस्ति रक्ष्णो-
पायः ॥ ३० ॥

टीका—यथा पूर्णसरो जलस्य परीयादात् प्रणादादपरोऽस्ति न रक्ष-
णोपायः तथा सम्पूर्णविभवस्य गृहस्यस्य त्यागादपरो नस्ति वित्तरक्ष्णो-
पायः । तथा च विष्णुदर्मा—

उपाजितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणं ।

तडागोदरमस्थानं परीयाद इवाम्भसा ॥ १ ॥

अथ बलवता साम्ना प्रार्थितो यो न ददति तस्य यद्भवति तदाह—

अप्रयच्छन्तो बलवान् प्रार्थः महार्थं गृह्णाति ॥ ३१ ॥

टीका—यो बलवता प्रार्थितः साम्ना न प्रयच्छति किञ्चिदर्थं ततश्च
प्रार्थं महार्थं गृह्णाति । तथा च नागुरिः—

बलाद्व्यः प्रार्थताः साम्ना यो न यच्छति पुद्गलः ।

किंचिद्वस्तु समं प्रार्थन्तस्तस्यासी हरेरुभयम् ॥ १ ॥

अथ बलवता देवार्थं प्रदानम् तानाह—

बलवति सीमाधिपेऽयं प्रवच्छन् विवाहोत्सवगृहगमनादि-
मिषेण प्रवच्छेत् ॥ ३२ ॥

टीका—सीमाधिस्य बलवतो दुर्बलेन निगन्तरेण विवाहोत्सवव्या-
येन गृहगमनकारणेन उपचारं कर्तव्यं देन न त सर्वं परिहरति ।
तथा च श्रुतः—

बुद्धपुत्रस्य गृहातिथ्यप्यार्जवेयं बलाधिकं ।

सीमाधिपे सर्वेषां रक्षार्थं स्वधनस्य च ॥ १ ॥

अथ बलवति सीमाधिपेऽन्यानेऽस्य पद्मवति तदाह—

आमिषमर्थमप्रवच्छतोऽन्यधिः स्याद्विबन्धः शान्तनम् ॥ ३३ ॥

टीका—विचिन्मिदन्तरं कृत्वा बलवति सीमाधिपे यो नोपचारं
करोति दुर्बलस्तस्यानुमेत् । बांऽसौ ! निबन्धः । किंचिदिष्टो
निबन्धः । अनवधि न विदतेऽवधि परिमाणी यस्य तस्माद्बलवत् उपचारः
कर्तव्यः । तथा च गुरु—

सीमाधिपे बलाद्व्यं तु यो न यच्छति किंचन ।

व्याजं कृत्वा स न स्यात् स्वमयाहीनं समान्वरेण ॥ २ ॥

कृतमंधातविधानां तर्गमिविशीर्णपूर्वा गज इव कस्य न भवति
साध्यः ॥ ३४ ॥

टीका—या गता कृतमंधातविधानां तर्गमिविशीर्णपूर्वा गज इव कस्य न भवति
साध्यः । कस्य साध्या वशा न नेवान्, अपि तु नीचानामपि साध्या
नीतिः—१३

भवति, वनगज इवारण्यहस्तीव । किंविशिष्टो वनगजः ? विशीर्णयूथं
भ्रष्टयूथ एकार्कात्यर्थः । तथा च नारदः—

उच्चाटितोऽरिभी राजा परदेशसमागतः ।

वनहस्तीव साध्यः स्यात्परिग्रहः विवर्जितः ॥ १ ॥

अथ जलव्यालदर्शनेन विनाशपरिग्रहभूतस्य यद्भवति तदाह—

विनिःस्त्रावितजले सरसि विपमोऽपि ग्राहो जलव्याल-
वत् ॥ ३५ ॥

टीका—यथा विनिःस्त्रावितजले निःसारितादके सरसि हृदे पुष्टोऽपि
ग्राहो जलचरविशेषो जलव्यालसदृशो जलसर्पतुल्यो निर्विषो भवति
तथा गजापि शून्यराग्रुतो गतदर्पो भवति । तथा च रैभ्यः—

सरसः सलिले नष्टे यथा ग्राहस्तुलां प्रजेत् ।

जलमर्षस्य तद्वच्च स्थानहीनो नृपो भवेत् ॥ १ ॥

अथ भूयोऽपि सिंहदृष्टान्तद्वारेण स्थानभ्रष्टस्य नृपस्य स्वरूपमाह—

वनविनिर्गतः सिंहोऽपि शृगालायते ॥ ३६ ॥

टीका—यदा वनानिर्गच्छति सिंहस्तदा शृगालायते शृगालसमो नष्ट-
वीर्यो भवति तदा राजा यदा स्थानभ्रष्टो भवति तदा नष्टवीर्यः स्यात् ।
तथा च शुक्र —

शृगालतां समभ्येति यथा सिंहो वनच्युतः ।

स्थानभ्रष्टो नृपोऽप्येवं लघुतामेति सर्वतः ॥ १ ॥

अथ सघातस्य माहात्म्यमाह—

नास्ति सघातस्य निःसारता किन्न स्खलयति मत्तमपि वारणं
कुथितवृणमंघातः ॥ ३७ ॥

टीका—नास्ति न विद्यते । काऽसौ ? निःसारता दुर्बल्य । कस्य ?
सघातस्य । केन दृष्टान्तेन ? यतः किन्न स्खलयति किन्न गतिभगान्वितं

चरोति । कः ? मत्तवारणं मद्रोन्मतहास्तिन । कः ? तृणसघातस्तृणसमूहः ।
तथा च विष्णुशर्मा—

यद्द्वन्नामप्यसायणां समवायो यथाधिकः ।

तृणरावेष्टितो रज्जुर्ध्या नागोऽपि बध्यते ॥ १ ॥

अथ भूयोऽपि सघातमाहात्म्यमाह—

संहर्तुमिमतन्तुभिर्दिग्गजोऽपि नियम्यते ॥ ३८ ॥

टीका—नियम्यते बर्हीक्रियते । कोऽसौ ? दिग्गजोऽपि दिग्गजोऽपि ।

कः ? विसतन्तुभिर्मृणालमूर्धः मूक्षमर्तरपि । एवं राजापि बहुपरिवारकापुरुषै-
र्बहुभिर्युक्तोऽपि घटादुर्धनं बर्हीक्रियतेऽतिभिः । तथा च हारांतः—

अपि सुक्ष्मतरुर्भृत्यैर्बहुभिर्यद्विद्यमानयेत् ।

अपि पर्यायोत्कटं शत्रुं पद्मसूर्यध्या गजम् ॥ १ ॥

अथ दण्डसाय्यस्य रिपोर्यः सामार्दानुपायान् करोति तस्य यद्वदति
नदाह—

दण्डमाध्ये रिपानुपायान्तरमप्रावाहतिप्रदानमिव ॥ ३९ ॥

टीका—यो राजा दण्डसाय्ये युद्धसाय्ये शत्रोऽनुपायान्तरं करोति ।
तत्तस्योपायान्तरं किंविशिष्टं ? अग्री घृताहतिप्रदानमिव । यथा वैश्वानरो
घृताहुत्या ज्वाला मुचति तथा शत्रुगपि क्रोधमुद्गिरति । तथा च मावः—

सामधादाः सकोपस्य तस्य प्रत्युतदीपकाः ।

प्रतप्तस्येय महता मर्षिपस्मोयधिन्द्रवः ॥ १ ॥

अथोपध्व्याजेन यथा शत्रोरुपायान्तरं न क्रियते तदाह—

येन्द्रशस्त्राग्निध्वाग्रतीकारं व्याधा किं नामान्योपधं कुर्यात्
॥ ४० ॥

टीका—यदाऽसा यो व्याधिर्भवति तत्र येनम्य (यत्र) शस्त्र-
विशेषः । शस्त्रमायुधं ।

सामर्थ्यं सर्वद्वारेणाह—

उत्पादितदंष्ट्रो भुजंगो रघुरिव ॥ ४१ ॥

टीका—यथा उत्पादितदंष्ट्रो भुजंगो मर्गो रघुरिव भवति तथा शत्रुरपि द्वितीयो गतपरिणामो भवति । तथा च नागदः—

वृषाधिरहितः मर्गो भग्नगुणोऽथवा गृध्रः ।

तथा धीरो परिश्रेयो यस्य नाथो न सेवकाः ॥ १ ॥

अथ भूयोऽप्यद्वारव्याजेन गतश्रीकस्य शत्रोः स्वरूपमाह—

प्रतिहतप्रतापोऽद्धारः संपतितोऽपि किं कुर्यात् ॥ ४२ ॥

टीका—यथाद्धारः प्रतिहतप्रतापो भस्मविशेषो भवति तदा शरीरगोप-
रिपतितः किं करोति, एवं शत्रुरपि गतश्रीकोऽद्धारसदृशो भवति ।

अथ शत्रोर्मधुरवचनस्य यत्कर्तव्यं तदाह—

विद्विषां चादुकारं न बहु मन्येत ॥ ४३ ॥

टीका—गतार्थमेतत् ।

अथ शत्रोः खड्गव्याजेन मधुरवचनस्य स्वरूपमाह—

जिह्वया लिहन् खड्गो मारयत्येव ॥ ४४ ॥

टीका—खड्गो निखिणो जिह्वया धार्यमाणः कोमलयापि मारयत्येव
तथा शत्रुरपि मधुरवचनानि वदन् मारयत्येव ।

अथ नीतिशास्त्रास्य लक्षणमाह—

तंत्रापायो नीतिशास्त्रम् ॥ ४५ ॥

टीका—मण्डलपालनाभियोगस्तंत्र अवापश्च नीतिरुच्यते ।

तत्र तंत्रलक्षणमाह—

स्वमण्डलपालनाभियोगस्तंत्रम् ॥ ४६ ॥

टीका—यत्स्वमण्डलपरिपालनं क्रियते तत्तंत्रं यतः स्नेहेन हस्त-
श्वादिकं तत्र भवति । तथा—

परमण्डलावाप्त्यभियोगोऽवापः ॥ ४७ ॥

टीका—उच्यते । आभ्यां सयोगेन नीतिशास्त्रं कथ्यते । तथा च मुक्तः—

स्वमण्डलस्य रक्षाय यत्तत्रं परिकीर्तितं ।

परदेशस्य सम्प्राप्त्या भयापो नयलक्षणम् ॥ १ ॥

अथ विजिगीषोः स्वरूपमाह—

यहनेको न गृहीयात् मदपोंपि सर्पो व्यापाद्यत एव पिपी-
लिकाभिः ॥ ४८ ॥

टीका—न गृहीयात् न योधयेत् । कोसो ? एकः । फान् ? बहून् ।
केन दृष्टान्तेन ? यतः सदपोंऽपि सर्पो व्यापाद्यते एव पिपीलिकाभिः । तथा
च नारदः—

एकाकिना न योद्धव्यं बहुभिः सह दुर्वलैः ।

धीर्यार्जुनोपि हन्येत यथा सर्पः पिपीलिकः ॥ १ ॥

अशोधितायां परभूमौ न प्रविशेन्निर्गच्छेद्वा ॥ ४९ ॥

टीका—गताथमेतन् ।

अथ विग्रहकाले भूभुजा यत्कर्तव्यं तदाह—

विग्रहकाले परस्मादागत न किञ्चिदपि गृहीयात् गृहीत्वा न
मंवामयेदन्यत्र तदायादंभ्यः । ध्रुयते हि निजम्यामिना सह कूट-
कलहं विधायावाप्तविश्वामः कृकलामो नामानीकपतिगन्मवि-
पक्षं विरूपाक्ष जघानेति ॥ ५० ॥

टीका—एतद्वृत्तान्तं श्रुत्वापि उह कथायां ज्ञातव्यं ।

अथ भूभुजा भयाऽपि यत्कर्तव्यं तदाह—

बलमपीडयन्पगनभिपेणयेन् ॥ ५१ ॥

टीका—आर्माय कर्मपीडयन् मग्नादपि कुर्वन् पगन् गगन् अभि-
पणयेत् सेनया । सह । तद्देशं विग्रहं कर्तव्यं यावान् ।

अथ भूभुजा शत्रूणामुपमौ ग- रता यत्कर्तव्यं तदाह—

टीका—तप्तलोहं यद्भवति तत्तप्तेन लोहेन सह सन्धिं गच्छति
तथा द्वाभ्यामपि भूपाभ्यां कुपिताभ्यां सन्धानं भवति । तथा च शुक्रः—

द्वाभ्यामपि हि तप्ताभ्यां लोहाभ्यां च यथा भवेत् ।

भूमिपातां च विघ्नेयस्तथा सन्धिः परस्परं ॥ १ ॥

अथापराधस्य शत्रोर्यत्कर्तव्यं तदाह—

तेजो हि सन्धाकारणं नापराधस्य ध्वान्तिरूपेक्षा वा ॥ ५९ ॥

टीका—सापराधस्य शत्रोरुपरि ध्वान्तिर्न कर्तव्या, उपेक्षा वा न
कर्तव्या । गतार्थमेतत् ।

अथ यादरो राजा यादरेण विग्रहं करोति तमाह—

उपर्चीयमानो घटेनेवादमा हीनेन विग्रहं कुर्यात् ॥ ६० ॥

टीका—विग्रहं कुर्यात् । कोऽसौ ? विजिगीषुः । किंविशिष्टः ? उपर्चो-
यमानः शक्तिर्युक्तः । तेनापि सह युद्धं कुर्यात् घटेनापि कुम्भेनापि,
कोऽसौ ? अस्मा पापाणः लघुरपि किञ्च गुरुर्भवति । अस्मन्ना पापाणेन
लघुनापि शक्तेः सकाशाद्भिद्यते । तथा राजाप्युपर्चीयमानः सन् गुरुमपि
शत्रुं व्यापादनसमर्थः । तथा च जैमिनिः—

यदि स्याच्छक्तिसंयुक्तो लघुः शत्रोश्च भूपतिः ।

तदा हन्ति परं शत्रुं यदि स्यादनिबुद्धकलम ॥ १ ॥

अथ विजिगीषोर्लक्षणात् —

दैवानुलोभ्यं पुण्यपुरुषोऽपचयोऽप्रतिपक्षता च विजिगीषोरु-
दयः ॥ ६१ ॥

टीका—यद्वैतानि शत्रूणां । राजा जर्गीषोमरणेन तदाभ्य माऽभ्युदयः ।
प्रथमं तत्तर्वाद्वैवानुलोभ्य इति प्राक्तनं क्रमं तस्यानुलोभ्यं प्राप्नोति ।
तथा पुण्यपुरुषोऽपचयः सन्मार्गप्रार्थि । तथाप्राप्तपक्षताऽविशदो
वादिनः । तथा च गुरुः —

यदि स्यात्प्राञ्जलं कर्म प्राप्तियौम्यनृणां तथा ।

तथा चाप्रतिपक्षस्यं विजिगीषोरिमे गुणाः ॥ १ ॥

अथ येन सह सन्धिः कार्यस्तमाह—

पराक्रमकर्कशः प्रवीरानीकधेर्द्वाभिनः सन्धाय माधूपचरि
तव्यः ॥ ६२ ॥

टीका—यदा पराक्रमकर्कशः शौर्यनिष्ठुरः शत्रुर्भवति । तथा प्रवीर
निकश्च यदा भवति । एवमुपचरितव्य उपचारेण सयुक्तः कार्यः
तथा च शुकः—

यदा स्याद्दीर्यवान् शत्रुः धेष्टसैन्यसमन्वितः ।

आत्मानं यलहीनं च तदा तस्योपचर्यते ॥ १ ॥

अथ यादृशं तेजः पराक्रमादय भवति तदाह—

दुःखामर्पजं तेजो विक्रमेयति ॥ ६३ ॥

टीका—..

तथा च—

दुःखामर्पोद्भवं तेजो यत्पुंसां सम्प्रजायते ।

तच्छत्रुं समरे हत्वा ततश्चैव निवर्तते ॥ १ ॥

अथाचार्यो वीर्यवेगो यथा भवति तथाह—

स्वजीविते हि रोगस्याचार्यो भवति वीर्यवेगः ॥ ६४ ॥

टीका—यस्य पुण्यस्य जीविते रोगो भवति प्रभूतकाले जीवितव्ये
वाञ्छा भवति तस्याचार्यस्य असयताचार्य (१) वीर्यवेगो भवति न चिरं
जीवितु वाञ्छमानस्य । तथा च नारदः—

१ दुःखजनितदामर्षात् जात तेज विक्रम कारयति अतः प्रबोधानिकः शत्रुः
यदाचिद्धीन स्यात्त तेन सह निबन्धेन युद्धं कार्यं अपि तु सन्धिरेव कर्तव्यं इत्यर्थः
व्याख्यास्य छिन्ना “ दुःखामर्पजं तेजो ” इत्यन्मात्र एव पाठः पुस्तकेऽवशिष्टं
। मुद्रितपुस्तकासंयोजित टिप्पणं च ।

य तेषां ज्ञायते धीर्षु जीवितायैव वाचस्पतिः ।

य भूयोर्ध्वं भवं चक्षुर्ध्वं ज्ञायताम् । इत्युक्तं वाग्विज्ञा ॥ १ ॥

अथान्धस्य चक्षुःशून्यता मह दुःखमात्मन्य यदा ज्ञायते भवति पुण्यस्य

तदाह—

तपूगपि निदृशायो हन्येव दन्तिनम् ॥ ६५ ॥

टीका—निदृशायो भूयस्य निदृशं दन्तिने विनाशायम् ।

तथा च जीविनिः—

यद्यपि स्वादुषु निदृशस्तथापि द्विपमाहवे ।

यत्तं राज्ञापि धीर्धौम्यो महारि दन्ति चेत्तपुः ॥ १ ॥

अथ राज्ञो भवे विजिगीषुणा यत्तत्तत्तदाह—

नातिमघं पीडयेत् ॥ ६६ ॥

टीका—राजुर्ध्वो यदा भवति तदा तपूर्ध्वेन न ज्ञेयं यत्तं स

व्यपमानः पराक्रमे करोति । तथा च विदुरः—

भद्रः राजुर्ध्वे गन्तव्यः पृष्ठतो विजिगीषुणा ।

चक्षुर्ध्वं ज्ञायतां यानि मरणं कृतनिश्चया ॥ १ ॥

अथ राज्ञो विजिगीषुणा कृतो यदा स्वात्तथाह—

धौम्यकथनस्योपचारो मनसि तच्छागम्येव वृत्ता ॥ ६७ ॥

टीका—धौम्यकथनो यदा विजिगीषुणाऽधीष्टुं वा मन्त्राः । स किं

विदुरः ॥ १ ॥ स मन्त्रः ॥ १ ॥ इत्येवमन्त्रोक्तं तच्छागम्येव उपवाचित-

कृतस्य मनसि तच्छागम्येव उपवाचितं यथा ॥ १ ॥ तथा च भागुरि—

उपायान्वितद्वानेन च्छागम्यापि प्रकथयति ।

चक्षुःशून्यता यदा भूयः शून्यतापि तच्छागम्या ॥ १ ॥

आत्ममनसि मह यदा यदा शून्यता ॥ १ ॥

ममस्य ममेन मह विग्रहे निश्चित मरण ज्ञेयं च मन्देहः, आमे

हि पायमांसेनाभिहतमुभयतः क्षय करोति ॥ ६८ ॥

प्राणेषु चाभिमानेषु यो जनेषु प्रवर्तते ।

स लोभविजयी प्रोक्तो यः स्वार्थेनैव तुष्यति ॥ १ ॥

अथामुरविजयिनो राज्ञः स्वरूपमाह—

सोऽमुरविजयी यः प्राणार्थमानोपघातेन महींमभिलपति ॥ ७२ ॥

टीका—स राजा अमुरविजयी कीर्त्यते । यः किविशिष्टः अभिल-

पति । को ! महीं । केन ! प्राणार्थमानोपघातेन । केन ! लोकाणां । तथा

च युक्तः—

अर्थमानोपघातेन यो महीं चाञ्छते नृपः ।

देवारिविजयी प्रोक्तो भूलोकैऽत्र विचक्षणैः ॥ १ ॥

अथामुरविजयिनः सध्रयो यादृक् भवति तदाह—

अमुरविजयिनः संधयः मूनागारं मृगप्रवेश इव ॥ ७३ ॥

टीका—मूनोऽत्यजस्तस्यागारं गृहं तस्मिन् मृगप्रवेश इव । यथाऽ-

न्यजगृहे प्रविष्टस्य मृगस्य मरणं भवति तथामुरविजयिने सध्रयमाण-

स्वेत्यर्थः । तथा च युक्तः—

अमुरविजयिनं भूयं संधयेन्मतिवाञ्छितः ।

स नूनं मृत्युमाप्नोति मृतं प्राप्य मृगो यथा ॥ १ ॥

अथ श्रेष्ठवचनस्य भूषणं यद्वचति तदाह—

यादृशस्तादृशो वा यायिनः स्वार्थी बलवान् यदि मापुचरः

संनारः ॥ ७४ ॥

टीका—यादृशस्तादृशो वा दैव्यो हीनकाजो वा स्वार्थी यायिनः

पकाशाद्वलवान् भवति । यादृक् तादृशः । यदि मापुचरः न भवति—

न जनमभिधिर्भवति । तथा तादृशस्य मापुचरः भवति । तथा च

तदाह—

राज्यं च दुर्धरा वापि स्वार्थी स्वयच्छासकः ।

सकाशायायिनोऽस्यामृगप्रवेशं मृग्यारव ॥ १ ॥

अथ सप्रामे भीतमशस्त्रं च बलतो यज्ञवति तदाह—

रणेषु भीतमशस्त्रं च हिंसन् ब्रह्महा भवति ॥ ७५ ॥

टीका—भवति जायते । कोऽभी ? पुण्यः । किं कुर्वन् ? हिंसन् प्र-
 क' भीतं चरित । तथाऽशस्त्रं भग्नशस्त्रं शस्त्ररहितं वा । (किमिशिष्टः)

पुण्यो भवति ? ब्रह्महा । । तथा च जैमिनिः—
 भग्नशस्त्रं तथा अस्त्रं तथास्मीति च यादिनं ।
 यो हन्याद्रेरिणं मर्त्यं ब्रह्महत्यां समश्नुते ॥ १ ॥

अथ सप्रामगनेषु यायिषु योऽप्यु यच्छ्रुये तदाह—

संप्रामगनेषु यायिषु मन्त्रुष्य विमर्गः ॥ ७६ ॥

टीका—सप्रामगनेषु यायिषु यज्ञादिभिः पूजां कृत्वा विमर्गो मोक्ष-

मार्गः काय । तथा च भारद्वाजः—

सप्राम विमर्गो मे च यायिनः स्थायिनो पूजाः ।
 यद्वान्ता मावर्त्तनीयास्ते शास्त्रधर्मेण पूजिताः ॥ १ ॥

तथा ह्येव तत्र च कृतं च तदाह—

यायिषु संमर्गः सेनापत्यायनः ॥ ७७ ॥

टीका—यायिषु नयनीना यायिभिः सह योऽभी संमर्गो मे त-

दाह—

यायिषु संमर्गः सेनापत्यायनः ॥ ७७ ॥

टीका—यायिषु नयनीना यायिभिः सह योऽभी संमर्गो मे त-

दाह—

यायिषु संमर्गः सेनापत्यायनः ॥ ७७ ॥

टीका—यायिषु नयनीना यायिभिः सह योऽभी संमर्गो मे त-

दाह—

यायिषु संमर्गः सेनापत्यायनः ॥ ७७ ॥

टीका—यायिषु नयनीना यायिभिः सह योऽभी संमर्गो मे त-

दाह—

यायिषु संमर्गः सेनापत्यायनः ॥ ७७ ॥

टीका—यायिषु नयनीना यायिभिः सह योऽभी संमर्गो मे त-

दाह—

तर्ह न भवति प्रत्युत तस्य (मुडभर्तैव) मतिनया द्वितीयं प्रोक्तं
त्रोतः धर्मलक्षणं तदुर्लभं कृष्णेण यदि लभ्यते इति । तथा च गुरुः—

मतिर्नाम नदी ख्याता पापधर्मोद्भवा नृणां ।

द्विष्टोतः प्रथमं तस्याः पापो धर्मस्तथापरं ॥ १ ॥

अथ महता वचनस्य माहात्म्यमाह—

सत्येनापि शप्तव्यं महतामभयप्रदानवचनमेव शपथः ॥७९॥

टीका—किञ्च सत्यः शपथः कार्यो विश्वासविषये शस्त्राणां । मह-

शमुत्तमपुरुषाणामभयवचनं यत् स एव शपथः । तथा च शुक्रः—

उच्चमानो नृणामथ यद्वाक्यमभयप्रदं ।

स एव सत्यः शपथः किमन्यः शपथः कृतः ॥ १ ॥

अथ साधूनामसाधूनां ये व्यवहारास्ते कथ्यन्ते—

सतामसतां च वचनायत्ताः खलु सर्वे व्यवहाराः, स एव सर्व-
लोकमहनीयो यस्य वचनमन्यमनस्कतयाप्यापातं भवति शासनं
। ८० ॥

टीका—सपुरुषो निश्चयेन सर्वलोकमहनीयोऽखिलजनपूजनीयो
भवति । यस्य पुरुषस्य वचनं वाक्यं अन्यमनस्कतया निजमाहात्म्येनापि
प्रायात व्याख्यात विस्तीर्णं यथा शासनं तत्सङ्गं भवति । तथा च शुक्र —

स एव पूज्यो लोकानां यद्वाक्यमपि शासनं ।

विस्तीर्णं प्रसिद्धं च लिखितं शासनं यथा ॥ १ ॥

अथ वाचा माहात्म्यमाह—

नयोदिता वाग्वदति मत्या ह्येषा सम्यक्ती ॥ ८१ ॥

टीका—या वाणी नयोदिता भवति नीत्याग्निक्वा भवति सा ।

हि स्फुटः । ०या प्रत्यक्षा । सम्यक्ती भारती । तथा च गौतम —

नीत्याग्निक्वात्र या वाणी प्रोच्यते साधुभिर्जनैः ।

प्रत्यक्षा भारती ह्येषा विकल्पो नास्ति कश्चन ॥ १ ॥

यद्वसत्यं जने कोशपानं तद्विद्व निश्चितं ।

करोति पुत्रप्राणां घातं गोत्रसमुद्भयं ॥ १ ॥

अथ व्यूहरचनायाः कारणान्याह—

बलं बुद्धिर्भूमिर्ग्रहानुलोम्यं परोद्योगश्च प्रत्येकं बहुविकल्पं
दण्डमण्डलाभोगा संदृतव्यूहरचनाया हेतवः ॥ ८६ ॥

टीका—गताधिमतत् ।

अथ व्यूहस्य स्वर्यकाष्ठे प्राह—

साधुरचितोऽपि व्यूहस्तावत्तिष्ठति यावच्च परबलदर्शनं ॥ ८७ ॥

टीका—व्यूहः पूरादिकस्तावत्तिष्ठति यावत्परबलदर्शनं । विद्वि-
शिष्टोऽपि साधुरचितोऽपि बुद्धिमता रचितोऽपि । परबलदर्शने जाते ये
वीर्योत्कट्वा भवन्ति व्यूहं त्यक्त्वा परसेन्यं प्रवेष्टुं करोति ततः स्यात्संकु-
ल्युद्धम् । तथा च शुकः—

व्यूहस्य रचना तावत्तिष्ठति शास्त्रनिर्मिता ।

यावद्व्यद्वलं नैव दृष्टिगोचरमागतं ॥ १ ॥

अथ योर्ध्वधा योद्धव्यं तदाह—

न हि शास्त्रशिक्षाक्रमेण योद्धव्यं किन्तु परप्रहारानिप्रायेण
॥ ८८ ॥

टीका—पूर्वं शास्त्रशिक्षा कृता एवाभिज्ञा सह । किन्तु परप्रहारा-
निप्रायेण योद्धव्यं यथा शत्रवः प्रहारात् प्रयतन्ति तथा तेषु यत्न-
च विहाय प्रकाशयुद्धं प्रकटयुद्धं यत्नव्यं । हि स्पृष्टार्थः । तथा च शुकः—

शिक्षाक्रमेण नो युद्धं कर्तव्यं शस्त्रशिक्षायाः ।

प्रहारात् प्रेष्य शत्रुणा तदर्थं युद्धमाचरेत् ॥ १ ॥

अथ शत्रो विद्वर्गापुणा यथा नान्यथा तदाह—

व्यसनेषु प्रगादेषु वा परपूरे मन्यप्रेष्यजमवस्कन्दः ॥ ८९ ॥

यः स्वामिनं परित्यज्य युद्धे याति पराङ्मुखः ।

इहाकीर्तिं परां प्राप्य मृतोऽपि नरकं व्रजेत् ॥ १ ॥

अथ विग्रहार्थं चलितेन भूभुजा यत्कर्तव्यं तदाह—

विग्रहायोच्चलितस्यार्द्धं बलं सर्वदा सन्नद्धमासीत्, सेनापतिः
प्रयाणमावासं च कुर्वीत चतुर्दिशमनीकान्यदूरेण संचरेयुस्तिष्ठेयुश्च

टीका—विग्रहाय युद्धाय उच्चलितस्य राज्ञः सेनाध्यक्षेणार्द्धं बलमर्धं
सैन्यं सन्नद्धं कार्यं प्रयाणं यदा भवति । तथा च सन्यावासं समुद्यतस्य
चतुर्दिशमनीकानि सैन्यानि औरः (आरात्) समीपं संचरेयुः परिभ्रमणं
कुर्युः तथा तिष्ठेयुस्तिष्ठन्ति स्म । यतः प्रयाणसमये समर्थोऽपि राजवर्गो
व्याकुलो भवति शूराः परालम्बं मत्वा प्रहरन्ति । तथा च शुकः—

परभूमिप्रतिष्ठानां नृपतीनां शुभं भवेत् ।

आवासे च प्रयाणे च यतः शत्रुः परीक्ष्यते ॥ १ ॥

अथ प्रणिधीना स्वरूपमाह—

धूमाग्निरजोविषाणध्वनिव्याजेनाटविकाः प्रणधयः पराबलान्यागच्छन्ति निवेदयेयुः ॥ ९७ ॥

टीका—निवेदयेयुः परबलान्यागच्छन्ति शत्रुसैन्यान्यायान्ति । केन
कृत्वा ? धूमाग्निरजोविषाणध्वनिव्याजेन । आगच्छति परसैन्ये दूरस्थिते
स्वामिनि धूमं कुर्युः, अग्निं वा ज्वालयन्ति, रजो वा दर्शयन्ति, विषाणं
माहिषं शृंगं वा वादयन्ति । तथा च गुरुः—

प्रभो (भी) दूरस्थितो (ते) घेरी यदागच्छति सन्निधौ ।

धूमादिभिर्निवेद्यः स चरद्धारण्यसंभयः ॥ १ ॥

अथ भूमिगतेन भूभुजा यथा स्थानं देयं तस्य स्वरूपमाह—

पुरुषप्रमाणोत्सेधमवद्भुजनविनिवेशनाचरणापसरणयुक्तमग्रतो
महामण्डपावकाशं च तदंगमध्यास्य सर्वदास्थानं दद्यात् ॥ ९८ ॥

टीका—दद्यात् । किं तत् ? आस्थानं सभागृहं । किंविशिष्टं ? पुराणोक्तं
पुराणप्रमाणोक्तं । पुनरपि किंविशिष्टं ? अथ ह्युज्ज्वलं स्तोत्रजनं, (तस्य)
निवेशनं प्रवेशनं, आचरणं परिभ्रमणं, अपमरणं निर्गमयुक्तं भवति ।
तत्र स्थानगृहं स्तोत्राः प्रविशन्ति, परिभ्रमन्ति, गच्छन्तीति । पुनरपि
कथंभूतं ? यदप्रतो मण्डपावकाशे मण्डपप्रदेशे च, तद्गमनध्यास्य स्थानं
दद्यात् ।

अथ सर्वसाधारणस्थानेन दत्तेन यद्भवति तदाह—

सर्वसाधारणभूमिकं तिष्ठतो नास्ति शरीररक्षा ॥ ९९ ॥

टीका—सर्वजनसाधारणे सर्वजनगम्यमास्थाने वित-वतो ददतः
शरीररक्षा नास्ति न भवति, पातकानां पातात् । तथा च शुक्रः—

परस्त्रेक्षं गतो या स्यात्सर्वसाधारणं नृपाः ।

भास्थानं कुदते मूढो घातकैः स निहन्त्यते ॥ १ ॥

अथ परभूमिप्रविष्टेन भूमिजा परिभ्रमणं यथा कार्यं तदाह—

भूचरो दोलाचरस्तुरंगचरो वा न कदाचित् परभूमौ प्रवि-
शेत् ॥ १०० ॥

टीका—न प्रविशेन्न गच्छेत् । कोऽपि न गता । वक्ष्यामि परभूमौ । किं
विशिष्टं मनः नृचरः सन् पदानां सन् । तथा च गच्छेत् । प्रविशेत् ।
तथा तुरंगचरोऽपि गच्छेत् । तथा च गच्छेत् । तथा च गच्छेत् ।

परभूमौ प्रविष्टा यः पारिवर्तः परिभ्रमन् ।

इयं विधया वा वाज्याया घातकैः पतति ॥ १ ॥

अथ परभूमौ प्रविष्टेन

केचिन् जंषाजं वाप्य-वापनं न प्रभवन्ति तद्विषयः । १ ॥

१ बुद्धिपुत्राय चकार ॥

टीका—(न प्रभवन्ति के ? क्षुद्रोपद्रवाः) । कस्य ? राज्ञः । क ?
अध्यासीने आरोहणे । कं ? करिणं हस्तिनं, जपाणं वाहनविशेषं । तथा
च भागुरिः—

परभूर्मा महीपालः करिणं यः समाश्रितः ।

व्रजन् जंपणमध्यास्य तस्य कुर्वन्ति किं परे ॥ १ ॥

इति युद्धसमुद्देशः

३१ विवाह-समुद्देशः ।

अथ विवाहसमुद्देशं व्याख्यायते । तत्रादावेव पुंशो व्यवहारः
समयमाह—

डादशवर्षा स्त्री षोडशवर्षः पुमान् प्राप्नोष्यवहारां भवतः ॥१॥
टीका—अत्र व्यवहारसन्देहं हर्षवर्षाणां प्राप्तिरिति सूचितं ।

टीका—अत्र व्यवहारसन्देहं गुरतोपचारः कथ्यते। कर्मि-१। यदा
 ह्यी द्वादशवर्षा भवति तथा पुण्य-पौण्डराधिक्यं तदा तपोव्यवहार-
 धर्मोऽनुरागाय भवति। तथा च राजपुत्र—

यदा द्वादशायरा स्यात्तदानीं पौनःपुन्यं ।
पुनः स्यात्तदा रंगस्तथापि ।

पुरुषः स्यात्तदा रंगस्ताभ्यां मेधुनजः परः ॥ १ ॥

अथ श्रीपुरुरयसंस्कृता व्यवहाराजुल्लहादिर्नरति तदाह—
विवाहपूर्वो व्यवहारः—

विवाहपूर्वो व्यवहारात्तु शर्द्धिरति तदाह—
 दीवता—तुर्दीनयति मन्त्रेण ॥ २ ॥

टीका—मुन्दीनयति मन्त्रान् मुन्दीन । मुन्दीनोति । योऽयं निवाह
णयते । विविदि ।

[illegible][illegible]

पुण्यार्थं कथयन् यत्नं विधेयं तत्तु
 वस्तुतः तत्तु तत्तु तत्तु तत्तु तत्तु
 विवाहस्य तत्तु तत्तु तत्तु तत्तु तत्तु

अथ विवाहस्य उपसंग्रहः

पुस्तिको बरपविधानमाप्रद शास्त्र ब्रह्मसूत्रम् ॥ २ ॥

टीका—एतद्गुणविशिष्टं यत्पाणिग्रहणं हस्तग्रहणं स विवाह उच्यते युक्तितो वरणविधानं, अग्निदेवद्विजसाक्षिकं च यत् कुलक्रमेण कन्याया वैरर्वरणं संप्रदानं विधानं भवति । किंविशिष्टं ? अग्निदेवद्विजसाक्षिकं प्रत्यक्ष । तथा च भारद्वाजः—

वरणं युक्तितो यच्च बह्विब्राह्मणसाक्षिकं ।

विवाहः प्रोच्यते शुद्धो योऽन्यस्य स्याच्च विप्लवः ॥ १ ॥

अथाष्टविधस्य विवाहस्य लक्षणमाह—

ब्राह्म्यो दैवस्तथैवार्पःप्राजापत्यस्तथापरः ।

गन्धर्वश्चासुरश्चैव पैशाचो राक्षस्तथा ॥ १ ॥

अथ ब्राह्मणविवाहस्य लक्षणमाह—

स ब्राह्मणो विवाहो यत्र वरायालङ्कृत्य कन्या प्रदीयते ॥ ४ ॥

अथ दैवविवाहस्य लक्षणमाह—

स दैवो विवाहो यत्र यज्ञार्थमृत्विजः कन्याप्रदानमेव दक्षिणा ॥ ५ ॥

तथा च गुरुः—

कृत्वा यज्ञविधानं नु यो ददाति च ऋत्विजः ।

समाप्ता दक्षिणां कन्यां दैवं विवाहिकं हि तत् ॥ १ ॥

अथार्पलक्षणमाह—

गोमिधुनपुरःसरं कन्यादानादार्पः ॥ ६ ॥

१ मुद्रितमूलपुस्तके लिखितमूलपुस्तके च नैष श्लोकः । २ स ब्राह्मणो विवाहो, एतावन्मात्र एव पाठोऽस्मादग्रेतनः पाठस्तु प्लिप्तः स च मूलपुस्तकद्वारासंयोजितः । ३ कल्पितेयमवतरमिका । ४ “ स दैवो विवाहो ” इति पर्यंतः पाठो मूल पुस्तकद्वारासंयोजितः । ५ गोमूत्रमिधुनपुरःसारमिति पाठान्तरे लिखितमूलपुस्तके ।

कन्यां दत्त्वा पुनर्दद्याद्यत्र गोमिथुनं परं ।
घराय दीयते सोऽत्र विवाहश्चार्थसंक्षितः ॥ १ ॥

अथ प्राजापत्यस्य लक्षणमाह—

विनियोगेन कन्याप्रदानात्प्राजापत्यः ॥ ७ ॥

तथा च गुरुः—

धनिनो धनिनं यत्र विपये कन्यकामिह ।
सन्तानाय स विद्वेयः प्राजापत्यो मनीषिभिः ॥ १ ॥

एते चत्वारो धर्म्या विवाहाः ॥ ८ ॥

अथ गान्धर्वस्य लक्षणमाह—

मातुः पितुर्बन्धूनां चाप्रामाण्यात्परस्परानुरागेण मिथःसम-
वायाद्गान्धर्वः ॥ ९ ॥

तथा च गुरुः—

पितरौ समतिष्कम्य यत्कन्या भजते पतिं ।
सानुयगा सरं च स गान्धर्व इति स्मृतः ॥ १ ॥

अथ गुरुरिवाहस्य स्वरूपमाह—

पणवन्धेन कन्याप्रदानादागुरः ॥ १० ॥

तथा च गुरुः—

मूल्यं सारं गृहीत्या च पिता कन्यां च लोभतः ।
सुरूपामघट्टजाय विवाहश्चागुरो मतः ॥ १ ॥

अथ पैशाचस्य लक्षणमाह—

मुप्तप्रमत्तकन्यादानात्पैशाचः ॥ ११ ॥

तथा च गुरुः—

मुप्तां याव प्रमत्तां वा यो मत्पाथ विवाहयेत् ।
कन्यकां सोऽत्र पैशाचो विवाहः परिकीर्तितः ॥ १ ॥

अथ राक्षसविवाहस्य स्वरूपमाह—

कन्यायाः प्रसह्यादानाद्राक्षसः ॥ १२ ॥

रुदतां च यन्धुयर्गणां दृढाद्रुज्जनस्य च ।

गृह्णाति यो वरात्कन्यां स विवाहस्तु राक्षसः ॥ १ ॥

एते चत्वारोऽधर्म्या अपि नाधर्म्या यद्यस्ति बभूवरयोरनप-
वादं परस्परस्य भाव्यत्वं ॥ १३ ॥

अथ कन्या यैर्दूषणैर्न विवाह्यते तान्याह—

उन्नतत्वं कनीनयोः, लोमशत्वं जंघयोरमांसलत्वमूर्वोर-
चारुत्वं कटिनाभिजठरकुचयुगलेषु, शिरालुत्वमशुभसंस्थानत्वं
च बाह्वोः, कृष्णत्वं तालुजिह्वाधरहरीतकीषु, विरलविष-
मभावो दशनेषु, कृपत्वं कपोलयोः, पिंगलत्वमक्ष्णोर्लघ्नत्वं पि-
(चि) लिकयोः, स्पष्टुदत्वं ललाटे, दुःसन्निवेशत्वं श्रवणयोः,
स्थूलकपिलेषु (प) रूपभावः केशेषु, अतिदीर्घातिलघुन्यूना-
धिकता समकटकुब्जवामनकिराताङ्गत्वं जन्मदेहाभ्यां समानता-
धिकत्वं चेति कन्यादोषाः सहसा तद्रूढे स्वयमाहूतगतस्य वा
व्यक्ता व्याधिमती रुदती पतिमी मुप्ता स्तोकापुष्का बहिर्गता
कुलटाग्रमग्ना दुःखिता कलहोद्यता परिजनोद्भासिन्यप्रियदर्शना
दुर्भगेति नैतां शृणीत कन्याम् ॥ १४ ॥

टीका—गतार्थे ।

अथ कन्यावरयोः शिथिलं यत्पाणिग्रहणं भवति तस्य दूषणमाह—

शिथिले पाणिग्रहणे वरः कन्यया परिभूयते ॥ १५ ॥

तथा च नारदः—

शिथिलं पाणिग्रहणं स्यात्कन्यावरयोर्यदा ।

परिभूयते तदा भर्ता कान्तया सत्प्रभावतः ॥ १ ॥

अथ वरस्य कन्यामुखमपश्यतो यद्वदति तदाह—

मुखमपश्यतो वरस्यानमीलितलोचना कन्या भवति प्रचण्डा
॥ १६ ॥

टीका—वेदिमध्यगतायाः कन्याया मुखं यदा भर्ता न पश्यति
तदा कन्या प्रचण्डा भवति । तथा च जैमिनि—

मुखं न चीक्षते भर्ता वेदिमध्ये व्यचस्थितः ।

कन्याया चीक्षमाणायाः प्रचण्डा सा भवेत्तदा ॥ १ ॥

अथ शयने कन्या याः प्रथमदिवसे यदा भर्तुरपमानं करोति तदाह—

सह शयने तूष्णीं भवन् पशुवन्मन्येत ॥ १७ ॥

बलादाक्रान्ता जन्मविद्वेष्यो भवति ॥ १८ ॥

धैर्यचातुर्यायत्तं हि कन्याविस्मभणं ॥ १९ ॥

समविभवामिजनयोरसमगोत्रयोश्च विवाहमम्बन्धः ॥ २० ॥

महतः पितुरश्वर्यादल्पमवगणयति ॥ २१ ॥

अल्पस्य कन्यापितुर्दांस्थ्यं महता कष्टेन विज्रायते ॥ २२ ॥

अल्पस्य महता सह संव्यवहारे महान् व्ययोऽल्पशायः ॥ २३ ॥

वरं वेश्यायाः पस्त्रिहो नाविशुद्धकन्याया परिग्रहः ॥ २४ ॥

वरं जन्मनाशः कन्यायाः नाकलीनेष्ववक्षेपः ॥ २५ ॥

आनुलोम्येन चतुस्त्रिद्विवर्णाः कन्याभाजनाः ब्राह्मणक्षत्रि
शः ॥ २८ ॥

मकशक्तिसम्पन्नः सम्यगूहापोहनं युक्तायुक्तविवेकः सम्यगवधारण इदि
स्थापनं तस्य आगमः परिज्ञानं तत्र विषये यासौ शक्तिः समर्थता तथा
सम्पन्नो युक्त इति । तथा संप्रज्ञातसमस्तलिपिभाषा.....
वर्णा ब्राह्मणक्षत्रियविद्वद्ब्राह्मणः तथा आश्रमा ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थय-
तिलक्षणास्तथा स्वो (परश्च) योऽसौ व्यवहारः तस्य स्थितिर्ज्ञानं यस्य ।
तथाशुद्धलेखनवाचनसमर्थो यो लेखनामाशु शीघ्रं लिखति तथा वाचनसमर्थ
इति सन्धिविग्रहिका गुणाः ।

अथ विरक्तजनस्य लिङ्गान्याह—

कथाव्यवच्छेदो व्याकुलत्वं मुखे वैरस्यमनवेक्षणं स्थान-
त्यागः साध्याचरितेऽपि दोषोद्भावनं विद्वप्ते च मौनमधमा-
कालयापनमदर्शनं वृथाभ्युपगमश्चेति विरक्तलिङ्गानि ॥ ३ ॥

टीका—कथाविच्छेदः कथायाः कथ्यमानायां विच्छेदः करोति न
शृणोति । तथा व्याकुलत्वं याति कथा शृण्वन् । तथा मुखे वैरस्य
करोति । तथा अनवेक्षणं वार्तायां कथ्यमानायाः समुखं नावलोकयेत् ।
तथा स्थानत्यागोऽन्यत्रोत्थाय गमनं । साधुचरितेऽपि दोषोद्भावनं
दोषकीर्तनं करोति विद्वप्ते च मौनं करोति न प्रत्युत्तरं प्रयच्छति । तथा
अधमाकालयापनं अधमया योऽर्मी कालः प्रस्तावस्तस्य यापनं प्रापणं
करोति । तथादर्शनं आस्यदर्शनं न प्रयच्छति । तथा वृथाभ्युपगमः
मेवाकारेण यः कृतः तं व्यर्थतां नयति तेन रज्यते इति विरक्तजनस्य
लिङ्गानि चिह्नानि ज्ञेयानि ।

अथ सानुरागलिङ्गानि—

दूरादेवेक्षणं, मुसप्रमादः, संप्रश्नेष्यादरः, प्रियेषु वस्तुषु
रक्षणं, परोक्षे गुणग्रहणं, उत्परिवारस्य मदानुशुचिरित्यनुरक्त-
लिङ्गानि ॥ ४ ॥

प्रकीर्णसमुद्देशः ।

टीका—दूरदेवेक्षणं दूरदेवागच्छन्तमवलोक्त्यनि । तथा मुखप्रमाणं मुखप्रसन्नता । तथा संप्रभेज्यादरः यदि किंचित्संप्रभं करोति तत्सादर । तथा प्रियेषु वस्तुषु स्मरणं यानि तेन पूरं प्रियाण्यनीष्टानि कृतानि तानि स्मरति । तथा परोक्षे गुणग्रहणं यदा समीपे न भवति तदा तद्गुणान् कीर्तयति । तथा तत्परिवारस्यानुनयमृतिः तत्परिवारस्य तदा सर्वकालं अनुनयमृतिविनयवर्तनं करोतीति सा अनुगतविह्वलानि ।

अथ काव्यगुणा व्याख्यायन्ते—

ध्रुतिमुखत्वमपूर्वाविरुद्धार्थातिशययुक्तत्वमुभयालंकारमस्यप्र-
त्वमन्यूनाधिकवचनत्वमतिव्यक्तान्वयत्वमिति काव्यस्य गुणाः
॥ ५ ॥

टीका—ध्रुतिमुखत्वं येन काव्येन ध्रुतेन वर्णान्यो मुखं नरति ।
अपूर्वाविरुद्धार्थातिशययुक्तत्वं अपूर्वार्था. येनावि नोक्तं अप्रथिता,
तथा अविरुद्धा दोषरहितास्तर्तिशययुक्तं यत् । तदोपमाउपमास्तमनवं
अपूर्वार्थानां योऽसादरुपमास्तमन्या सम्पन्नं युताविति । तथाऽन्य-
नाधिकवचनं अन्यूनानि परिपूर्णानि अपिवाचनं वचनानि काव्यानि
यत् । तथा व्यक्तान्वयत्वं अतिशयेन योऽसादुक्तिः मतिप्रसङ्गः तेन युतः
काव्यमिति काव्यगुणाः ।

अथ काव्यदोषा व्याख्यायन्ते—

अतिपरुषवचनविन्यासत्वमनन्वितगताधत्वं दुरोधानुपपन्न-
पदोपन्यासमयसार्धवतिविन्यासत्वमभिधानादिपदशुन्यत्वमिति
काव्यस्य दोषाः ॥ ६ ॥

टीका—अतिपरुषाणां परिपूर्णानामनुपपन्नवचनानां विन्यास-
ना यत् तत्तदोषः काव्यः । तथा अनन्वितगताधत्वं अनन्वितगताधत्वं
यथा । तथा दुरोधानुपपन्नपदोपन्यासः दुरोधो न यथा यदा न तदा

नुपपन्नानि अयोग्यानि यानि पदानि तेषां उपन्यासः करणं यत्र । तथा अयथार्थयतिविन्यासत्वं अयथार्थोऽयुक्तार्थो यतिविन्यासः पदच्छेदन्यासो यत्र । तथाभिधानाभिधेयशून्यत्वं अभिधानशब्देन नाममाला प्रोच्यते तेषु अभिधेयाः कविता ये शब्दास्तेषां शून्यत्वं तै रहितत्वमपरिप्राप्त्यैर्युक्तं तत्सदोषं काव्यं इति काव्यदोषाः ।

अथ कविगुणा व्याख्यायन्ते—

वचनकविरर्थकविरुभयकविचित्रकविर्वर्णकविर्दुष्करकविरो-
चकी सतुपाभ्यवहारी चेत्यष्टौ कवयः ॥ ७ ॥

टीका—वचनकविरेकस्तावत् यथा कालिदासवत् ललितवचनैः काव्यं करोति । अन्योऽर्थकविर्यथा भारवी गूढार्थं काव्यं करोति । अन्य उभयकविर्यथा माघो ललितवचनैर्गूढार्थैः काव्यं करोति । अन्यचित्रकविः नाणमुत्तमं (!) चित्रकाव्यं करोति । अन्यो वर्णकविः परवदक्षराडम्बरेण (!) सानुप्रासे काव्यं चाणिक्यवत् अष्टौ कवयः ।

अथ कविसग्रहगुणा व्याख्यायन्ते—

मनःप्रसादः, कलामु कौशलं, सुखेन चतुर्वर्गविषयाव्यु-
त्पत्तिरासंसारं च यद् इति कविसंग्रहस्य फलं ॥ ८ ॥

टीका—एकस्तावन्मनःप्रसादो गुणः । तथा कलामु कौशलं कवि-
त्वविषये कला अक्षरलक्षणास्तामु कौशलं । तथा सुखेन चतुर्वर्गविषया
व्युत्पत्तिः, चतुर्वर्गशब्देन धर्मार्थकाममोक्षा कथ्यते तेषां विषये निजनि-
जमार्गप्रदेशास्तेषां सुखेन लीलया व्युत्पत्तेरनेकप्रकारत्वं यस्य कवित्वे
दृश्यते । तथा च आसंसारं यशो यावत्संसारस्तावद्व्यासवत् कीर्तिः ।
एतत्कविसग्रहस्य कविभवस्य फलमिति । इति कविः सग्रहयति (!) ।

अथ गीतगुणा व्याख्यायन्ते—

प्रकारकसमुद्देशः ।

आलस्यश्रुतिर्माधुर्यातिशयः प्रयोगमन्दर्यमतीतमसृणता
स्थानकम्पितकुहरितादिभावो रागान्तरसंक्रान्तिः परिगृहीतगग-
निर्वाहो हृदयप्रादिता चेति गीतस्य गुणाः ॥ ९ ॥

टीका—एकस्तावत्प्रथममेवालस्यश्रुतिः, आलस्यश्रुतेन पङ्क्त्यभ-
गान्धार-मध्यम-पञ्चम-धैवत-निषादानां स्वराणां ध्यतिरूप्यते । तथा-
श्रुतिः क्रिया, कथमेतेषां जीवविशेषाणां स्थरे
तद्वत्—

मयूरः पङ्क्त्याचष्टे चकारस्नेहियपंचमा ।
भजा पदति गान्धारं वीजं पदति मध्यमं ॥ १ ॥
पसन्तकाले सप्तमांसे पंचमे चोक्तिर्योऽपि च ।
अथ च ध्वनं प्राह निषादे कुञ्जरोऽपि च ॥ १ ॥

आलस्यश्रुतिस्ततः प्रथम परिज्ञेया । तथा माधुर्यातिशयो ध्रुव
ध्रुतिगुणो भवति अतिशयः तथा यत्र प्रयोगमन्दर्यं प्रयोगः
पदन्वासास्तोत्रं मीर्यं वीजमलता । तथातीव मसृणता घनता । तथा-
स्थानकम्पितकुहरितादिभावः स्थानश्रुतेन विभावः स्थानं यत्र गीतं ।
स्थितं धुनितं तथा कुहरितं संबोधने ताभ्यां भावः स्थानं यत्र गीतं ।
रागान्तरसंक्रान्ती रागरेष । परिगृहीतगगानिर्वाहो यत्र ध्वनिः सति
तद्गानं प्रानन्दं । तथा निर्वाहः । तथा हृदयप्रादिता लोके बहुगुण-
त्वाद् इति ध्वनेन हीनं गीतमभ्यनुभवः ।

अथ आलस्यश्रुतिः व्याख्यातव्यम्—

ममर्यं तालानुवाचिन्ने तेषां विनेयानुगतम् । अलस्यं च प्र-
वृत्तिप्रयोगर्यं ध्रुतिगुणान्तरं चेति शब्दगुणाः ॥ १ ॥

टीका—समत्वं (अ) निप्रुत्वमित्यर्थः । तथा तालानुयायित्वं तालः पञ्चविधस्तस्यानुपृष्टतो यत्तत् तालानुयायित्वं । तथा गेयाभिनेयानुगतत्वं । तथा श्लक्ष्णत्वं वाद्यदोषविहीनं । तथा मुव्यक्तयतिप्रयोगत्वं मुव्यक्ता ये यत्-यस्त्रयोऽपि नव तत्सुव्यक्तयतिप्रयोगत्वं । तथा श्रुतिमुखावहत्वं कर्णाभ्यां यद्वाद्यमानं मुखं भवति जनयति तच्छ्रुतिमुखावहत्वं वाच्यमिति वाद्य-गुणाः कथ्यन्ते ।

अथ नृत्यगुणा व्याख्यायन्ते—

दृष्टिहस्तपादक्रियासु समसमायोगः संगीतकानुगतत्वं मुस्लि-
ष्टललिताभिनयाङ्गहारप्रयोगभावो रसभाववृत्तिलावण्यभाव इति
नृत्यगुणाः ॥ ११ ॥

टीका—नृत्यविषये भरतेन पङ्गादयः प्रोक्ताः तथाञ्जलिपूर्वकाद्यतुः-
पष्टिप्रमाणहस्तविषयाः कथिताः, नव अष्टोत्तरशतं पादविक्षेपानां
कथित । तदेतदुक्तं भवति, दृष्टिहस्तपादानां सममेककालं समायोगो
मेलापको गीतवाद्यवेशनं यथोचितो यत्र भवति तत्र गीते संगीतकानुग-
तत्वं संगीतकं कालादिकं यत्पूर्वं दृष्टिहस्तपादपूर्वकं एककालिकं यथोक्तं
योऽभिनय उपाध्यायसूचितस्तेन योऽङ्गहारोऽङ्गविक्षेपस्तस्य योऽसौ
प्रयोगः समाचरणं तस्य योऽसौ भावः स्फुटीकरणं यत्र नृत्ये । तथा
रसभावो लावण्यं रसाः शृङ्गाराद्या नव संख्यास्तेषां ये भावास्तेषु यल्ला-
वण्यं भरतेनोक्ता एकाशीतिप्रमाणाभेदा योऽसौ वृत्तिवर्तनं तेन लाव-
ण्याश्रितं यन्नृत्यं तच्छास्त्रमिति नृत्यगुणाः ।

अथ महापुरुषस्य लक्षणमाह—

स खलु महान् यः खल्वार्तो न दुर्वचनं ब्रूते ॥ १२ ॥

टीका—स पुरुष खलु निधयेन महान् महावमाप्रोति । यः किं
विशिष्टः ? न ब्रूते । किं तत् ? दुर्वचनं कस्यापि सम्मुखं । किं विशि-
ष्टोऽपि ! आर्तोऽपि । तथा च शुकः—

प्रकीर्णक समुदेशः ।

दुर्योधनं नैव यो मृषाद्वयार्थं कुपितोऽपि सन् ।
स महस्यमवाप्नोति समस्ते धरणीतले ॥ १ ॥

अथ गृहस्थस्य दोगमाह—

स किं गृहाश्रमी यत्रागत्याधिनी न भवन्ति कृतार्थाः ॥ १३ ॥

टीका—यस्य गृहस्थस्य गृहं प्राप्ताः । के ते । अधिनी पाचकाः ।
कृतार्थाः सन्तो न यान्ति किञ्चिदपि न उभन्ते इति तात्पर्यार्थः । तथा

च गुरुः—

वृणानि भूमिगर्भं पात्रा वयं तु गृह्णता ।
दृष्टिंरपि दातव्यं समासघस्य वार्धिना ॥ १ ॥

अथ तादात्विकस्य स्वर्णमाह—

ऋणग्रहणेन धर्मः सुखं सेवा वणिज्या च तादात्विकानां
नापतिद्विपुत्तीनां ॥ १४ ॥

टीका—तादात्विकस्तदुगास्तेषां तावन्मात्रं वचने भवति वा स्वर्णं
तेषां धर्मः ऋणग्रहणेन कर्तव्यप्राप्त्याप्याप तथा तेषां सुखं रात्र्यं वा
वणिज्या च पण्यं नाप्यत्र सुखं ये पुनरापयं आवतिवत्ते द्विपुत्तीनां
भवन्ति न तेषां (१) । तथा च गर्गः—

धर्महृत्यं ऋणप्राप्त्या सुखं सेवा परं परं ।
तादात्विकवर्जितैर्द्विपुत्तीनां तज्जनस्य न आपत् ॥ १ ॥

अथ दानविवेके यव. १-२ ॥ १५ ॥

स्वस्य विद्यमानमर्थिन्यो देयं नारिद्यमान ॥ १५ ॥

टीका—आर्थिन्या पाचकाः । देयं नारिद्यमानं ।

वस्तु १ स्वस्या मनः । यदा...

उत्तं च यता गर्जे—

अविद्यमानं यो दद्यान्नुत्तं च यता गर्जे—

बुद्धिं पीडयते येन तस्य पण्यं न भवति ।

१ दद्यात् ॥ १५ ॥

प्रकीर्णक-समुद्देशः ।

नरति, गुस्तरप्रयोजनस्य नाशमवलोक्यासत्यमप्युक्तं सत्यमेव नासत्य ।
तथा च बादरायणः—

तदसत्यमपि नासत्यं यदत्र परिगोषते ।
गुरुकार्यस्य हानिं च घात्या नीतिरिति स्फुटम् ॥ १८ ॥

अथ यथासत्यवादो न भवति तदाह—

प्राणवधे नास्ति कश्चिदसत्यवादः ॥ १९ ॥

टीका—प्राणवधे सम्प्राप्ते न दोषः, असत्यमपि प्राणवधे वक्तव्यम् ।

या च न्यासः—

नासत्ययुक्तं यच्चनं दिनस्ति
न स्त्रीषु राजा न विवाहकाले ।
प्राणात्यये सर्वधनापहारी

पञ्चानृतान्मातृरूपातकानि ॥ १ ॥

अथार्थं लोको यत्करोति तदाह—

अर्थाय मातरमपि लोको दिनस्ति किं पुनरसत्यं न भापते । २० ।
टीका—अर्थाय धनार्थं लोको जनो मातरमपि दिनस्ति न्यापादयति ।

किं पुनरसत्यं न भापते तस्मादर्धविषये विद्वांसो न कार्य इति । तथा

च शुक्रः

अपि स्याद्यदि मातापि ता दिनस्ति जनोऽधनः ।
किं पुनः कांशपानाद्य तस्मादर्धं न विभ्रमम् ॥ १ ॥

अथ देवापत्ता ये पदाध्यानानाह—

सत्कलासत्योपामनं हि विग्रहकर्म, देवावतन्तु कथयन्तो-
निवाहः ॥ २१ ॥

टीका—मातृरूपावज्जानान् ॥ १ ॥ अथ अर्थाय कथयन्ति ॥

द्विजा (१) मूर्खो धनी । कथमप्येत ॥ २ ॥ अथ अर्थाय कथयन्ति ॥

कोपनीय । तथा च विवाहकाले ॥ ३ ॥ अथ अर्थाय कथयन्ति ॥

प्राप्नोति सुकुलजोऽप्यकुलजामिति दैवायत्ता तु पुत्रपौत्रसमृद्धिर्भवति,
अकाले वा गृहभंगः स्यात् । तथा च गुरुः—

विद्यापत्यं विवाहश्च दंपत्योश्चामिता रतिः ।

पूर्वकर्मानुसारेण सर्वं सम्पद्यते सुखं ॥ १ ॥

अथ रतिकाले पुरुषो यद्वदति तस्य प्रमाणतोमाह—

रतिकाले यन्नास्ति कामार्तो यन्न ब्रूते पुमान् न चैतत्प्र-
माणं ॥ २२ ॥

टीका—रतिकाले कामार्तः तन्नास्ति यन्न वदति तस्य प्रमाणात्
नास्ति । न तेनसित्येन सलितो (१) । तस्माद्रतपुरुषेण सत्यावृत्तै-
र्वचनैः सांनुरागा भार्या कर्तव्या । तथा च राजपुत्रः—

नान्यचिन्तां भजेन्नारी पुरुषः कामपंडितः ।

यतो न दर्शयेद्भावं नैव गर्भं ददाति च ॥ १ ॥

अथस्त्रीपुरुषयोः प्रीतिप्रमाणमाह—

तावत्स्त्रीपुरुषयोः परस्परं प्रीतिर्यावन्न प्रातिलोभ्यं कलहो
रतिकैतवं च ॥ २३ ॥

टीका—स्त्रीपुरुषयोस्तावन्नैरन्तर्येण प्रीतिर्भवति यावत्प्रातिलोभ्यं वर्षा-
धर्मस्तथाकलहस्तथा रतिकैतव्यं रतिकौटिल्यं । तथा च राजपुत्रः—

ईषत्कलहकौटिल्यं दम्पत्योर्जायते यदा ।

तथा कोशविदेहगस्ताभ्यामेव परस्पर ॥ १ ॥

अथ तादात्विकस्य रणे यद्वदति तदाह—

तादात्विकवलस्य कुतो रणे जयः प्राणार्थः स्त्रीषु कल्याणं
वा ॥ २४ ॥

टीका—तादात्विकवलस्य तावन्मात्रसैन्येवलस्य युद्धे विजयो न
भवति किमर्थं शत्रुरतिगण्यते तस्माद्युद्धकाले प्रभूत सैन्यं कर्तव्यमिति ।

तथा च गुरुः—

तापन्मात्रो बालो यस्य नान्यार्थस्य कर्त्तुंति च ।

अनुभिदीनसैन्यः स लक्षयित्वा निपात्यते ॥ १ ॥

अथ कृतार्थस्य स्वस्वमाह—

तावत्सर्वः सर्वस्यानुनयवृत्तिपरो यावत् भवति कृतार्थः ॥ २५ ॥

टीका—तावत्सर्वः सर्वस्यानुनयपरो विनयपरत्वात् यः यावत् कृतार्थो भवति, आभीये प्रयोजने यावत् सिद्धयति प्रयोजने तु सिद्धौ क. येन ह्य आसीत् । तथा च व्यासः—

सर्वस्य हि कृतार्थस्य मतिरन्या प्रयत्नेन ।

तस्मात्सर्व इत्यर्थस्य किमर्थः पार्थिवः विद्मः ॥ १ ॥

अथागुणेन पुत्रेण यः प्रतीकारः वर्तव्यस्तमाह—

अनुभस्य कालहरणमेव प्रतीकारः ॥ २६ ॥

टीका—अनुभस्य पदार्थस्यानुभवसमन-राजाय च. प्रदीवत्. विनयपरायणं कालहरणं कालवधनादिभिः पदार्थैश्चनानां ॥ २५७ ॥ तथा च भावः—

अनुभवस्य पदार्थस्य भविष्यस्य प्रदाम्भवे ।

कालातिक्रमणं शुकवा प्रतीकारो न विद्यते ॥ १ ॥

अथ कालेन पुत्रस्य यदुर्वति तदाह—

एकाद्यादिव मीजनाराटोपशान्तिरेव प्रयोजने किं तत्र राग विरागाभ्यां ॥ २७ ॥

टीका—एकीजनाराटोपशान्तिरेव प्रयोजने किं तत्र राग

वैयुज्यादिव ॥ २५७ ॥ नाराटोपशान्तिरेव प्रयोजने किं तत्र राग

एकाद्यादिव ॥ २५७ ॥ नाराटोपशान्तिरेव प्रयोजने किं तत्र राग

एकाद्यादिव ॥ २५७ ॥ नाराटोपशान्तिरेव प्रयोजने किं तत्र राग

एकाद्यादिव ॥ २५७ ॥ नाराटोपशान्तिरेव प्रयोजने किं तत्र राग

न रागो न विरागो वा स्त्रीणां कार्यो विचक्षणैः ।

पद्मपत्रमिव तापस्य शान्तये स्याच्च सर्वदा ॥ १ ॥

अथाधर्मस्यापि पुरुषस्य दृष्टान्तद्वारेण माहात्म्यमाह—

तृणेनापि प्रयोजनमस्ति किं पुनर्न पाणिपादवता मनु-
ष्येण ॥ २८ ॥

टीका—अस्ति विद्यते । किं तत् ? प्रयोजन । केन ? तृणेनापि
निकृष्टेनापि, अथवा यवसेन यदा भोजनावसानं भवति तदा तृणेन
मुखशुद्धिर्भवति यदा कर्णकण्डूतिर्भवति तृणेन नश्यति यदा तेनापि
प्रयोजनं तदा किं मनुष्येण पाणिपादवता न भवति, अपि तु भवत्येव
तस्मादीश्वरेणोक्तमाधममध्यमाः समीपे धार्या नाधमानमुपर्यवज्ञा कर्तव्या ।
तथा च विष्णुशर्मा—

दन्तस्य निष्कोपणकेन नित्यं

कर्णस्य कण्डूयनकेन चापि ।

तृणेन कार्यं भवतीश्वराणां

किं पादयुक्तेन नरेण न स्यात् ॥ १ ॥

अथ लेखस्य सामान्यदत्तस्य विषये यत्कर्तव्यं तदाह—

न कस्यापि लेखमवमन्येत, लेखप्रधाना हि राजानस्तन्मूल-
त्वात्सन्धिविग्रहयोः सकलस्य जगद्व्यापारस्य च ॥ २९ ॥

टीका—कस्यापि सामान्यस्यापि भूभुजा लेखो नावमन्तव्यो नाव-
ज्ञया द्रष्टव्यः । कस्मात्कारणात् ? लेखप्रधाना हि राजानः हि यस्मात्का-
रणात् लेखप्रधानो राजानो भवन्ति सामान्योऽपि कश्चित्तल्लिखति येन
शत्रुचेष्टितं विज्ञायत इति । तथा तन्मूलत्वाद्देखमूलत्वात्सन्धिविग्रहयोः
सकलस्य जगद्व्यापारस्य । यत्र लेखप्रचारो भवति तत्र सन्धिविग्रहयोर्निधयो
भवति तथा जगद्व्यापारस्य स्थितिर्ज्ञायते तस्मात्कारणात् कस्यापि
लेखो नावमन्तव्यः । तथा च गुरुः—

लेखमुक्त्यो मर्त्यपादो लेखमुक्त्यं च चेष्टितं ।

दूरस्थस्यापि लेखो हि लेखादतो नायमन्वते ॥ १ ॥

अथ पुनस्त लक्षणमाह—

पुण्यपुद्गमपि नीतिवेदिनो नेच्छन्ति किं पुनः शय्यपुद्गं ॥ २ ॥

टीका—ये नीतिवेदिनो नीतिज्ञाः शुक्लपुण्यनिप्रभृतय ते पुण्यपुद्ग-
मपि नेच्छन्ति न वाच्छन्ति । किं त पुण्यपुद्गमपि वेना गती भवति ।

किं पुनः शय्यपुद्गं यत्र प्राणव्यागो भवति । तत्र च विदुः —

पुण्यं यत्र न योज्यं किं पुनः निदिनः शयः ।

उपायपतया । पूर्वं तस्मात्पुद्गं समाचरेत् ॥ १ ॥

अथ प्रभोर्लक्षणमाह—

न प्रभुर्यो बहून् विभर्ति किमर्जुनतरोः कलसम्पदा या न
भवति परंपात्रुपभोग्या ॥ ३ ॥

टीका—न प्रभु म्यामी भवते य इव विभोर्जा बहून् विभर्ति
किमर्जुनतरोर्ह्यारिरोक्ष्य कलसम्पदा प्रभूतत्वं तस्य वा या परंपा-
त्रुपभोग्या न भवति । तत्र च म्याता —

एतज्जिवितोऽपि या इवाभी यो विभर्ति बहून् मया ।

प्रभूतत्वं तु ततोऽपि सम्पदाप्यनुभवः च ॥ १ ॥

अथ त्यागिनो लक्षणमाह—

मार्गपादप इव न त्यागी यः मदने मदेवा संशया ॥ ३ ॥

टीका—न त्यागी भवति पुनरी च मदेवा संशया । तत्र च
उपलब्धने सा न न मदेवा मदेवा । तत्र च मदेवा । तत्र च मदेवा ।
तत्र च मदेवा । तत्र च मदेवा । तत्र च मदेवा । तत्र च मदेवा ।
तत्र च मदेवा । तत्र च मदेवा । तत्र च मदेवा । तत्र च मदेवा ।

अथ त्यागिनो लक्षणमाह—

अथ त्यागिनो लक्षणमाह—

अथ भूपतीनां स्वरूपमाह—

पर्वता इव राजानो दूरतः सुन्दरालोकाः ॥ ३३ ॥

टीका—पर्वता इव राजानः । किमिदं शिष्यः ? सुन्दरालोकाः सुन्दरो मनोहर आलोको दर्शनं येषां ते तथा । छत्रपूजाचामरहस्त्यश्वत्थवायाः पापात्मीयं गम्यते तावद्वा स्थानकटोरववस्यनैर्भर्त्स्यमाना (!) प्राप्यते यथा पर्वता दूरात्प्रान्ततायाः मनोहरा दृश्यन्ते समीपगतं धवखादिरथोहरपापानैर्दुरारोहा भवन्ति तस्माद्रूपानां पर्वतानां च समीपगानां च (न) गच्छेत् । तथा च गौतमः—

दुरारोहा हि राजानः पर्वता इव चोन्नताः

दृश्यन्ते दूरतो रम्याः समीपस्थाश्च कष्टदाः ॥ १ ॥

अथ दूरस्थदेशश्रवणस्वरूपमाह—

वार्तारमणीयः सर्वोऽपि देशः ॥ ३४ ॥

टीका—य कश्चिदेशः श्रूयते स वार्ताप्रियो यथा कथितः । एवं ज्ञात्वा स्वदेशं परित्यज्य परदेशं बहुगुणं श्रुत्वा न गम्यत इति । तथा च रैम्यः—

दुर्भिक्षाढ्येऽपि दुःस्थेऽपि दूराजसहितोऽपि च ।

स्वदेशं च परित्यज्य नान्यस्मिन्निष्पद्यु (च्छु)भे व्रजेत् ॥ १ ॥

अथ दुःस्थस्य बान्धवरहितस्य परभूमिः समृद्धापि यादृग्भवति तदाह—

अधनस्याबान्धवस्य च जनस्य मनुष्यवत्यपि भूमिर्भवति महाटवी ॥ ३५ ॥

टीका—यो जनोऽधनो भवति तथा बान्धवरहितश्च तस्य मनुष्यवत्यपि प्रभूतमनुष्यापि भूमिर्महाटवी महारण्यसदृशी । तथा च रैम्यः—

निर्धनस्य मनुष्यस्य बान्धवै रहितस्य च ।

प्रभूतैरपि संकीर्णो जनैर्भूमिर्महाटवी ॥ १ ॥

अथ धीमतोऽरण्यामपि राजधानी प्रवर्तते—

धीमतो अरण्यान्यपि राजधानी ॥ ३६ ॥

टीका—..... १

..... १
अर्थाभिप्रायः निमित्तः ॥ १ ॥

अथासन्नविनाशस्य पुण्यास्य ॥ ३७ ॥

गर्वस्याप्यासन्नविनाशस्य भवति पुणेन मतिर्विपर्यया ॥ ३७ ॥

टीका—सर्वस्यापि जनस्य मतिर्विवर्तते प्रोपण विपर्यया विपर्यया ।

विशिष्टस्य ! आसन्नविनाशस्य समीपवर्तिभूतः । यतोऽभीष्टे भवति ।

राज्यं प्रसीयति, अन्त्या अपि सर्वः क्रिया विपर्ययाः कर्तव्यं यत्तु ॥ ३८ ॥

यदाभीष्टं प्रत्यासन्नभूतमिति । तथा च गर्व —

गर्वेण्यपि हि हृदयेषु विपर्ययेन वर्तते ।

यदा पुमान्परां वेषां गृह्णन्तां शोऽप्यभिव्यक्तिः ॥ ३९ ॥

अथ पुण्यवतः पुण्यस्य पञ्चवर्तते गदा—

पुण्यवतः पुण्यस्य न कचिदप्यस्ति द्रोःस्वर्ग ॥ ३८ ॥

टीका—पुण्यानि पूर्वजन्मकर्मणि पुनश्च पुण्यानि प्रोच्यते तानि

विदन्ते यस्य न पुण्यवान् तस्य पुण्यवतः कदाचिदपि दोषमवाप्येति

न भवति सर्वज्ञानमप्यस्ति ॥ ३९ ॥ तथा च गर्व

तस्य ध्यानमग्राह्यं च बुद्धीमत्तस्य

ध्यानं सर्वं यत्तु यत्तु यत्तु यत्तु यत्तु यत्तु यत्तु यत्तु

३ ९ ३

द्वेदोनुवृत्तं कौ सम्यक् न कर्तव्यं विपर्ययात् ॥ ३९ ॥

१ ॥ ३९ ॥ ३९ ॥ ३९ ॥ ३९ ॥ ३९ ॥ ३९ ॥ ३९ ॥ ३९ ॥

अथ भृत्यापराधे स्वामिनो यद्वदति तदाह—

भृत्यापराधे स्वामिनो दण्डो यदि भृत्यं न मुञ्चति ॥ ४४ ॥

टीका—भृत्यापराधेन कृतेन तत्स्वामिनो दण्डो निपात्यते यदि ते भृत्यं स्वामी न परित्यजति । तथा च गुरुः—

यः स्वामी न त्यजेद्भृत्यमपराधे कृते सति ।

तत्तस्य पतितो दण्डो दुष्टभृत्यसमुद्भवः ॥ १ ॥

अथ समुद्रदृष्टान्तेन महत्तया दूषणमाह—

अलं महत्तया समुद्रस्य यः लघुं शिरसा वहत्यधस्ताच्च नयति
गुरुम् ॥ ४५ ॥

टीका—अलं पर्याप्तं । महत्तया माहात्म्येन गुरुत्वेन । कस्य ? समुद्रस्य । यः किं करोति । लघुं पदार्थं शिरसा वहति सम्मानयुक्तान् करोति । तथा गुरुनतिपरिभवस्थाने नियोजयति । तस्य स्वामित्वेनालं पर्याप्तं न क्रियते इत्यर्थः । तथा च विष्णुदर्मा—

स्थानेष्वेव नियोज्यन्ते भृत्याश्च निजगुरुकाः ।

न हि चूडामणिं पादे कश्चिदेवात्र संस्पृशेत् ॥ १ ॥

अथ रतिमंत्राहारकालेषु मत्कर्तव्यं तदाह—

रतिमंत्राहारकालेषु न कमप्युपसेवेत् ॥ ४६ ॥

टीका—न उपसेवेत् न समीपे गच्छेत् । कमपि ! कतमपि । कस्मिन् काले । श्रीमन्मन्त्रकाले तथा मन्त्रकाले तथाहारकाले भोजनसमये । रतिकालेऽनीयैऽपि । अत्रापि देव्यै च नार्पणे स्वागतं मन्त्रं च मन्त्रेणैव करोति । आहारकाले यथाहारोऽङ्गिको भवति । उद्दिष्टा न तस्य तेषां सम्भावने । तथा च गुरुः—

रतिमन्त्रादानविधौ कुर्यान्नो नोपमन्यते ।

यन्नाष्टमध्यं योकाभि यतो देवमयानुयाय ॥ १ ॥

अथ तिर्यधु पथा वर्तितव्यं तदाह—

गुप्तु परिचितंश्चपि तिर्यधु विश्वासं न गच्छेत् ॥ ४७ ॥

टीका—न गच्छेन्न गच्छेत् । किं विश्वासं । त्र्यधु तिर्यधु पथाऽपि-
 ष्वपि । किमितिष्ठेत् ? गुप्तु अनिष्टादेन परिचितंश्चपि विश्वासं गच्छेत् ।
 यत्स्नेहामविशेषो भवति जनानामहितोऽगुणमिति । तथा च अत्र-
 भेदः—

सिद्धो व्याकरणस्य कर्तुं दृष्टम् प्राप्तान् प्रियान् पार्थिवान् ।

मीमांसादृष्टगुणमभाध तदस्या दृष्टी गुणिर्जमिनि ।

उभोक्तानिनिधि अधान मकगं पदात्तदे पिगर्भं

आह्वानादृतध्वनयामतिरुपां चोऽध्वनितरुधां गुणिः ॥ १ ॥

अथ मत्तवाणारोहेण यद्वयति तदाह—

मत्तवाणारोहिणो जीवितव्यं गन्देहो निधितथापायः ॥ ४८ ॥

टीका—मत्तवाणं मत्तवतिनि य आनेहण गुणे तस्य गन्देह-
 रोहिणो भवति यदि जीवति तत्पुनर्निधितोऽप्यायः मत्तवतो व्याप-
 रति । तथा च गीतम् —

यो मोहा-मत्तनागेर्द्धं वरमायेति बुभुक्षति ।

तस्य जीवितनाशः कदाह्वनितरुधु निधितः ॥ १ ॥

अथा इति ह्यविवक्षितः । तदाह—

अत्यर्थं हयगिर्नोहो कृमिभक्षमापाय न तिर्यधु ॥ ४९ ॥

तथा च गीतम्—

अत्यर्थं कृमिभक्षमापाय न तिर्यधु ॥ १ ॥

आह्वनितरुधु निधितः कदाह्वनितरुधु निधितः ॥ १ ॥

अथ अत्यर्थं हयगिर्नोहो कृमिभक्षमापाय न तिर्यधु ॥ १ ॥

तथा च गीतम्—

अथः शस्त्रं शस्त्रं धीमा याणी नरश्च नारी च ।

पुरुषविशेषं लक्ष्म्या भवन्ति योग्या अयोग्याश्च ॥ १ ॥

अथ कार्याधिना पुरुषेण यत्कर्तव्यं तदाह—

मुचिरस्त्रायिनं कार्यार्थी वा साधूपचरेत् ॥ ६० ॥

टीका—यः पुरुषः कार्यार्थी भवति स उपचरेत्सेवेत । क ? मुचिरस्त्रा-
यिने पुरुषे यस्य कदाचिदनरास्थितिर्न भवति । यथमुपचरेत् साधु
यथा भवत्येवं । तथा यशोऽधी यो वा भवति स साधु उपचरेत् ।
तथा च शुक्रः—

कार्यार्थी वा यशोर्धी वा साधु संसेवयेत्स्थिरं ।

सर्वोत्तमना ततः सिद्धिः सर्वदा यत्प्रजायते ॥ १ ॥

अथ स्थितैः सह पुरुषेण यत्कर्तव्यं तदाह—

स्थितैः महार्थोपचारेण व्यवहारं न कुर्यात् ॥ ६१ ॥

टीका—न कुर्यात् न विदधीत । क ? व्यवहारं । कथं ? सार्द्धं सह ।
कैः ? स्थितैः प्रमाणपुरुषैः । केन कृत्वा व्यवहारो न कार्यः ? अर्थोपचा-
रेण । तथा च शुक्रः

महद्भिः सह नो कुर्याद्व्यवहारं सुदुर्धराः ।

भक्तस्य गोचरं तस्य न स्वात्मप्राप्त्या महान् स्वयः ॥ १ ॥

अथ सत्पुरुषाणां सेवया यत्प्रजायते तदाह—

सत्पुरुषपुरश्चरितया शुभमशुभ वा कुर्यतो नास्त्यपरादः
प्राणव्यापादो वा ॥ ६२ ॥

टीका—सत्पुरुषाणां पुरश्चरितया सेवया निहितया शुभमशुभं वा
कुर्यतो पुरुषस्य नापरादो भवन्ति तेन भाषाभ्याम् । तथा प्राणव्यापाद
प्राणनाशः तस्यासत्पुरुषा सेवनीया । तथा च हार्त्त —

महापुरुषसेवापामराधेऽपि नास्ति ।

नापरादो भवेदुत्तं न च प्राणव्यपस्तथा ॥ १ ॥

गीता—१९

• • •
• • •

•

टीका—यो नरसेरको भवति नूतनभूयो भवति स को नामासे
न भवति विनीतोऽपि नु सर्वो भवति प्रथमादितो स्वामिने स्वकर्मणा
रक्षणं पथद्विकारे कोनि तन्मात्रमेव विदितं न गच्छेत् । तथा
प १०३ अदेव —

अभिनवमेव कश्चिन्मै, प्राप्नुणकोर्कश्चिन्मैनीकश्चित् ।

भुवनेनयननिकर्षित कश्चिद्व्यभिक्तो नास्ति ॥ १ ॥

अथ यः प्रोक्तः कोनि तन्मात्रमाह—

यथाप्रतिज्ञं को नामाव निराहः ॥ २० ॥

टीका—असाधनं कश्चित् । असाधनं यथा भवति भवति
नमो नमो । नमो । अति नमो । अति नमो । अति नमो । अति नमो ।
नमो । अति नमो । अति नमो । अति नमो । अति नमो ।

प्रतिज्ञा यः कश्चित् । अति नमो । अति नमो ।

नमो । अति नमो । अति नमो । अति नमो । अति नमो ।

अति नमो । अति नमो । अति नमो । अति नमो ।

अप्रतिज्ञं भवति महांतीत्यादि ॥ २१ ॥

टीका—अप्रतिज्ञं भवति महांतीत्यादि । अति नमो । अति नमो ।
अति नमो । अति नमो । अति नमो । अति नमो ।

अति नमो ।

अति नमो । अति नमो । अति नमो ।

अति नमो । अति नमो । अति नमो । अति नमो ।

...

अति नमो । अति नमो । अति नमो । अति नमो ।

अति नमो ।

अति नमो ।

अति नमो ।

मातृक्रिया कुर्वन्तधो ब्रूति । तस्मात् पुरुषेण वार्त्ताधिना नीरराचणे
शक्तिर्न कार्या । तथा च शुकः—

स्वकार्येतिह्ये पुंभिर्नोद्यमागोऽपि संप्रत्ये ।

कूपस्य जनने यद्वत् पुरुषेण जलाधिना ॥ १ ॥

अथ स्वामिना परित्यक्तस्य भेषकाय येन निर्हृतिर्भवति तदाह —

स्वामिनोपहतस्य तदाराधनमेव निर्हृतिहेतु जनन्या कृतवि-
प्रियस्य हि बालस्य जनन्येव भवति जीवितव्याकरणं ॥ ७३ ॥

टीका—स्वामिनोपहतस्य निःसारितस्य भूयस्य—सदामिन्मेव
नमेदेनमेव निर्हृतिहेतु जीवितव्याकरण नायत् । अर्थः जनन्या
नाम विहितविप्रियस्य कृतायमप्यस्य बाधस्य सैव माता जीवितव्या-
करणे । तस्माद्भूयेन निःसारितेन, न तदानीं व्याप्य, किं नाराजीप-
ति । तथा च शुकः—

निःसारितस्य भूम्यस्य स्वामिनिर्हृतिकारणं ।

यथा कुपितया माया बाधस्यापि च वा माया ॥ १ ॥

ग्रन्थकर्तुः प्रशस्तिः ।

इति सकलतार्किकचक्रचूडामण्युद्दिष्टतत्त्ववर्णनस्य, पंचपंचाशन्महायादिविजयोपार्जितकीर्तिमन्त्राकिनीपवित्रितत्रिभुवनस्य, परमतपश्चरणरत्नोद्भूतः धीमन्नेमिदेवभगवतः प्रियशिष्येण पार्श्वान्द्रकलाललधीमन्मेदन्द्रदेवभट्टारकानुजेन, स्याद्वाद्याचलसिद्धतार्किकचक्रयतिंयादीभपंचाननवाक्कलोलपयोनिधिकायिकुलराजप्रभूतिप्रशस्तिप्रशस्तालङ्कारेण, षण्णवतिप्रकरणयुक्तचिन्तामणिस्त्रयमहेन्द्रमातमिसंजल्यपशोधरमहागजचरितमहाशास्त्रवेधसा धीरसोमदेवसूराणाविरचेयतं (नीतियाक्यामृतं) समाममिति ।

अल्पेऽनुग्रहधीः समे मुज्जता मान्ये महानादरः

सिद्धान्तोऽयमुदात्तान्नवगस्ति श्रीमोमदेवे मयि ।

यः स्पर्धन्त तथापि दर्पेदृढताप्रौढिप्रगाढाग्रद्व-

स्तस्याग्नितर्पणं तपसिर्मन्त्राच्छ्रुतान्तायने ॥ १ ॥

मरुत्तममयतं न नाकुलक्षेत्रि वारी

न भवमि ममयोक्तौ हंममिद्वान्तरेः ।

न च वननविलासे पृथ्वपादोऽपि तथं

यदपि कथमिदानीं गोमदेयेन गाथम् ॥ २ ॥

दृजनेऽहमरुटो गकुटाग्नते हे रु हे न विचारणमातः ।

मौमदेव इव गजनि मृगिरादिमनोरथभूरिः ॥ ३ ॥

दशान्यसंधकृमिः । ममिदनादे

सार्धद्वयोऽल्परूपमिति ।

श्रीगोमदेस्वुनिवे रचनाग्याडे

सर्गोद्धारोऽपि पुनरपि न भवति ॥ ५ ॥

[illegible]

64.434.2/2 404.

पुस्तकदातुः प्रशस्तिः ।

जिनं नवा गिरं स्मृत्या गुणं नयानुपागतः
 प्रशस्तिं पुस्तकस्याहं दायकस्यास्य कीर्तये ॥ १ ॥
 अथ संवत्सरेऽस्मिन् विक्रमादित्यराज्यात् संवत् १५४१ वर्षे मार्गश्र-
 दि ५ शुभदिने श्रीचन्द्रप्रभचैत्याल्यविराजमाने श्रीहिमरंपरोजानिधा-
 नपत्ने मुलतानगहलोलसाहिराज्यप्रभुमाने श्रीमूलसंवे नन्द्याम्नावे
 सारस्वतगच्छे बलान्कारगच्छे (गणे) श्रीमुन्दकुन्दाचार्यवरो परवादि-
 वादकुम्भकुम्भस्वल्किदारकभट्टारकश्रीपद्मनन्दिदेवाः । तपस्विवल्कि-
 वनविक्रमसर्नैकचन्द्रभट्टारकश्रीशुभचन्द्रदेवाः । तपस्विवल्कि-
 कचक्रवर्तिविहितपदकमन्त्रसेवाभट्टारकश्रीजिनचन्द्रदेवाः । तपस्विवल्कि-
 धाविशतिमूलगुणस्तनरायनमन्त्रसेवाभट्टारकश्रीजिनचन्द्रदेवाः । तपस्विवल्कि-
 निष्प्रारणमूर्तिमुनिश्रीमिडवर्ति, भट्टारकश्रीजिनचन्द्रान्तेरामी पंडित-
 श्रीमेहास्वः । एतदाभ्यावे क्षेमपात्नीमनोरे गहलोलसागन्धवे मुनाम
 पुवास्तन्ये जिनशासनप्रभायकारमश्रावणसेवार्त्तक इनामा, तपनी
 शोडशाष्टिनी माधवी गजानाम्ना, तपोध्ववार पुत्रा अनेक-
 तीर्थयात्रादिमहामहोसम्पन्नपुत्रा जहादित्यचरामोचरणप्रदि-इतेरनेक-
 चक्षुशीरा से० इरा - से० दीमा - से० वज्रमा से० मुरपतिनाम-
 धेया । तन्मध्ये संघर्षाश्रमापनाया विहितानेकानिचक्रतपोविना-
 नादिसद्धमंवर्या साधने वन श्री तपसा देवदत्तश्रीपद्मचन्द्रदेवा-
 मानहो श्रीहस्तिनापुरतर्पणदा, देवावम बलान्कारपद्मचन्द्रदेवा से०

भीवा—स० वस्तुको । सचपतिभीवाख्यजाया देवगुरुशासनरिसन्त्र-
 तन्मण्डाया साध्वी भित्तिसिरि इति प्रसिद्धिः । तत्तन्दनो यथार्थनाना
 गुरुदाम , तत्कल्प्य गीतादनेकगुणपात्रं गुणभिरिनामक, तमुपो
 चिरंजीविनी रणमल्लज्जमञ्जी, सं० वस्तुमेहनी विनयादिगुणाभ्युतज्ञहिनी
 वतुमिदि इति ग्वाटि, तत्तनुजो विनचरणकमन्त्रनेकगुण स० राख-
 दासाङ्ग तज्जनी गीतक्षान्तिगान्तिविनयादिगुणनाथ्यक्षे सरस्वती-
 रूप्या समभवतीमज्ञसा । एतेषा मध्ये माध्वी या कमलश्रीरुपा निवसु
 सं०—भीरा—वस्तु कयोऽयायोपात्तविनेनेद मामनीनिग्रीकाभुस्तके
 टिमसाधित । पुन पादेनर्थाभिप्राय्याय यन्तान भावनया प्रदत्त निजज्ञा-
 नादरणकमन्त्रयोय ॥ १ ॥

आनवान आनवानेन निभयोऽभयदानत ।

अश्वदानान गुरुती नित्य नित्याया भयजात्रयेन ॥ १ ॥

तेन्यादृश ज्ञानादृशज्ञान दिविमयवन्तान ।

पुष्टस्तमान वृद्धादय वृद्धा वृष्टत ॥ १ ॥ ॥ ॥

नीतियाक्यामृत-टीकागतोद्धरण-पद्यानां वर्णानुक्रमणिका ।



अङ्कानामा ।	अङ्कानामा ।
पृष्ठम्	पृष्ठम्
११५	११
४९	५
४९	११४
१११	१
११८	५२
७१	१
५०	५१
१११	११४
११	११०
११५	१०९
११५	९
५	५४
१८७	४१
५१	५१
४९	१०१
४९	११५
११५	११
११०	१०९
७१	११९
५०	११०
११०	११
११	१०
१११	१
५१	१

	पृष्ठम्		पृष्ठम्
यस्य बुद्धिर्बलं तस्य	३२२	प्रोक्तः शिक्षाशतेनापि	२३८
या नारी वशगा पत्युः	२३४	महानपि विदेशस्यः	२५९
यायिना संसर्गस्तु	३६४	यर्थकशाखरुक्षस्य	१३०
यावन्मात्रं भवेद्भोज्यं	५०	येषां पिता बहेदत्र	२४८
यो राजा निग्रहं कुर्यात्	७८	स्वच्छन्दा मंत्रिणो नून	१२८
लक्ष्मीर्विपादकारुण्यस्तेदमंत्रणकर्मसु	६	आगमः ।	
....लौल्यमाधितः	२७९	अकारेण भवेद्विष्णु	४
वसन्तकाले सम्प्राप्ते	३८३	प्यायेद्दाम्भुजं शातं	३
विप्राणामावसर्गेषु	५२	यो ब्रह्मा स स्वर्गं विष्णु	४
शरीरार्थं न तृष्णा च	१०१	ऋषिपुत्रकः ।	
सन्मानपूर्वको लाभः	७२	अतिक्रोधो महीपालः	१४७
स बाह्यान्तरं शौचं	५२	अमर्त्यंकारसयुक्तो	२९९
सभायां यो वनं गच्छेत्	५०	आत्मा मनो मरुत्स्वं	६७
सम्बन्धः सम्भव प्रोक्ता	५	कायक्रेणो भवेद्यत्तु	२८३
सर्वेन्द्रियममाहारो	५२	नाथोन च यष्टं च	१४७
सदोपनीतः सुतया	३९५	नामे परिग्रहो यस्य	४६
सा तासां सम्पदं सज्ञा	६	परदाररतो योऽत्र	३७
सेवनं विपयाणां	७२	पिता पुत्रमुत्तं हृष्टा	४६
सोमवंशोद्भव शुभ्रं	६	ब्रह्मचारी न वेद य	४६
सोमस्तासां ददौ शौचं	२१	यो विद्या वेत्ति नो राजा	६१
सचिनमृतुषु नैव भुज्यते	२७	सुमार्जितम्य भवस्य	१२५
स्त्रिय पवित्रमनुलं	२१	स्वकृतेषु विलम्बन्ते	३५
स्त्रीमुद्रा मरुत्भवजस्य परमा	२१	अंगिरा ।	
अग्निः ।		काचो मणिमणि काचो	२१५
अन्यायोपार्जितं विन	३४२	विश्वामित्राणामन्य	३६६
उद्धारकप्रदातृणां	३८८	कविपुत्रः ।	
दुर्गाचारममाय य	१०५	ताम्रान्वारि कुर्यात्	३१
परस्वहरेण यत्तु	६०	कामन्दकः ।	
परमानी वा	२७०	निगन्त मय्येकानां	२७

	पृष्ठम्		पृष्ठम्
तथास्मरता वा च	२४८	धर्मद्वयं दण्डप्राप्ता	१८५
न्ययश्चिन्तयानानो	२५१	नयो बान्धनयो वापि	११२
तदपि वा यो भोगो	२४८	नाकान्धवा गृह्यते दण्डः	२६६
येषु सिद्धयमानेषु	२६१	नाहमन्देत भूराजं	४०३
रक्षेत्रे तु यो बीजं	२४९	परदोषाच्च दण्डान्ति	२८१
तुङ्गमोऽपि चेन्मायः	२४७	परस्व करणीये यथिनं	७६
तस्य बुद्धिर्भवेत्काचित्	२५९	पराभूतान्यगवादि	२४३
ः घोडे पारयेरेहे	२६७	पितृनो निदकधेव	१९४
		पितृनं दानमापुर्वं	२१९
भविष्यमपि कर्तव्यं	२४७	प्रधानी पीडनादितं	१९४
अपराधिषु यो दण्डः	१०९	मातापि निहति याति	११५
अभियुञ्जीत चेन्मर्यः	१०१	मुलका दानं तपो वाच	१७५
अथार्थप्रवचनः	२९६	मंत्रभिरुपाप्रवं वाच्यं	१४९
अविद्यमाने यो दण्डाद	२८५	मंत्रभेदाच्च भूराज	११९
आक्रममरणान्तं च	२९१	यदि दीनबन्धः दण्डः	१११
आलोकरहितं मेत्रं	११४	यदापी सन्धिमादातुं	११०
कलमो मित्रत्वमस्तु	११५	यथा प्रियेण ह्येव	९१
उदुम्बरकलानी च	९१	पुङ्कं पुङ्कपाथकं पुङ्कं	१४५
उपस्थिते रिपी मंत्री	२४४	विश्वस्तोमिषवर्गैश्च	९१
चतुष्पादे च तन्मात्रे	२१७	इदं तु परिहातव्यं	१८
चतुः सप्तति नो बोद्धव्यं	२१७	यथा तद्विनीतं	१०५
हविं देवा विदेष्टं च	२१७	यथाविद्याधर्यं वे च	१६९
दण्डागारव विताव	२११	रक्षणात् वाच्यं मुक्तं	१६६
जवनीजवन्धवेती	२४५	सन्ध्यावाह्निपाथक	७६
जवनी वाक्यं यद्विद्वत्	१११	सर्वेषां नीच जात्यानां	९२
गारव पानमद्य च पुण्यागतव	१११	सर्वेषां हि हृदयं	१११
पुङ्कं पुङ्कं पुङ्कं	१११	यद्वत्तं प्रकृतं दण्ड	१११
पर्वे आम्बे कनक वा	१०९	पुङ्कं वे यथा वा	९१
		कीर्तयन्तु मातृभ्यः	९१

आश्रममरणान्ते यः
 आत्मानं मन्दते भई
 नयकुंमपि प्राप्त
 वरदातो भवेद्योऽत्र
 एकामहोऽत्र मूर्खाणां
 एवं यः कुरुते राज्ञा
 कुत्रबादेस्वरूपार्थेयो
 कुत्रानोऽपि पुनीनोऽत्र
 गुणहीनय यो राज्ञा
 श्रुतपुत्रदारोत्तर
 आरते वाच्यता यस्य
 न विप्रहं स्वयं कुषांत
 न ह्यनोति विनुवांश्च
 नार्मिष मन्दिरे यस्य
 नीहमानेऽत्र यो नष्टा
 नोद्यमेन विना निदि
 परस्य धर्ममेहं च
 पाशाणपटितस्वात्र
 भयया सुखेभ्यमानस्य
 भयसर्द्ध तथा प्रस्त
 भयभीतेषु महानं
 भोजन यस्य नो याति
 मुखं न वीक्षते भतां
 मप्रस्थाने न कर्तव्या
 यावमुदो क्रियास्त्रेह
 यदि स्याच्छक्तिमुक्तो
 यद्यप्येकतरं कुर्ये
 यद्यपि स्यात्तु सिंहः
 न क्रियते पारं

श्रुम्		श्रुम्
२६५	वपस्तु क्रियते यत्र	३३३
४००	वेद्याः कामं प्रसेभ्यादय	३३०
१४	सर्वे योजित कार्ये	१२१
२६९	सपत्नी वा समानस्य	२२८
१०८	समानो पक्षपातेन	३३९
१३०	सत्पानो परिपक्वनां	१९४
४१	मुन्दरागुन्दरं लोके	१४७
२०५	मुदगां कन्यका यस्तु	३७३
१३६	मुमुक्षुमेवपि कृत्येणु	१५०
३३६	संवादेषु च सवसे	२९८
२७८	स्वदेशजेषु भृत्येषु	२०१
३३६	स्वयं दत्त च यद्दानं	३८१
३७	स्वयं नातोऽप्येतां	२१४
२७०		ज्योतिषशास्त्रं ।
३५०	शाम्बे महबलशालिनि	६
३१६		दशः ।
१८८	धर्माधर्मौ कृतं पूर्व	२६
१८०		दन्तिलः ।
२९४	अल्पविलस्य यः वामः	२८६
३६४	यदिच्छा पूरिता नैव	२८७
२६८		देवलः ।
३९८	अदित्वमभिहोतृत्वं	५०
३७७	धीमन्निनांशुम वर्य	३०
१३८	प्रतिग्रहनिहतिश्च	५०
२१६	सकलोऽत्रयवाप्येको	५०
३५०		धन्यवन्तरि ।
१२९	भ्याधिप्रस्तस्य यद्वर्च	
३६१		
२८९	अदरा ये कृता पूर्व	

	पृष्ठम्	पृष्ठम्	पृष्ठम्
रक्षते बन्धमानसु	२१६	क्षत्रियेष बृगा पात्साः	८३
रक्षोर्निर्मादितं पूर्वं	२११	बर्णप्रदस्य शुभ्रपा	८४
एतत्वं च दुर्बलो वापि	२१२	बह्मभगं योऽत्र दृक्कति	८८
वरं पौत्रादरे वासवं	२१३		पालाकिः।
वरं वने वरं मृत्युः	२२८	अष्टायुधो भवेदन्ती	२०७
वरं स्वापापि च भेषा	२४८		पुरुः
वर्धनीयोऽपि दायादः	२४०	अन्यत्र यत्कृतं पापं	२९०
विज्ञाते मेवञ्च ददुर्	२१२		भगवत्पादाः।
व्याघ्रं दानि शरा दस्य	२३८	तत्त्वत्यागो ब्रह्मविदो	२८४
व्याघ्रः सेवति काननं	२६२	मूलंस्व तु सुवैराग्यं	२८४
घवुषापि हि यत्प्रोक्तं	२१४		भागुतिः।
घशोर्वा वादिनो वापि	२०८	अहृत्य (हृत्य) रूपं च	१२३
विज्ञाहीना गत्रा दस्य	३०७	अनादरो न कर्तव्यः	२८२
जिदिकं पानिग्रह्यं	४०३	अपराधिषु यः क्रुपां	३१९
जिह्वो मुष्टये यदुत्	७१	अल्पेनापि प्रत्ययेन	२६३
सत्कारपूर्वो यो लाभः	३३६	अविवायात्मनः शक्ति	४०
साधयित्वा परे युद्धे	१२२	भामिच्छिर् प्रसक्त	१५१
सावधानादत्र ये मयं	१६	उपकारतो यस्तु	२८३
स्वदर्शनस्य नाहात्म्यं	३१०	उपायाचितदानेन	३६१
स्वयमेव कुरुष्व यत्	३४९	एक क्रुपां सन्देशं	३०९
स्वामिनं पुरतः कृत्वा	२९३	कारांसे दहमाने तु	४५
स्वामिन्नीवातङ्गमूनी	१५५	कुत पाति समुत्थो यः	२०३
स्वामिस्थानं च यो मूर्खो		कोशहीनं दूष भूत्वा	३२६
	नाप्ययजः।	गुणयुक्तोऽपि भूराडो	५०
	२१३	गुणादपि पुरुषैः कृत्य	२८
न तथा पुराणवर्ध.	नार्तिः।	बभूवे सत्पा ह्येवा	१४
	१४४	दण्डाहतो यथाप्राप्तिः	
तावत्परस्य भेत्तव्यं	१४४	दयो सत्यमनीयं च	
युद्धं परियजेदीमान्			

प्रयोजनार्थमानीतो	१५९	मंत्रिणी सावधानानी	१२४
महप्रमादश्च तार्थ	२८२	यतीनी च दास्यत्वं	१९८
सुख वा यदि वा नष्ट	२६७	यत्र शार्ङ्गपिच्छं देवं	१००
योऽन्तेरासी पितृपुत्रद्वय	१९६	यो दृष्टिभिर्यः सारो	१४०
यो राजा भविषी वाच्यं	१२४	राजपुत्र समादिष्ट	२४६
यः सैन्यं बोधते नैव	२१३	वर्णाधमसमापेता	४३
यत्वं युक्तितो यच्च	३७४	वर्तते योऽरिभिश्चाभ्या	४२
विनायुधं च ज्ञायेत्	३१५	मदा तु शान्तिवित्तस्य	७७
वृत्तिं गृह्णाति यः स्नेह	२१७	स्वभावो नान्यथा कर्तुं	२३८
विशेषदर्शिते लोके	२१३		मनुः ।
समाप्ते वैरिणो ये च	३६४	आप स्वभावतो मेध्या	२८९
हस्तिना गह संघान्न	३६२	दायादा पिण्डाधाया	३९५
	भाष्यः ।	न पुत्र पितरं द्वेष्टि	१८५
खड्गो वदति तथेन	२६३	यथा धातु प्रकर्तव्य	१८७
	भृगु — भार्गव ।	वर्णाधमाणा यो धर्म	८८
अष्टोत्तिष्ठस्य सोमस्य	५३	महदेवमयो राजा	३१५
अह्मरा परकार्यं च	१४८		माघः ।
अथर्मापि भवेत्माक्षो	३००	गामवादा मनीषस्य	३५५
अनुयन्तु सता वत्सं	३८		मार्कण्डेयः ।
अपि चेत्येन्द्रिको ईश	१०	चिरछेद भगवान् कुन्द	३
अरक्षितं तिष्ठति देवदक्षित	२५		यमः ।
आत्ममाध्य तु यस्त्वार्यं	१२१	अनुत्तानस्य नो लम्बा	३०९
उन्मत्त यथा नाम	८८		यान्यल्लक्ष्यः ।
कार्यकाले तु संप्राप्ते	२७५	आत्मा सर्वस्य सोमस्य	६९
माहृत्य विपते श्रीणाम्	२७७	गुरुभार्या च य परवेत्	१६६
पुरस्ताद्गिरिलाभेऽपि	३३७		राजगुरुः ।
बुद्ध्याधिकस्तु यदप्यप्रो	१६४	परमज्ञेयो भूतानो	३४९
अपत्याने विषाद यः	२६१		राजपुत्रः ।
भोजनारिषु सर्वेषु	२३१	आलस्योपहतान् योऽय	१५०

	पृष्ठम्		पृष्ठम्
ईपत्कलहकौटिल्यं	३८८	रक्षिते भूमिनाथे तु	२२०
कुमारो यस्य भूर्धः स्यात्	१९१	राजा शब्दोऽत्र कोशस्य	२०४
नान्यचिन्ता भजेप्रारी	३८८	लीलायापि क्षितौ वृषः	३३१
प्रसादादया भवेद्भूयः	२७१	विश्वासघातको यः स्यात्	३६६
मित्रत्वे वर्तमान यः	१५०	सरसः सलिङ्गे नष्टे	३५४
मित्रः संस्पर्धमानानां	१२८	मुलभाः पापरक्तस्य	२०
यद्भूम्यं गुरुगौरवस्य मुद्गदो	२७८	स्वामिनाधिष्ठितो भूयः	१२२
यदा द्वादशवर्षा स्यान्	३७३	यराहमिहिरः।	
यः शास्त्रं जानमानोऽपि	१७	माङ्गन्यगिरिं भुत्वा	२८६
राज्ञां छिद्राणि सर्वाणि	१५७	वर्मः।	
लिखिताद्वाचिकं नैव	२९२	अनवद्या सदा तावन्न	७७
वह्नमस्य न यो भूयो	२९२	अरण्यरुदितं तत्स्यात्	१५६
वेश्यादर्शनतद्धित	२३७	अर्थानुबन्धमार्गेण	२७
सर्वेन्द्रियानुरागः स्यान्	३९	आलापः साधुलोकानां	१४५
	रैभ्यः।।	उपार्जयति यो नित्यं	१८
अत एव हि विज्ञेयो	२४५	कार्यदोषान् विचिन्वन्तो	१४३
अत्यर्थं कुरुते यस्तु	३९७	कुविद्या वा मुविद्या वा	६४
इन्द्रियाणि निजान् प्राप्य	६९	गुरुत्वं च लघुत्वं च	९७
कामार्थसहितो धर्मो	२४	प्रियमाणमपि प्रायः	१३७
दरिद्रं कुरुते वाञ्छा	४०४	तावच्चतुर्विरलोभः स्यात्	१३९
दानस्नेहो निजार्थत्वं	२१८	तावन्न जायते लोभो	१४१
दुर्मिक्षाद्वेऽपि तु स्थेऽपि	३९२	दत्तं पात्रेऽत्र यरानं	१३
न कार्यं वो नित्र वेति	१३६	धर्मार्थकामपूर्वैश्च	१०१
निर्धनस्य मनुष्यस्य	३९३	नीतिशास्त्राभ्यधीते	३६
पुत्रो वा बान्धवा वापि	२४१	परद्रव्ये कलत्रे च	१४९
बलात्कारेण या भुक्ति	२९९	पितृदेवमनुष्याणां	४८
बहुधं मन्त्रिणां राजा	१२८	प्रयासयानमदातानां	१४
बहिः स्याच्छातना बहिः	११२	बहुदृष्टानि कुर्यानि	१४३
यो वेश्या बन्धकं प्राप्य	२९९	भरहीनी यथा नागो	१३०

श्रुतम्	श्रुतम्
यदा दद्यान्मरिचैः तक्ष्मीः	११२ उदोगिने पुष्टयति हमुर्वति तक्ष्मीः ११२
कारणान् मेवते म रैः	१४ कथंविहपहादरव ११३
यो न दधति पात्रेभ्यः	१५ किं तदा विवते तक्ष्मा ११
यो दद्यान् विन्मदेभ्यः	४३ कोऽयं पुष्टेन जातेन १५६
विदेभ्यः पार्ष्णिना पयोः	४२ गमाभपूर्वकं दानं ७
पुष्यात्पार्ष्णिना यः पुष्यात्	१५४ गुणाभावेह दीर्घम्यात् ११४
वेदानधीभ्यः यः पुष्यात्	४४ गोष्ठिकमेभि युक्तं १२
पुष्यामिदं च वसुध्या	७५ गृहमाग्निजातेन २७
पेदाति बहुविधानि	१० अगुरः पुष्टता पूर्व १२४
पाह्नुष्यविन्मनं कर्म	४३ जातिरुत्तमभान्तेः १०६
घन्नानाय न कामाय	४५ तेजसा यत्रपुष्करव १५३
यमृद्व्यापि भार्गव	७९ दानं भोगो नापस्त्रिपयो ३१
गुगुणादयोऽपि यो मयी	११३ द्विजानेऽभीष्टकामिर्गर्व ११
सेवनायन धर्मव	१५ धूमं पयोधरपर्वं कथमप्यवार्थ २२
आस्था त्वन्यथेयेहेवान्	१० न तदा यदयो दाना २८८
रुक्मदीनविशोधन	८६ नामून न विप विविदेका १०३
यत्प्रभेदः ।	
अतिपरिचयादवज्ञा	निक्षेपे गृहपतिने धेयो १२
अन्यापि जायते शास्त्रा	नि गृहो नाधिकारा स्थान १३८
अभिनवसेवकविनयै	६० वप्यानां गाधिकं पण्य १२
अथ दानं दानं	४०४ पणापुणं दाने परिचितं— १२
अग्न्यां मयदोषेन	४०१ प्रभूतमपि चोदितं २२३
अग्न्यग्न्यात्पराग्न्यां	२० मानेन विचित्रमृग्येन १८
आकारैरित्यनैर्मन्या	८० यस्यास्ति विप न नर कुलीन २८८
आत्मवितेन यो वेद्या	११७ यादृशाणां गणावयव ८९
इयमपरा काश्चिद्व्यत्ये	२३७ य परं कबलो याति २६६
उत्तमानां प्रसंगेन	२८१ य सेवेवने वामी ३७
उद्यमेन हि सिद्धयन्ति	१०७ शिष्टात्मजो विश्वधोऽपि ५८
उद्यमेन हि सिद्धयन्ति	१९ समृद्धिवाले संग्रामे ११०
उद्यमेन हि सिद्धयन्ति	३१३ मार्गैव यत्र गिद्धिस्तथ ३५१

	पृष्ठम्		पृष्ठम्
सिद्धो व्याकरणस्य कनुरहरण	१९७	तस्योचितं य.... यत्कृतं	१९०
स्थानेष्वेव नियोज्यन्ते	१९०	त्यजेदेहं कुलस्यार्थे	७९
त्रिवोऽतिवृत्ता गुणा	१९१	न तथा जायते स्नेहः	१४०
हीनो नृपोऽलं महते नृपाय	१९१	पापानां निघहेरात्रा	७९
यदिष्टः ।		मनसाभ्यमानं यो राजपुत्रः	२४६
एको हि धेभ्यमानस्तु	१९	यथा गुरुं तथा पुत्रं	१९६
कावे पात्रे तथा तोषे	१९७	यथा राज्ञस्य धाम्नं	१९१
कोदाद्वि. सदा कार्या	१०१	यस्य कृत्वेन कृत्स्नेन	१९१
क्षयो लोभो विरागश्च	१५७	मुक्तया विविनय सर्वंगो	१०१
चित्रमेतद्वि मूर्गाणां	१९	विनयः साधुमिरिणो	१४६
न दृष्टिकतमपि स्वल्पं	१११	शक्तिमावपि यः कृपां	११६
नमस्कारे विना शिष्यो	१६१	शत्रुपक्षभक्षो लोकाः	११६
विनृमानृगमादेशं	१६५	लोको गृह्णत समायातं	१११
पौरुषमाश्रित्य लोकाः	११६	स्वलोनापि न गन्तव्यं	११०
मनुष्यत्वं ममापाद्य	१८	हिर्न वाप्यथकानिष्टं	१९६
मत्स्यां मूषानना लोकाः	५९	पद्ममीकिः ।	
गुप्तानां पुरतः मन्त्रे	१६९	गुप्तना धर्मवक्तातो	१०
मय्यित्या महानेन	११९	शिशुरः ।	
राक्षसहृत्तया नव	१२१	आश्रितान् पीडयित्वा य	१९
आमा दुष्टरत्नं कर्मिण	१३१	एकाको कुरुते पार्थ	९१
स्वभ्यां च यमसाध य	१९	महं क्षत्रेणा (१) क्षिति	११०
स्वभ्यां च सुत नृपय	१९०	दुष्टमाकलय चान्वेन	११९
यानुशायणः ।		पुत्रोत्पत्ति न यादृभ्यं	१९१
अनेन कर्मणा वा	१८०	त ही-दयस्य मन्त्रेण	१९
अनेन च मन्त्रे वा	१९०	नम य पुत्रं गन्तव्यं	१९१
अनेन च दृष्टं वा	६०	नृप नृप य क्षत्रिण	१९१
अनेन च कर्मणा वा	११९	नृप नृप य क्षत्रिण	१२०
अनेन च नृपे वा	१९९	विनिर्दिष्टः ।	
अनेन च नृपे वा	१८०	हिन्दुस्य मन्त्रे वा	१८

वित्वादर्थरत्नाशा

वृद्धस्पतिः—गुरुः ।

विभक्त्यर्मा ।

अचलं प्रोषतं योऽत्र
अग्निहोत्रं यो वेदाः
अज्ञानं घनुषेभ्यं च
अदयो निब्रजधुभ्यो
अन्त्यजानां तु सर्वेषाम्
अन्धवर्तममेवैतत्
अपि नीचोऽपि गन्तव्यः
अपूर्वमपि यो दृष्ट्वा
अभियुक्तजनं यच्च
अराजकानि राष्ट्राणि
अविवेकं छरीरस्यो
असन्तमपि यो लौत्वात्
आत्मनो यदि दोषाः
आन्वीक्षिक्यात्मविज्ञानं
आपस्वच्छेऽत्र संप्राप्ती
उपयाचितसंपातैर्व
कहापोही तथा चिन्ता
एकस्मै दीयते सर्वं
एवाकी यो ब्रजेराजा
ऋजुः सर्वं च उभते
कन्या दत्त्वा पुनर्दद्यात्
याकिम्यापि न हृदि य
किं तस्य व्यवहारार्थं
किं वा गुप्ताः प्रकृत्य्या
कृत्वा यद्विधानं तु
कृत्वा क्षीउपरिस्थायं

४२१

१४१

१५१

७६

११५

५५

१०७

१११

१८५

१६८

१७०

५६

१२१

१०

७५

६१

१४६

१४७

६९

१९५

१४९

१०१

१७५

१०१

११०

११५

१७४

१८५

गर्भस्थानमपस्थाना
चीतादिकेभ्यो दृष्टेभ्यो
जलदुर्गवती भूमिः
तीर्थेषु योजिता अर्था
तृष्णानि भूमिरुदकं
दम्भ्य दम्भयति नो यः
दुग्धस्यामस्य सस्यशातं
दुर्बोधाधरणात् द्वारवा
देशाचाराप्रयाचारी
धनिनो धनितं यत्र
धर्मसंयुक्तमनघा
न जन्म मृत्पुना बाधो
न वेदया चिन्तयेत्पुंसां
न सहाभ्याविनः कुर्यात्
नारधिः कविद्वान्ये
निराश्रयप्रदेशे तु
नीचं कर्मणा मेह
नीतिशास्त्रविहीनो य
पतिप्रतापि या नारी
परदर्शनलेपं च
परभूमिं प्रविष्टो यः
पार्थिवो मृदुवाकवैर्यः
पितरौ समनिकम्ब
पितृपुंतामह पित
पुलिदानीं विवाहे च
प्रहास्यममोपं च
प्रत्यक्षेऽपि प्रियं कृते
प्रत्यक्षे प्रोक्षिता वैद्या
प्रभूता धनवो यस्य

४२१

१४१

१००

१५०

२९

१८५

१०५

१०६

८२

१९५

१७५

११

७९

१८५

१६४

१९९

११७

४००

५५

१२९

८१

१७१

१५१

१७५

१०

१०७

१४६

१७९

१०४

१९६

	पृष्ठम्		पृष्ठम्
प्रभो (भौ) दूरस्थितो (ते)	३७०	यो राजा मंथिपूर्वाणां	१०९
बन्धिना सह युद्धं यः	३९३	यः कुर्यादर्थमम्बन्धे	३०४
ब्रह्मो देवस्तर्धवापे	३७४	यः स्यात् सर्वगुणोपेतो	५८
भाविहृत्यस्य यो हेतुः	७५	यः स्यामो न स्वजेदूर्यं	३९५
मिन्दापयति यो राजा	२०१	राजकृत्यमनित्यं यत्	३९५
भूयते सेवका ये	१२७	हरतो न बन्धुवर्गाणां	३५६
भूधिरस्य न दानव्या	३३१	छेद्यमुहयो महीमातो	३९१
भूतगैरपि भूतयुक्तः	५३	लोभात्ममुत्तरणं	१३
मतिनाम नदी स्वाना	३९५	करीषायां विमानाणि	१५३
मयोदातिक्रमा यस्यो	१९५	गतपितामहा रोमाः	१०४
मर्द्दुः गद नो कुर्यात्	४०१	वाचा कथेन मनसा	७
मानसं च कर्तव्यं च	३०४	नदीकृमादिर्कं यच्च	३३५
मार्देनापि मिद्धमिन्	१८४	विमानायां स्वयं वाच	२९५
मूल्यं गारे गृहीत्वा च	३०५	विघातत्वं विराहत्वं	३८८
मसर्जिनं व कृपाते.	९५	विद्याया वयस्यपि	२९०
यथादेवाऽपि गरीयान्	२९५	विरोधताम्यसुखान	१९९
यथा नै हन हस्तेन	३३३	विप्रहर्तेन याव्यस्य	३५८
यथान्वः कृषिती हन्ता	१९८	युतिः काशो न कृत्यानी	२३९
यथा मार्गेन हन्तुः	३९१	युद्ध मध्येयतः पारसी	३३६
यत् स्वयमात्रकं कर्म	३५०	यद्यर्थं च युगम्बन्ध	२३१
यत् स्वयंदा ककः यथा	३३६	यद्यन्तं च विष्णुदण्डं	२९५
यद्दन्ता नानन्तं युगा	२३०	यथा कृत्यं हि लोकाणां	१८६
यन्मूर्ध्नि हस्तान	३३४	यानां च यो लोका	३०५
यस्य यथा वनं मेरी	१३८	यजुर्मेव वनपथा	३३१
यथा यथा युगात् ८४४	४४३	यथा यथा देवतादीनां	३०१
युद्धकं च युद्धं च	००	यथा यथा देवता तु	९
यथा यथा देवता च	५३	यथा यथा देवता च	३०१
यथा यथा देवता च	६०५	यथा यथा देवता च	५४
यथा यथा देवता च	१०३	यथा यथा देवता च	३९३

समेनापि न शोद्धस्य
 कर्म मानुषिभ्यो
 सर्वभाषारणा वेदसा
 हीमाधिपे बलादपे गु
 हीमाधिपो बलोपेतो
 मुखसाध्यं च यत्कार्यं
 मुखमुत्तमहि मूर्खो
 प्रती वाप प्रमत्ता वा
 सूक्ष्मालोकास्य नेत्रस्य
 सैन्यं विषं तथा गुप्ताः
 क्षीणा दैत्यं नरेन्द्रेण
 स्थानुक्तवचनदंष्ट्रं
 स्वापदा पक्षिहीनस्तु
 स्वाम्यादिष्टस्तु यो भूत्वो
 हिरण्यस्पर्शानं यच्च

अनिर्ज्ञेयं ये चार्था
 अतिभारो महान् मार्गः
 अवाधान् विकृतान् हीनान्
 अर्थस्य पुरुषो दासो
 अशुभमपि बोद्धव्यो
 अहिमकानि भूतानि
 जीयते ज्ञेयत्वेदाभ्या
 ज्ञेयं वप्रवनावास-
 न यथास्तनतो योगो
 न मंत्रा न तपो दानं
 नामुनि कुरुते छात्र्य
 नासत्यपुष्कं वचन
 पारङ्मन्यरिस्थापो

पृष्ठम्

३२३

१६०

११९

३५३

३३०

१२६

१२९

३७५

१३६

३३३

१२९

१०२

३२७

१४०

३०५

व्यासः ।

प्रसादो निष्कलो यत्त्व

मित्रं बन्धुबानां

यदि बहनि च दण्ड

यद्धनं विदवाणां च

यद्यदावरति धेष्ट

यथामिषं जले मास्यै-

यथोक्तनीतिनिपुणो

येन यच्च कृतं पूर्वं

येषां परविनाशाय

यो न राजा प्रजा मम्यक

विदेही साधुमतेन

सर्वस्य हि कृतार्थस्य

साम्रा यत्सिद्धिदं कृत्स्नं

सार्धं यत्र सिद्धिर्न

स्वकीयं कीर्तयेदमम

स्वल्पयितोऽपि यः स्वानो

शालिहोत्रम् ।

३४

९९

९९

२०४

९९

१

७४

१९६

६७

१११

३१७

३८७

४०

गाङ्गा साङ्गुमाता

तत्रिता स्वस्थताया

छिप्रं क्षिरो भववता

अमिश्रेण विरो क्षेत्रं

अविनिताधमस्ताति

अनाथयो भवेत्तु

अग्नेनाकृष्यमाणोऽग्र

अग्नाबन्धनानस्य

अन्यदेष्टां नृप लोके

अन्यानिमुखमागज

पृष्ठम्

७६

१४

१५

३४

५

१८

१००

३११

१०

८७

९९

३८९

३३२

३३९

३८७

३९१

३९१

३९०

३९०

३९०

३९०

३९०

३९०

३९०

३९०

३९०

३९०

३९०

३९०

३९०

३९०

	शृङ्ख		शृङ्ख
देशगर्भे नु यदुर्म	१९८	प्राणवित्तानिमानेषु	१६१
देशविरहितः सप्त	१९८	प्राणेषु चानिमानेषु	१६१
दान्यामपि हि तन्माभ्यां	१५९	प्रेक्षतामपि धातूनां	११०
भवेन त्रिपदभाषः	२०७	बलवत्प्रदायादा	१४१
धान्यस्य दारो व्यर्थो	१४५	बलवान् स्याददायं	१५९
न कृत्वातरं किञ्चित्	२७४	बहुयः स्वल्पवित्तैः	१११
न चिरं हृदिमाप्नोति	११४	बीजयौनौ तथाहारी	२४२
न दायादात्यरो वैरी	१५८	कुटिपूर्वं नु यत्कर्म	१११
न ह्यो न धृतो वापि	१९६	कुटिपौरुषगर्भेन	१४१
न निर्गमः प्रवेष्टन	१९९	कृत्वापुनश्चकृत्वातिभ्य-	१५१
न बाह्य पुद्गेन्द्राणां	१११	प्राप्त्यर्थं धृत्वा योऽर्थो	१९१
न भूमिर्न च मित्राणि	११५	भाग्यसंगत्सुलभानान्	९८
नमोस्तु राज्यवधाव	७	भाग्यवत्सो न यो वेद-	१११
न युद्धेन प्रशङ्क्यं	२००	भूम्यर्थं भूमिपं कार्यो	१४५
त्रियोगिर्न गमीरस्यं	१९१	भृत्यानां पोषणं हस्ते	११४
निष्पन्नं सतां मार्गं	११८	मनश्चेन्द्रियाणां च	७१
नि.सारतस्य भृत्यस्य	४०५	मन्त्राणां स्मृतयो यावत्	८१
नृपप्रमादो मन्त्रिर्न	११७	महापातकयुक्ताः स्युः	१६९
परदेष्टं गतो यः स्यात्	१७१	महामार्यं करो राजा	१०७
परदेष्टं गतं लोकं	१९१	मुख्यमंशेषु यो भारे	११५
परभूमिप्रतिष्ठानां	१७०	मन्त्रिणा वार्षिकेन्द्राणां	१९४
परिपन्थिषु यो राजा	७८	यत्र दृक्कन्ति दुल्कानि	९६
परोऽपि हितवान् बन्धुः	११४	यत्र नो जायते प्रीतिः	७१
पुद्गेष्टव यदाहुः स्वात्	१४८	यथा कुम्भित्रसेनेन	१०५
पर्यालोच्य विना युयान्	११५	यथा यादरीजे नया	१४६
पीडाणां राष्ट्रजातानां	१०६	यथात्र कुटिल काष्ठ	१०१
पीडाभ्याम्युगतापस्तु	५५	यथाकृदा गुणानुष्ठाः	१११
प्रायश्चित्तं यत्र भूयः स्यात्	१९७	यथादिर्मन्दरागि-	१५८
प्रवक्ष्यन्ति नरा यत्र	१०१	यदा स्याद्दीर्घवान् यत्र	१६०

	शृङ्ग		शृङ्ग
अधिप्रस्तस्य बुद्धिः	२६०	नोरोगः स परिहृतो	२६०
	श्रुतिः ।	परदातास्त्वजेयस्तु	३३
यया महाराजनं वासो	६८	परिणामं शुभं ज्ञात्वा	३२९
	मुन्दरस्तेनः ।	पापाणांऽपि च विबुधः	१०७
स्वभावेनोपदेशेन	१३५	पेश्म्ये निरतो लोको	३९९
	हारितः ।	मनसश्चेद्विद्याणां च	७१
अन्मदेहान्तरे धर्मो	२८१	महापुरुषसेवाया	४०१
अपि सूक्ष्मतरैश्चर्यैः	३५५	मुनीनां वनसंस्थानां	८९
अभ्यासाद्वायते विद्या	७०	यजनं याजनं चैव	८३
अवध्या अपि वध्यास्ते	१५६	यत्कार्यं साधयेत्तत्रा	१३२
अविद्योऽपि गुणान्मर्यैः	७२	यस्य स्वात्प्राक्तनं कर्म	३९४
असाध्यं नास्ति लोकेऽत्र	२८	राज्ञ पुष्ट्या भवेत्पुष्टि	१२४
आत्मारागो भवेयस्तु	५१	वनिम्जनकृतो योऽर्थो	९७
आयन्ययौ समौ स्यातां	१४२	वरे जनस्य मूर्खत्वं	६३
उत्तरागो भूमिकम्पाय-	५७	वाहुंपिकस्य दाक्षिण्यं	१०१
कृते प्रतिष्ठितं नैव	२६२	वेदाभ्यासस्तथा यज्ञा	८२
यवाश्चपि वरे सूक्ष्मं	१५४	ग्रीष्म समान (१) न यो लक्ष्मी	४०२
गुहास्वादनतः दक्षि	३५१	धेयस्त्वरणि वाक्यानि	६५
चतुर्विधस्य नो किञ्चित्	१८९	ममर्थो मानसेयुक्ता	२८०
नीरादिभिर्जनो यस्य	७९	साधुपूजापरो राज्ञा	९३
देवायतने गत्वा सर्वान्	१०	सुखदुःखाने मान्यवत्	७६
द्विभाषो योऽत्र दृष्ट स्यात्	८४	स्वध्या विदितो मूल्यो	९९
		स्वदशजममात्रं च	१०८

